

TIGHT BINDING BOOK

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182926

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 80

Accession No. H 801588

Author

Bh 57M7

Title

This book should be returned on or before the date last marked below

महाभारत के पात्र

[चौथा भाग]

लेखक

आचार्य नानाभाई भट्ट

अनुवादक

श्री शंकरलाल वर्मा

श्रीमती मंजुल अरोड़ा

हिंदी मंदिर, प्रयाग

हिंदी मंदिर, प्रयाग के लिए
नवयुग साहित्य सदन, इन्दौर
द्वारा प्रकाशित

पहली बार : १९४७

मूल्य

पौने तीन रुपये

मुद्रक
अमरचन्द्र
राजहंस प्रेस,
दिल्ली, २१-१९४७

पात्र-परिचय

१-द्रोण

१-४१

१. द्रोण की गृहस्थी; २. मैत्री : वैर; ३. गुरु-दक्षिणा; ४. युद्ध-सभा में; ५. दुर्योधन के वाक्-प्रहार; ६. द्रोण-वध

२-अश्वत्थामा

४२-७३

१. संहार की प्रतिज्ञा; २. वैर की अग्नि; ३. अंधेरी रात में; ४. धुंधवाती आग

३-भीष्म

१-५६

१. गंगापुत्र; २. पिता की चिकित्सा; ३. भीष्म-प्रतिज्ञा; ४. वंश की रक्षा का प्रश्न; ५. विकर्ण की नज़र में; ६. दुर्योधन की सीख; ७. सेनापति के पदपर; ८. युधिष्ठिर को आशीर्वाद; ९. कुरु-क्षेत्र का दसवां दिन; १०. पितामह बाणशैया पर।

४-धृतराष्ट्र

६०-६२

१. जीवन का निचोड़।

५-श्रीकृष्ण

६३-१७१

१. पाण्डवों के सलाहकार; २. जरासंध-वध; ३. शिशुपाल-वध; ४. द्वैत वन में; ५. संधि की बातें; ६. संधि या युद्ध; ७. अर्जुन का समाधान; ८. भीष्म की दृष्टि से; ९. अवतार कृत्य; १०. परीक्षित का जन्म; ११. यादवस्थली।

द्रोण

: १ :

द्रोण की गृहस्थी

द्रोण भरद्वाज मुनि के पुत्र थे और उनकी पत्नी का नाम कृपी था। कृपी शरद्वाज मुनि की कन्या और कृपाचार्य की बहन थी। द्रोण और कृपी का पुत्र अश्वत्थामा था।

द्रोण की गृहस्थी अत्यन्त गरीब थी। जीवन की मामूली-से-मामूली बातों तक की उनके घर कठिनाई रहती थी। एक बार शाम के समय द्रोण जब घर पहुँचे तब कृपी बाहर बरामदे में बैठी थी। उसके बाल बिखरे हुए थे; मुँह उतर रहा था; रोते-रोते आंखें सूज गई थीं और पास ही फटी-टूटी गद्दी पर अश्व-त्थामा सो रहा था।

“कृपी ! आज अश्वत्थामा को कुछ होगया है क्या ? अभी से कैसे सो गया ?” बरामदे में घुसते ही द्रोण ने पूछा।

“न मोये तो जाय कहां ? मेरे गर्भ से पैदा हुआ है इसलिए नींद आई हो तो, न आई हो तो, सोना ही पड़ता है।” कृपी ने टेढ़ी नजर से देखते हुए जवाब दिया।

“कृपी ! आखिर हुआ क्या है, यह तो बता। बालक के साथ किसी का कुछ लड़ाई-झगड़ा हो गया है क्या ?” द्रोण ने सहज दुःखी स्वर से पूछा।

“लड़ाई-झगड़ा करने जैसा होने पायगा तब न ! उससे

पहले वह मेरे हाथों ही समाप्त न हो जायगा।” कृपी ने हाथ झड़काते हुए जवाब दिया।

“लेकिन बात क्या हुई है, यह भी बतायगी या नहीं ? क्या किसी ने इसे मारा है ?” द्रोण ने पूछा।

“और कौन मारेगा ? मारने वाली अकेली मैं ही तो हूँ। तुम्हारे लिए तो तुम्हारी अस्त्र-विद्या भली और तुम भले। बच्चे को मुझे सौंपकर चलते बनते हो, फिर यह जानने की जरूरत ही नहीं रहती कि इसने कुछ खाया-पिया है या नहीं। इसकी जरूरत ही क्या है ? आखिर तुम लोग शादी करते ही क्यों हो और क्यों परमात्मा तुम्हें सन्तान देता है। बेचारे कितने लोग सन्तान के लिए तरसते रहते हैं !” कृषी आंखों में आंसू भरकर द्रोण की तरफ देखती हुई कहने लगी।

“यह सब तो ठीक।” द्रोण बोले। “लेकिन हुआ क्या है, यह तो बता।”

“देखो,” कृपी हाथ का इशारा करते हुए कहने लगी। “मुहल्ले के सभी बालक दूध पी-पीकर खेलने के लिए आये। उन्होंने अश्वत्थामा को चिढ़ाना शुरू किया, इसलिए यह भी ‘दूध-दूध’ करता हुआ मेरे पास आया।”

“अच्छा, फिर ?”

“फिर क्या, अपने घर तो दूध की मथनियां भर देने वाली गायें तुमने बांध रखी हैं न ! इसलिए अश्वत्थामा एक बड़ा-सा कटोरा भरा दूध गटगट पी गया !” द्रोण की ओर दृष्टिपात करते हुए कृपी ने कहा।

द्रोण सुनते रहे, लेकिन कुछ बोले नहीं। इसलिए कृपी ने अपनी बात आगे बढ़ाई “और थोड़ी ही देर में रोते-रोते वह वापस आया और कहने लगा, “सभी लड़के मुझमें कहते हैं कि तेरे घर दूध कहाँसे आया ? देख, तेरे मुँह पर तो आटा लगा हुआ है।

तेरी मा ने तुझे आटा घोलकर पिला दिया मालूम होता है ।” यह कहकर वह मुझे मारने लगा । लेकिन मैं दूध कहां से देती ? वह खूब रोने और मचलने लगा, इसपर मुझे गुस्सा आगया और मैंने उसे खूब मारा । आखिर गगाने छुड़ाया । तभी का वह सो रहा है ।

“कृपी !” आंखों में आंसू भरकर द्रोण बोले—“यह तुमने बहुत बुरा किया । तुमने इसे मारा क्यों ? शान्ति से समझाना चाहिए था ।”

“किस मुंह से ऐमे कहते हो ?” कृपी ने आवेश में भर कर कहा । “तुम्हें तो सिर्फ मुंहसे कहना ही आता है । किसी दिन यह भी सोचते हो कि तुमने विवाह किया है और घरमें और भी दो जीव बैठे हैं ?”

“कृपी, कृपी !” द्रोण बोले “तू क्या कह रही है; जरा तो समझकर बोल । क्या तुझे ऐमा प्रतीत होता है कि भरद्वाज का पुत्र मूर्ख है ?”

“अवश्य प्रतीत होता है ।” जोश में आकर कृपी ने कहा । “तुम लोगों को विवाह करना ही नहीं चाहिए । जिसे सच्चा शुद्ध ब्राह्मण-जीवन बिनाना है और संसार की सेवा कर के कल्याण साधन करना है उसे गृहस्थी के जंजाल में पड़ना ही नहीं चाहिए । विवाह करके तुम खुद भंभट में पड़ते हो और साथ में स्त्रियों को भी डालते हो और फिर सन्तान होने पर ब्राह्मण-जीवन की बातें करते-करते जंजाल से मुक्त होने का दावा करके भागते फिरते हो !”

“कृपी ! ब्राह्मण-जीवन पर ऐसे प्रहार सुनता हूँ तो मेरे भीतर में ज्वाला भभक उठती है ।” दीन स्वर में द्रोण ने कहा ।

“पतिदेव ! प्रहार तो तुम जैसों पर करती हूँ । ब्राह्मण-जीवन ऐसा उभय-भ्रष्ट नहीं होता, यह मैं जानती हूँ ।” कृपी ने कहा ।

द्रोण बोले “कृपी ! अग्निवेश के आश्रम से निकलते समय कैसे-

कैसे स्वप्न रचे थे, इसका तुझे पता नहीं। सोचा था, जन्म-भर ब्रह्म-चारी रहूंगा और यदि विवाह करना ही पड़ा तो उच्च आध्यात्मिक विवाह कर जीवन अखिल विश्व की सेवा में बिताऊंगा। लेकिन मेरी यह आकांक्षा आकांक्षा-मात्र रह गई और इस घर में द्रोण को आज यह व्यवहार देखना पड़ रहा है !”

“मैं भी यही कहती हूँ।” कृपी जरा शान्त होकर बोली—
“विद्यार्थी अवस्था में पोषित मनोहर स्वप्नों को जब हाड़-मांस से बने मानवों की दुनिया में चरितार्थ करने का अवसर आने पर ही तो मनुष्य की खरी कसौटी होती है। तुमने स्वप्न रचे होंगे, लेकिन तुम्हारा मन इतना दुर्बल है कि संसार की अटपटी घटनाओं में तुम चक्कर खा गये। मैं तो छोटी-सी बात जानती हूँ। तुमने गृहस्थी रची और सन्तान पैदा हुई। इसलिए सन्तान को देखते हुए जीवन के साधन पूरे करने ही चाहिए। गृहस्थी बसाते समय तो वैराग्य पैदा न हो और सन्तान के पोषण का प्रश्न सामने आते ही वैराग्य की धुन मवार हो इसी का ही नाम तो ढोंग और अधर्म है। अध्यात्मका रंग चढ़ा हो तो सन्तानोत्पत्ति बन्द करो। यदि यह न कर सकते हो तो फिर सन्तान के भरण-पोषण जितनी कमाई तो अवश्य करनी ही चाहिए। मेरी अपनी बुद्धि के अनुसार तो जो व्यक्ति इतनी साधारण बात भी नहीं करता, वह पाप करता है।”

“तो मैं भी पाप करता हूँ ?” द्रोण ने पूछा।

“अवश्य ! तुम्हारा पाप वेश बदल कर आता है। इसलिए तुम्हें प्रतीत न होता हो तो बात दूसरी है।” कृपी ने जवाब दिया।

“कृपी ! तेरे शब्द तोर को तरह हृदय के आर-पार हो जाते हैं।” द्रोणाचार्य ने कहा—“घड़ी-भर तो ऐसा लगता है कि कहीं जाकर अपनी विद्या के प्रताप से एकाध देश का राज्य हस्तगत

कर लूँ, जिससे कि तुम्हारी यह रोज-रोज की चख-चख मिट जाय। लेकिन ज्यों ही भरद्वाज मुनि का जीवन आंखों के सामना आता है त्यों ही हृदय में एक अजीब शान्ति का अनुभव होता है और मन करता है कि जीवन-भर आश्रम में विद्यार्थियों को ही पढ़ाता रहूँ।”

“दूसरी बात यह है कि तुमने जो अपना यह पड़ोस ढूँढ़ा है यह भी मुझे तो तुम्हारी भूल ही मालूम होती है।” कृपी ने ज़रा शान्त होकर कहा—“हमें ब्राह्मण रहना हो और बच्चों को भी ब्राह्मण रखना हो तो यह पड़ोस निभ नहीं सकता। यहां तो पैसे वाले रहते हैं। इसलिए सारे वातावरण में धनिक जीवन की रंग-रंगियां मची रहती हैं। किसी को खुद मेहनत करनी नहीं पड़ती। दूमरे के पसीने की कमाई से पैदा हुए पैसे निगले जाते हैं। नित्य भांति-भांति के मेवा-मिष्ठान्न उड़ाना, कला और धर्म के नाम पर स्वच्छन्दता से इन्द्रियों के भोग भोगना, बिना हाथ-पैर दिलाये बैठे रहना और बुद्धि-विलास के नाम पर निकम्मी चर्चाएं करना, यह यहां का वातावरण है। ऐसे वातावरण में ब्राह्मण-बालकों के मन विचलित न हो जायें तो क्या हो? मालदारों के बालक रोज नये-नये खिलौने लेते हैं, इसलिए अपने बालकों का मन भी चलता है। बालक कुछ समझते थोड़े ही हैं। असल में तो ये लोग अच्छे-बुरे जीवन के ऐसे गलत मान-दण्ड सामने खड़े कर देते हैं कि हम बड़ी मुसीबत में पड़ जाते हैं। पड़ोसी होने के कारण न तो उनसे बिल्कुल अलग रहा जा सकता है, न उनमें मिला ही जा सकता है। ऐसी हालतमें अपना अश्वत्थामा बिगड़ेगा ही, यह निश्चय जानो।”

“यह तो सब फुरसत के समय विचार करके तय करेंगे। दुनिया में इस तरह अकेले हम ही अच्छे और दूसरे सब निकम्मे हैं, यह सोचकर क्या जंगल में रहा जा सकता है?

फिर भी तू जो कहती है वह ध्यान देने योग्य तो है ही। लेकिन अभी हमें क्या करना है ?” द्रोण ने कहा।

कृपी ने जवाब में कहा—“देखो, मैं तो लड़के को मार कर रो ली और रोने के बाद अन्त में मैंने मन में यह निश्चय कर लिया कि जब तक एक गाय घर के आंगन में नहीं बंध जाती तब तक चैन न लूंगी। मेरा यह दृढ़ निश्चय है। इसलिए तुम गाय के बारे में सोच लो।”

द्रोण ने कहा—“अश्वत्थामा के लिए गाय कोई बड़ी बात नहीं है, लेकिन प्रश्न यह है कि तत्काल किसके पास से पाई जाय। कृपी ! तेरी यह बात सुनने के बाद एक बात तो मेरे मन में बंठ गई है, वह यह कि मेरा अश्वत्थामा दूसरे लड़कों के साथ खेलते हुए नीचा देखे और फिक्कके यह हो नहीं सकता। मन में ऐसा लगता है कि इस लड़के के लिए मुझे अपनी सब विद्या को भी बाजार में बेचना पड़े तो बेच डालूँ।”

“तुम कई बार मेरे सामने पाञ्चाल देश के राजा द्रुपद की बात करते रहते हो। तब क्या यह राजा तुम्हें एक भाँ गाय नहीं दे सकता ?” कृपी ने कहा।

“कृपी ! द्रुपद का तो मेरे मन में कभी से खयाल है।” द्रोण ने उत्साहपूर्वक कहा—“कृपी, मैं इस द्रुपद की तुझसे क्या बात करूँ ? अग्निवेश के आश्रम में विद्याभ्यास के दिनों में हमने जीवन के जो आनन्द लूटे, उनका जब खयाल करता हूँ तो आज भी रोमाञ्च हो आता है। द्रुपद तो द्रुपद ही है। हमारे शरीर दो हैं, लेकिन प्राण एक ही हैं। आश्रम के वृद्धों के नीचे बैठकर हम घण्टों बात करते और रात-की-रात बीत जाती। नदी के किनारे चांदनी में चक्कर काटते हुए जीवन के अनेक प्रश्नों पर घोंड़े दौड़ाते थे। गुरुदेव अग्निवेश की सेवा के विषय में आपस में कैसी होड़ा-होड़ा रहती थी ! जब हम आश्रम से जुदा

हुए तो दोनों रो पड़े। द्रुपद ने मुझे कस कर छाती से लगा लिया। हमारा रास्ता पलटने तक जब तक द्रुपद दिखाई देते रहे मैं उन्हें देखता ही रहा और द्रुपद बार-बार घूम कर मुझसे कहते रहे, “द्रोण, मैं राजा बनूँगा तब तुझे कुछ कष्ट नहीं रहेगा।”

“इसीलिए तो मैं कहती हूँ कि तुम द्रुपद राजा के पास जाओ और एक गाय मांग लाओ।” कृपी ने कहा।

द्रोण जरा मोच में पड़ गये और कुछ देर बाद बोले—
“ठीक है, मैं वहाँ जाऊँगा। लेकिन कृपी, तुम भी साथ चलो तो कैसा हो?”

“मैं! मैं वहाँ जाकर क्या करूँगी? तुम्हारे मित्र हैं तुम्हीं हो आओ।” कृपी ने जवाब दिया।

“कृपी, मेरी और द्रुपद की मैत्री क्या वस्तु है, इसका तुझे पता नहीं। मैं गया और द्रोण को यह मालूम हुआ कि मैं अकेला ही आया हूँ तो वह मुझे कितना उलाहना देगा, इसका भी तुझे ध्यान है। हम कई वर्षों बाद मिलेंगे, इसलिए द्रुपद मेरे गले से भूम जायगा और यदि अकेला हुआ तो बचपन की बातें याद करके एक-दो घूँसे भी जमा बैठे तो आश्चर्य नहीं। कृपी, यदि इस समय मेरे साथ नहीं चलोगी तो वहाँ पहुँच कर मुझे तुझे बुलाने के लिए फिर वापस आना पड़ेगा, अथवा किसी को भेजना पड़ेगा। इससे तो अच्छा यही है कि तू मेरे साथ ही चल।” द्रोण ने कहा।

“मेरी और इस छोटे बालक की कहां गुजर होगी?” कृपी ने पूछा।

“इसमें गुजरकी बात ही क्या है? क्या द्रोण के घर रोटियों की कमी है?” द्रोण ने जवाब देते हुए कहा—“तुझे पता नहीं, द्रुपद तो तत्काल तुझे अपनी रानियाँ के पास ले जायगा, अश्वत्थामा उसके बालकों के साथ खेलेगा और तुझे पता लग जायगा

कि द्रोण की एक बड़े राजा के साथ कैसी मित्रता है। इसलिए तू मेरे साथ अवश्य चल।”

“मेरा मन नहीं मानता। तुम जाओ और गाय ले आओ। वहां पहुंचने पर द्रुपद बहुत आग्रह करे और मेरे बिना काम चलता ही न हो तो मुझे बुलालेना।” कृपी ने कहा।

“फिर क्या बुलाना? अपने घर जाना और द्रुपद के यहां जाना बराबर ही है। इसमें तो द्रुपद के आग्रह को भी जरूरत नहीं है। मैं आग्रह की प्रतीक्षा करूँ, मैत्री की दृष्टि से यह उचित नहीं कहा जा सकता। तू साथ ही चल।” द्रोण ने आग्रह-पूर्वक कहा।

“नहीं-नहीं, मुझ से व्यर्थ ही आग्रह न करो। मेरे मन में उत्साह नहीं होता।” कृपी ने जवाब दिया। “द्रुपद राजा कहलाता है। युवाकाल में की हुई मैत्री हवा में उड़ भी सकती है। वहां सभी तरह का राजसी ठाठ-बाट होगा। राजमहल, रानियां, विविध भोग-विलास, राजकुमारों की चहल-पहल और नौकर-चाकरों का जमघट। तुम्हारे लिए तो यह ठीक है कि द्रुपद तुम्हारा मित्र है, इसलिए तुम्हें कुछ अटपटापन न लगेगा, लेकिन रानियां मुझे किस लिए बुलायंगी! फिर हम ठहरे गरीब गृहस्थी के रानियों की रीति-रिवाज जानते नहीं, इसलिए उन्हें व्यर्थ ही मुंह मरोड़ना पड़े, इसलिए मेरे लिए तो मेरा घर ही भला। अश्वत्थामा भी गड़बड़ करता रहता है, इसलिए मैं तो कहीं भी साथ में नहीं चलना चाहती।”

“नहीं-नहीं, तुम्हें चलना ही पड़ेगा।” द्रोण ने निश्चयपूर्वक कहा। मेरे घर तो तुम्हें जीवन को जीवन समझने का अवसर न मिला, लेकिन मित्र के यहां तो वह अनुभव कर सकेगी। सिर्फ दो ही दिन की तो बात है। तेरे भाई कृपाचार्य हस्तिनापुर रहते हैं; राजाओं की रीतिनीति का उन्हें तो पता होगा ही।

इसलिए कल सुबह हमें निश्चित रूप से वहां चलना है। उठ, अब अश्वत्थामा को जगा, अपन भोजन कर लें।”

अश्वत्थामा को जगाकर तीनों जने भोजन करने बैठे।

: २ :

मैत्री : वैर

“महाराज द्रुपद की जय हो ? जय हो।” द्रुपद के महल में घुसते ही द्रोण ने आशीर्वचन कहे और महल में प्रवेश किया।

“महाराज, आप किस लिए पधारे हैं ?” द्रुपद के एक अंगरक्षक ने नम्रतापूर्वक पूछा।

“द्रुपदराज मुझे अच्छी तरह जानते हैं। मुझे उनसे बातें करनी हैं। इसलिए दूर से चलकर यहां आया हूं।” द्रोण ने जवाब दिया।

अंगरक्षक बोला, “महाराज, द्रुपदराज की तबियत ठीक नहीं है, इसलिए आपसे मिल नहीं सकेंगे। आपका जो काम हो, वह मुझसे कहिए।”

द्रोण ने कहा, “पाण्डुचालराज की तबियत ठीक नहीं है ? तब तो मुझे उनसे जरूर मिलना चाहिए।”

अंगरक्षक ने उत्तर दिया, “लेकिन आप मिल नहीं सकते।”

द्रोण ने कहा, “तुम मुझे पहचानते भी हो ? मैं भरद्वाज मुनि का पुत्र द्रोण हूं। मैं और पाण्डुचालराज अग्निवेश के आश्रम में साथ-साथ पढ़ते थे।”

अंगरक्षक बोला, “हां, आपके आने का समाचार सुनाने पर महाराज ने मुझे सब बताया था।”

द्रोण ने कहा, “तब मेरे समाचार द्रुपदराज तक पहुंच गये प्रतीत होते हैं।”

अंगरक्षक बोला, “हां, उनके कहने से ही मैं कह रहा हूं कि आप मिल नहीं सकते !”

द्रोण ने कहा, “भाई, तुम क्या कहते हो ? तुम्हारी बात सुनकर मुझे आश्चर्य होता है। पाञ्चालराज ने मेरा मजाक तो नहीं किया ? मैं, और द्रुपद से मिल नहीं सकता ! क्षत्रियकुमार, मैं तो द्रुपद का गुरु भाई हूं। द्रुपदराज बीमार हों, उस समय उनकी इच्छा के बिना चाहे वैद्यगण न मिल सकें, लेकिन द्रोण उनसे न मिल सकें, यह कभी संभव हो नहीं सकता। एक बार अग्निवेश के आश्रम में द्रुपद का अंगूठा पक गया था, उससे उनके बहुत जलन हो रही थी। उस समय जलन शान्त करने के लिए यह द्रोण अंगूठा पकड़ कर सारी रात उसमें फूंक मारता रहा था। ऐसी और भी कई रातें हमने बिताई हैं। हमारे इस स्नेह का तुम्हें क्या पता ! लेकिन द्रुपदराज यह सब जानते हैं। राज्य की सुविधा की दृष्टि से राजा की बीमारी की हालत में किसी के उनसे न मिल सकने की व्यवस्था करनी पड़ सकती है, लेकिन मैं तो द्रोण हूं। जाकर महाराज द्रुपद से कहो।”

अंगरक्षक ने कहा, “महाराज, मुझे क्षमा करो। मैं जो कहता हूं वह महाराज का ही आदेश है। महाराज आपसे मिलना नहीं चाहते। आप हमारी राजनैतिक भाषा में नहीं समझे, इसलिए मुझे स्पष्ट शब्दों में कहना पड़ रहा है।”

“महाराज स्वयं मुझसे मिलना नहीं चाहते !” द्रोण को यह जानकर सहज ही आघात पहुंचा। उन्होंने कहा—“उन्होंने मुझे पहचाना न होगा। भाई, मैं तो उनका मित्र हूं।”

अंगरक्षक बोला, “महाराज ने आपको पहचान लिया है। आपकी सूचना मिली, तभी महाराज कह रहे थे कि राजा-महाराजाओं की गरीब भिक्षुओं के साथ मित्रता कैसी ! अब आपको क्या कहना है ?”

अंगरक्षक के मुंह से यह शब्द सुनते ही द्रोण स्तब्ध रह गये ! उनका मुंह फीका पड़ गया । उनके हाथ-पैर क्रोध के मारे कांपने लगे । उनके मनके महल सब एक साथ टूटकर गिर पड़े । उन्होंने कहा—“भाई, द्रुपद कहां हैं ?”

अंगरक्षक ने जवाब दिया—“विश्राम कर रहे हैं ।”

“इस पास के कमरे में जो बैठे हैं, वही मुझे द्रुपद प्रतीत होते हैं । मुझे उनके पास जाना है”—यह कहते हुए द्रोण के पैर उधर को बढ़ने लगे ।

“महाराज, आज्ञा नहीं है ।” अंगरक्षक यह कहकर उन्हें रोकने लगा । लेकिन द्रोण तो अग्नि रूप धारण करके सीधे कमरे में जा पहुंचे । महाराज द्रुपद एक बड़े सिंहासन पर बैठे-बैठे पास के कमरे की यह सब बातचीत सुन रहे थे । द्रोण ने कमरे में घुसकर एक बार फिर अभिवादन करते हुए कहा—“महाराज द्रुपद की जय हो, जय हो ।”

द्रोण सिंहासन के निकट पहुंचे और कहने लगे—“महाराज द्रुपद, क्या मुझे पहचाना ?”

“तुम्हें कहीं देखा तो प्रतीत होता है ।” द्रुपद ने कहा ।

“मैं भरद्वाज का पुत्र द्रोण हूं । अग्निवेश के आश्रम में अपन साथ-साथ पढ़ते थे ।” द्रोण ने याद दिलाई ।

“हां, तुम कहते हो तब याद तो आती है । जहां इतने सारे शिष्य पढ़ते हों, वहां सबकी याद भी किस तरह रह सकती है ?” द्रुपद ने उपेक्षा भाव से कहा ।

द्रोण ने सिंहासन के अधिक निकट जाकर कहा—“शिष्य इतने अधिक थे, यह तो ठीक । लेकिन द्रोण और द्रुपद घनिष्ठ मित्र थे, इतना अन्तर था ।”

“महाराज, दूर खड़े रहो । राजा-महाराजाओं की गरीब भिन्नकों के साथ मैत्री हो नहीं सकती ।” द्रुपद ने रोष से कहा ।

मणिधर सर्प को मानो किसी ने मंत्र से कील दिया हो और वह फुंकार मारता हो, द्रोण उसी तरह स्तब्ध हो गये और फुंकार मारने लगे । उनकी आंखें लाल हो गईं, भवें तन गईं और सारा शरीर कांपने लगा । फिर भी शान्त भाव धारण करके उन्होंने कहा—“क्या यह द्रुपद बोल रहा है ? क्या यह वृषत् राजा का पुत्र बोल रहा है ? क्या यह अग्निवेश का शिष्य द्रुपद बोल रहा है ? अथवा मैं स्वप्न जगत् में विचरण कर रहा हूँ ?”

“द्रोण,” द्रुपद ने सम्बोधन करके कहा—“हां, वृषत् राजा का पुत्र मैं द्रुपद ही बोल रहा हूँ । पाञ्चाल देश के स्वामी द्रुपद की ही यह वाणी है । द्रोण ! द्रुपद राजा द्रोण का मित्र हो नहीं सकता । मैत्री तो समान व्यक्तियों के बीच ही सम्भव हो सकती है ।”

“पाञ्चालके स्वामी द्रुपद ! अग्निवेश के आश्रम में एक साथ विद्याभ्यास करते समय अपन ने जीवन के जो-जो स्वप्न रचे थे, क्या वह सब तुम्हें याद हैं ?” द्रोण ने जरा स्वस्थ होते हुए कहा ।

“उन दिनों रचे होंगे । जवानी में तो मनुष्य ऐसे रंग-बिरंगे कितने ही स्वप्न गढ़ता, रहता है ।” द्रुपद ने उपेक्षा के साथ जवाब दिया ।

“द्रुपद, द्रुपद ! आश्रम के वातावरण में गढ़े हुए स्वप्नों का भी राज-हृदय में इतना मूल्य होता होगा, यह आज ही मालूम हुआ ।” द्रोण ने दुःखित हृदय से कहा ।

“द्रोण तुम जैसा आवारा हमारे समान राजाओं के साथ सम्बन्ध रखने में स्वार्थ-दृष्टि रखता होगा मुझे भी आज ही इसका अनुभव हुआ ।” द्रुपद ने उलट कर उत्तर दिया, “अरे, कभी गरीब और अमीर के बीच दोस्ती सुनी है ? विद्वान् और मूर्ख के बीच कभी मैत्री हुई है ? बहादुर और डरपोक में कभी दोस्ती होती सुनी है ? द्रोण

तुम भूलते हो । द्रुपद और द्रोण के बीच मैत्री हो नहीं सकती ।”

द्रोणका क्रोध फिर भड़क उठा । उन्होंने लाल होकर कहा—
“द्रुपद ! तुममें राज्य-मद की इतनी अधिक खुमारी, सिंहासन का इतना अधिक अभिमान ! तुम विधाता के किसी संयोग से वृषन् राजा के यहां पैदा हुए, इसी से इतने होगये और मैं भरद्वाज की भोंपड़ी में पैदा होने के कारण छोटा हो गया ! क्या राजाओं का रक्त लाल और ब्राह्मणों का काला होता है ? द्रुपद, द्रुपद ! जरा सोचकर देखो ।”

“मैं जो कहता हूं, सोच-समझ कर ही कहता हूं । तुम्हें कुछ धन आदि मांगना हो तो खुशी से मांगो । लेकिन तुम्हारा मैत्री का दावा मैं स्वीकार नहीं कर सकता, वैसे कोई भी ब्राह्मण-पुत्र मेरे लिए वन्दनीय है ।” द्रुपद ने कहा ।

“द्रोण द्रुपद के पास भोज्य मांगने नहीं आया है । गरीब होते हुए भी वह भरद्वाज का पुत्र और अग्निवेश का शिष्य है । द्रोण की यदि द्रुपद के साथ मैत्री सम्भव नहीं हो सकती तो वह द्रुपद से किसी तरह की आचना भी नहीं कर सकता । द्रुपद, यह अच्छी तरह समझ रख, द्रोण की ब्राह्मण-जीवन की गरीबी सीमातीत कष्टदायक हो जायगी तो वह ब्राह्मण-जीवन का त्याग कर देगा, किन्तु द्रुपद जैसे राजा के सामने तुच्छता से हाथ न फैलावेगा ।” द्रोण ने निःशक होकर जवाब दिया ।

“यह तुम्हारी मरजो की बात है ।” द्रुपद ने लापरवांही से कहा ।

“द्रुपद, अपने आश्रम से जब अलग हुए थे उस समय तुमने अपने-आप मुझे एक वचन दिया था । वह याद है ?” द्रोण ने पूछा ।

“कहा होगा कुछ, इस समय तो मुझे कुछ भी याद नहीं आता ।” द्रुपद ने जवाब दिया ।

“याद नहीं आयगा, राजन् ! याद नहीं आयगा । वह याद नहीं आता यह भी इस गद्दी का प्रताप है, मेरे पिता कहा करते थे कि मनुष्य को ब्राह्मण रहना हो तो ऐसी गदियों से सौ गांव दूर रहना चाहिए । द्रुपद ! और कुछ नहीं, तुम जैसा राजा मुझ जैसे का ऐसा घोर अपमान करे और मैं उसे सहन कर चलता बनूं इसमें मुझे अपनी विद्या लजाती प्रतीत होती है । एक बार तो तुम्हारे जैसे राजाओं को ठिकाने लाने के लिये हमें ब्राह्मण जीवन को घड़ी-भरके लिए खूँटी पर टांगकर हाथमें शस्त्र लेना चाहिए, और तुम्हे बताना चाहिये कि हम जो शस्त्र धारण नहीं करते वह अपनी इच्छा से ही नहीं करते, किसी कायरतावश नहीं । मनमें ऐसा लगता है कि तुम राजा लोग राजाओं के साथ ही मैत्री करते हो तो एकबार यह ब्राह्मण द्रोण भी राजा बनकर तुम्हारी मैत्री का दावा सिद्ध करे । द्रुपद ! अब भी जरा सोच ।”

“अब सोचना तो तुम्हें है ।” द्रुपद ने तपाक से कहा ।

“यह बात ?” द्रोण गम्भीरतापूर्वक विचार करते हुए-से बोले, “तुमने सोच लिया है तो द्रोण ने भी सोच लिया । द्रुपद, तुम वृषत् राजा के पुत्र तो मैं भरद्वाज का पुत्र, तुम अग्निवेश के शिष्य तो मैं भी उनका शिष्य, तुम महाराज तो मैं शस्त्र-विद्या का आचार्य ! द्रुपद, लो, तुम्हारे इस राज-दरबार में ही मैं ब्राह्मण जीवन का त्याग करता हूँ । पिता भरद्वाज ! गुरु अग्निवेश ! क्षमा करना । ब्राह्मण जीवन के स्वप्न सिद्ध करने के लिए दूसरा जन्म लेना पड़ा तो लूंगा, किन्तु एक बार तो इस द्रुपद को ठिकाने लाने के लिए अपनी सारी शस्त्र-विद्या का प्रयोग करके ही रहूंगा । द्रुपद ! तुम्हारे दरबार में आया तो था अपनी मैत्री के संस्मरण ताजा करने, लेकिन यहां से जाता हूँ तुम्हारे साथ दुश्मनी बढ़ाने का निश्चय करके, राजाओं की मैत्री कैसी कपटपूर्ण होती है तुमने इसका

भान इतनी देर से कराया, यह भी एक उपकार ही है। अब विदा होता हूँ।” यह कह द्रोण चलने लगे।

“महाराज द्रोण, राजा गद्दी पर बैठते हैं इससे उन पर तो गद्दी का मद सवार हो जाता है, लेकिन ब्राह्मणों को बिना गद्दी के किस चीज से मद चढ़ आता है? क्या विद्या का मद राज-मद अथवा धन-मद से कुछ अच्छी वस्तु है।” द्रोण के जाते-जाते द्रुपद ने कहा।

किन्तु उसके ये शब्द कानों में पड़ते न पड़ते द्रोण महल से बाहर हो गये।

: ३ :

गुरु-दक्षिणा

आगे महाराज द्रुपद और उनके पोछे पाण्डुपुत्र अर्जुन चल रहे थे। द्रुपद के दाहिने हाथ में सुनहरी जंजीर पड़ी थी और अर्जुन अपने हाथ में रत्न-जटित तलवार थामे हुए था। कपिलवस्तु नगर के बाहर, जहां द्रोणाचार्य कौरवों से घिरे हुए बैठे थे, अर्जुन पहुंचा और द्रुपद से बोला, “महाराज, यह लीजिए अपनी गुरु-दक्षिणा।”

द्रोण के हर्ष का पार न था। महीनों की प्रतिज्ञा आज पूरी हुई। इसलिए वह उत्साहसे खड़े हुए और “शाबाश, पुत्र अर्जुन! शाबाश! तूने आज मेरी विद्या सफल की।” यह कहकर उसे कसकर छाती से लगा लिया।

इसके बाद द्रुपद के पास जाकर द्रोण ने कहा—“पाञ्चाल-राज द्रुपद! मुझे पहचाना?”

द्रुपद ने छाती तानकर, आंखों में रोष धारण कर, निर्भीक स्वर से जवाब दिया—“द्रोण, मैंने तो तुम्हें कभी का पहचान

लिया था। आज मुझे निश्चय हो गया कि उस दिन मैंने तुम्हें ठीक ही पहचाना था।”

द्रोण कहने लगे—“द्रुपदराज, अर्जुन ने तुम्हें बन्दी बनाया है और मुझे सोंपा है। अब तो द्रुपद और द्रोण के बीच मैत्री सम्भव हो सकती है? अब तो द्रुपद और द्रोण समान कोटि के समझे जा सकते हैं?”

द्रुपद सिर्फ खिलखिलाकर हंस पड़ा, कुछ जवाब नहीं दिया।

इस पर द्रोण अधीर हो उठे और पूछने लगे—“पाञ्चाल राज! बोलो, जवाब-क्योंहीं नदेते?”

“जवाब क्या दूँ?” द्रुपद कहने लगे। “द्रोण! भरद्वाज का पुत्र और अग्निवेश का शिष्य तीन तस्सु जमीन के स्वामी द्रुपद जैसे निरे ठाकुर के समान होने के लिए अपने ब्राह्मण-जीवन का त्याग करे और हस्तिनापुर के दरबार में अपनी प्रिय विद्या बेचे यह कितनी लज्जा की बात है! द्रोण, यह ठीक है कि तुम मेरे समान हो गये हो; लेकिन इस समानता के खरीदने में तुमने बहुत महंगा मूल्य दिया है।”

द्रुपद का ऐसा अकल्पित उत्तर सुनकर द्रोण जरा स्तम्भित होगये, लेकिन फिर सम्भल कर बोले—“द्रुपद, एक बार तो मैंने अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिए जो प्रतिज्ञा की थी वह पूरी कर ली और तुम्हें रास्ते पर ले आया। मुझे सन्तोष है कि अपने दरबार में तुमने मेरा जो अपमान किया था, मेरे शिष्य ने तुम्हें पराजित करके उसका बदला दे दिया।”

“कुंतीपुत्र अर्जुन ने मुझे इस जंजीर से बांधा है इससे तुम्हें अपनी विजय प्रतीत होती हो तो भले ही हो।” महाराज द्रुपद ने छातो फुलाते हुए कहा—“लेकिन द्रोण, मुझे क्षमा करना यदि मैं कहूँ कि मैं तो आज भी द्रुपद की ही विजय

देख रहा हूँ। यह निश्चय रखो कि जिस दिन से तुमने कृपी तथा अश्वत्थामा के साथ कांपिल्य छोड़कर हस्तिनापुर की ओर कदम रक्खा तब से आज तक की तुम्हारी सब हलचलों से मैं अच्छी तरह परिचित हूँ। इसलिए मैं कह सकता हूँ कि विजय यदि किसी की भी हुई है तो द्रुपद की हुई है और द्रोण तो विजय के बदले पराजय के पथ पर ही चल पड़े है !

पाञ्चालराज के ऐसे श्रुतिपूर्ण वाक्य सुनकर द्रोण आश्चर्यचकित रह गये। उन्हें आशा थी कि द्रुपद उनके चरण पकड़ कर दीनता दर्शावेगा, गद्गद् हो जायगा, अपने मन में लज्जित होगा और अपनी भूल स्वीकार करेगा। लेकिन इसके विपरीत द्रुपद तो और भी दूने उत्साह से अपनी विजय का बखान करने लगा, इससे द्रोण जरा खिन्न हो गये। फिर भी वे बोले—“द्रुपद ! मेरी इस प्रत्यक्ष विजय से इनकार करके तुम अपनी विजय के गीत गाते हो। क्या तुम मुझे समझा सकते हो कि इसमें तुम्हारी विजय किम तरह हुई ?”

“अभी द्रोण अपने विरुद्ध कोई कुछ कहता है तो उसे सुन सकते हैं, यह जानकर मुझे प्रसन्नता हुई।” द्रुपद ने तुरन्त ही जवाब देते हुए कहा—“आचार्य, सुनो ! तुम स्वयं भरद्वाज के पुत्र और अग्निवेश के शिष्य हो। जिस तरह भरद्वाज के बाद अग्निवेश ने आश्रम सम्भाला उसी तरह तुम भी अग्निवेश के बाद वह आश्रम सम्भाल सकते थे और भारतवर्ष के अनेकों क्षत्रिय-कुमारों को अस्त्र-विद्या सिखा सकते थे। यह करने के बजाय तुमने हस्तिनापुर के राज्य-परिवार में अपनी विद्या बेची और इस प्रकार तुम समस्त देश के आचार्य न रहकर गिने-चुने शिष्यों के आचार्य बने। यह हुई तुम्हारी पहली पराजय।”

“द्रुपद ! तुमने मेरा अपमान किया इसलिए मेरे लिए और कोई दूसरा रास्ता ही नहीं था।” द्रोण बीच में ही कह उठे।

“मैं अपमान करने वाला कौन ?” द्रुपद ने जवाब दिया ।
 “तुम्हारे ब्रह्मत्व में तेज हो तो मैं तो क्या, संसार के सारे द्रुपद मिलकर भी अपमान करें तो भी वह मन्द नहीं हो सकता । मेरे जैसे तो कितने ही कुत्ते भौंकते रहते हैं, इससे क्या होता है। और फिर मेरी मैत्री ही क्या ! द्रोण जैसा ब्राह्मण, और मेरी मैत्री की याचना करने आवे ? आचार्यदेव ! तुम ऐसे ब्राह्मण हो कि हजारों द्रुपद तुम जैसे ब्राह्मणों के पैर दबायें तो भी उन्हें मैत्री प्राप्त न हो । लेकिन मेरे वचनों की मार के कारण तुम मेरे ही समान बनने की खोज में निकले, इससे तो मुझे अपने समान उच्च बनाने के बजाय तुम स्वयं मेरी श्रेणी में नीचे उतर आये । राजगुरु बने रहने के लिए अपनी भोंपड़ी के बदले तुम्हें राजमहल मिला, अपने और कृषी के फटे चिथड़ों के बजाय वस्त्रों के थान के थान आये, तुम्हारे अश्वत्थामा को आटे के पानी की बजाय दूध के कटोरे मिले और आज मुझे बन्दी बनाया, इसलिये पाञ्चाल के राजा भी बन जाओगे । यह सब कुछ मिला, लेकिन द्रोण ! यह सब प्राप्त करने के लिए तुमने अपना ब्राह्मण-जीवन खर्च कर डाला, इसका भी तुमने कुछ खयाल किया है ? और द्रोण ! मुझ-जैसे पामर की वाणी सच मानो तो मैं कहूंगा कि शुद्ध ब्राह्मण-जीवन के साथ अखिल विश्व के साम्राज्य को तराजू में रखा जाय तो वह भी बराबर उतर नहीं सकता । यह है तुम्हारी दूसरी पराजय ।”

‘द्रुपद, तुम्हारे शब्द हृदय में बैठते ही दाह पैदा करते हैं । अब और क्या कहना है ?’ द्रोणाचार्य ने कहा ।

द्रुपद बोले—“सुनना हो तो कहने के लिए तो अभी भी बहुत कुछ है । क्या यह सच है कि भील राजकुमार एकलव्य तुम्हारे पास विद्याभ्यास के लिए आया था ?”

“हां, आया था। लेकिन मैंने स्वीकार नहीं किया।” द्रोण ने जवाब दिया।

“मैं यही बात कहना चाहता हूं।” द्रुपद ने कहा—“मेरे महल में तुमने ही पूछा था कि क्या क्षत्रिय का रक्त लाल होता है और ब्राह्मण का काला? द्रोण! अब वही बात मैं तुमसे पूछना चाहता हूं कि क्या पाण्डव और कौरवों का रक्त लाल था और भील-कुमार का काला? हम तो संसारी जीव ठहरो। क्षत्र स्वार्थ के लिए रक्त-रक्त में भेद करते हैं, देश-विदेश में भेद करते हैं, संस्कृत और असंस्कृत में भेद करते हैं और इस तरह की अनेक दीवारें खड़ी करते हैं। किन्तु तुम तो आचार्य हो! तुम्हें तो अधिकारी व्यक्ति को दीक्षा देनी चाहिए। ब्राह्मण ने ज्ञान की प्यास खोली हो, वहां जिस किसी को प्यास हो वह जी भरकर अपनी प्यास बुझा सकता है। लेकिन द्रोणाचार्य! तुमने खड़े होकर एकलव्य को अस्वीकार किया, यह तुम्हारी तीसरी पराजय है।”

“तुम कहते हो वह ठीक है, लेकिन पितामह के विचार ही ऐसे थे कि राजकुमारों को ऐसे-वैसे शिष्यों के साथ मिलाने से उनमें कुसंस्कार पैदा हो जाते हैं, इसलिए मुझे उनके साथ और किसी को नहीं पढ़ाना चाहिए।” द्रोण ने अपना पक्ष समर्थन करते हुए कहा।

जवाब में द्रुपद ने कहा—“पितामह तो यह कहते ही। लेकिन तुम तो सच्ची बात देख सकते थे। राजकुमारों के संस्कार कैसे होते हैं, इसका पता मुझे भी है, इसलिए यह बात तो जाने ही दो। लेकिन तुम तो भीष्म से भी आगे बढ़ गये!”

“किस तरह?” द्रोण ने पूछा।

“जिस एकलव्य को तुमने हस्तिनापुर में विद्या पढ़ाना स्वीकार नहीं किया, बाद में उसी के पास खुद तुम अंगूठा लेने दौड़ गये।” द्रुपद हंस पड़ा। “क्या यह सच है? वह

तुम्हारा शिष्य नहीं था, तब तुम्हें उससे गुरु-दक्षिणा मांगने का क्या अधिकार था ? लेकिन द्रोण ! तुम उसके गुरु भी बने, दक्षिणा भा मांगी और दक्षिणा में मांगा भी तो उसका अंगूठा ! तुम्हारा यह अर्जुन सब तंत्र धनुषज्ञ बने केवल इसी मोहवश एकलव्य का अंगूठा काटते हुए तुम्हें शर्म नहीं आई ? द्रोण ! तुम राजकुमारों के आचार्य बने, राजमहल में रहने लगे और मुझे जैसे राजाओं को दण्ड देने निकले, इससे तुम्हारे ब्राह्मण-जीवन के पाये धार-धारे धिसकने लगे हैं और यदि समय रहते सावधान नहीं हुए तो परिणाम बुरा हो निकलने वाला है ।

‘द्रुपद, मैंने तुम्हारे वचनों से आहत होकर तुम्हारी पराजय करने की प्रतिज्ञा की थी, यह आज पूरा हो गई । अब आगे मुझे क्या करना चाहिए, यह मैं खुद सोच लूंगा ।’ द्रोण ने कहा ।

“आचार्य ! तुम भूलते हो ।” द्रुपद ने जवाब देते हुए कहा । “यह बात तो बिलकुल ठीक है कि युद्ध में तुमने मुझे पराजित किया ; लेकिन मुझे जैसों की पराजय के परिणाम की कल्पना तुम कर नहीं सकते । क्या तुम यह समझते हो कि द्रुपद की हार हो जाने से सब कुछ ठीक हो गया ! मैंने राजमहल में तुम्हें परास्त किया, इसलिए मुझे परास्त करने की धुन तुम में सवार हुई । आज तुमने मुझे परास्त किया है, यह पराजय भी निर्बीज न रहेगी । इस पराजय के कच्चे-वच्चे पैदा होंगे, तब उन्हें सम्भाल सकना किसी को भी भारी पड़ सकता है । द्रोण ! तुम ब्राह्मण थे, फिर भी मेरे वचन सुनकर झुंझला गये और तुमने मेरे साथ शत्रुता की । तब मैं तो क्षत्रिय हूँ, मेरी नमों में पृथक् राजा का रक्त प्रवाहित हो रहा है, मेरे मानापमानों का विधान राजमहलों में गढ़ा गया है, इसलिए तुम्हें यह तो नहीं समझ लेना चाहिए कि द्रुपद इस पराजय को शान्ति से सहन

कर जायगा। हां, मुझे यह तो प्रतीत होता है कि मैंने तुम्हारा जो अपमान किया था, यदि तुमने उसे सह लिया होता तो मेरे मन में विचार उत्पन्न हुआ होता और जीवन की किन्नी शुभ घड़ी में मैं तुम्हारे चरणों में सिर झुकाता। किन्तु आज अब तुम मुझसे यह आशा न करना। मैं समझ नहीं पा रहा हूँ कि कार्य-चक्र के किन प्रभाव से प्रेरित होकर उन्मत्त मन मैंने तुम्हारा निरस्कार किया। लेकिन अब तो बाण धनुष पर से छूट चुका है। आचार्य द्रोण ! किस सोच में पड़ गये हो ?”

द्रोण स्वप्न से जग्रत होने के समान सचेत होकर बोले—
“इस समय मन में ऐसा प्रतीत होता है मानो कितने ही वर्ष बीत जाने पर आज हम दोनों अग्निवेश के आश्रम के चरण पखारतो हुई नदी के तट पर चांदनी में बैठे हैं और द्रुपदकुमार जीवन की कथाएं सुना रहे हैं। द्रुपद ! कहां तो वह गुरुकुल का आवास और कहां द्रुपद का यह बंधन ? अर्जुन, महाराज द्रुपद को बन्धन मुक्त करो। महाराज द्रुपद, मेरा चित्त स्वस्थ नहीं है, इसलिए मैं जल्दी ही हस्तिनापुर वापस जाना चाहता हूँ। तुम्हें तुम्हारी पांचाल की गद्दी पर पुनः अधिष्ठित करता हूँ। किन्तु इस विजय के अपने भाग के रूप में आधे पांचाल में आज से मेरे नाम की दुहाई फिरेगी।”

“जैसी आचार्य की इच्छा।” द्रुपद ने कहा।

“महाराज द्रुपद ! अब तो प्रसन्न हुए ?” द्रोण ने पूछा।

“प्रसन्न तो तुम्हें होना है।” जवाब देते हुए द्रुपद ने कहा—“ब्राह्मणों की प्रसन्नता पर संसार का बलयाण निर्भर है। किन्तु द्रोणाचार्य ! यह निश्चय समझ रखो कि जब ब्राह्मण ब्राह्मण-जीवन का त्याग करके संसार के कीड़े बनने लगते हैं तब उनका बंध करने वाले जीव भी पैदा हो ही जाते हैं। आज तो

तुम जाओ । कुमारो ! तुम्हें भी जाना होगा । कुन्तीपुत्र अर्जुन आज मैं तुम्हारी बहादुरी से चकित हो गया हूँ ।”

द्रुपद महाराज सबको पहुँचा कर शहर में वापस लौटे । द्रोणाचार्य और राजकुमारों ने अपने रथ हस्तिनापुर की ओर चलाये ।

: ४ :

युद्ध-सभा में

दुर्योधन ने पांडवों की युद्ध की चुनौती स्वीकार की और कुरुक्षेत्र के मैदान पर ग्यारह अक्षौहिणी सेना इकट्ठी होने लगी । दुर्योधन ने भीष्म पितामह और द्रोणाचार्य को समस्त कौरव-सेना का अधिपति बनाने का निश्चय किया था । कर्ण ने युद्ध में भाग लिया तो पितामह मन लगाकर सेनापति का काम नहीं करेंगे, इस डर से आरम्भ में कर्ण को युद्ध से मुक्त कर रखा था । कुरुक्षेत्र के मैदान में सेनाओं के पड़ाव की पूरी तैयारी हो चुकी थी, इसलिए हस्तिनापुर की सेना को कूच करने का हुक्म मिला ।

सेना के अग्रभाग में भीष्म और द्रोण जाने वाले थे, इसलिए कूच के अगले दिन रात को युद्ध के सम्बन्ध में अन्तिम विचार करने और समूचे युद्ध की योजना का कच्चा-पक्का व्यौरा तैयार कर लेने के लिए दुर्योधन के राजमहल में कौरवों की युद्ध-सभा हुई । भीष्म पितामह समस्त युद्ध-रचना के विलक्षण दृष्टा की भांति इस सभा के अध्यक्ष के रूप में एक बड़े सिंहासन पर बैठे थे । द्रोण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, कृतवर्मा, दुःशासन, शकुनी, दुर्योधन, आदि सब उपस्थित थे । राधा-पुत्र कर्ण एक ओर कोने में बैठा हुआ सब सुन रहा था ।

पितामह के सभा का कार्य आरम्भ होने की सूचना देते ही द्रोणाचार्य अपने आसन पर से खड़े होकर सब सुन सकें ऐसे धीर गम्भीर स्वर से बोले—“इस भारतीय युद्ध के नक्शे पर हम विचार आरम्भ करें, इससे पहले मुझे इस सभा के सामने कुछ बातें रखनी हैं। मैं इस समय जो कुछ कहना चाहता हूँ वह अबतक अनेक अवसरों पर भिन्न-भिन्न प्रकार से मैं कह चुका हूँ। लेकिन आज मैं उन सब प्रसंगों को एक साथ मिलाकर सामने रखता हूँ, जिससे मेरे कथन का आशय अधिक स्पष्टता से सबकी समझ में आ जाय। अवश्य ही, युद्ध का समय इतना निकट आ चुका है और सेना के कूच करने के आदेश इतना दबाव डाल रहे हैं कि मेरा इस समय का कथन अन्तिम क्षण की सी बात प्रतीत होगा। लेकिन जो बात सच हो वह किसी भी जगह और किसी भी समय कह ही देनी चाहिए, यह समझ कर, ऐसे समय में अपनी बात मैं कह रहा हूँ।

“मैं कहना चाहता हूँ कि पांडव-कौरवों का यह युद्ध किसी तरह रुक जाय और दुर्योधन तथा युधिष्ठिर आपस में समझौता कर लें, इस बात के प्रयत्न की कल्पना आवश्यक है। मैं इन भारत-कुमारों का आचार्य और जाति का ब्राह्मण हूँ। दुनिया में इतने बड़े-बड़े ज्वालामुखी फूट निकलते हैं। उससे पहले पृथ्वी-तल पर रहने वाले लोगों को इस बात की जरा भी खबर न थी कि इस पृथ्वी के गर्भ में कितने ही वर्षों से अनेकानेक उष्ण धाराएं जोरों से प्रवाहित हो रही हैं। किन्तु भूगर्भ विद्या विशारद ब्राह्मण इस बात को जान लेते हैं। भारत-वर्ष के क्षत्रिय समाज में वर्षों से ऐसे धाराएं मैं देखता आ रहा हूँ। इसलिए इसमें सन्देह नहीं कि यह युद्ध ऐसे उष्ण प्रवाह का अवश्यम्भावी परिणाम है। इतने पर भी पितामह! मैं मानता हूँ कि इस परिणाम को रोका जा सकता है, इसीलिए

कहता हूँ कि दुर्योधन युधिष्ठिर के साथ समझौता कर ले।

“भीष्म ! आप कौरव-वंश के पितामह हैं। समस्त कौरव वंश के हित-चिंतक हैं। ऐसी दशा में आप आज उसी कौरव-वंश के अमंगल स्वरूप इस युद्ध के साक्षी क्यों बनते हैं ? इस दुर्योधन ने पांडवों को परेशान करने में कोई कसर बाकी नहीं रखी। मैंने तो यह अनुभव किया है कि दुर्योधन के जीवन का एक-मात्र धन्धा पांडवों को परेशान करना रहा है। इसी दुर्योधन ने भीम को विष खिलाया; पांडवों को जला डालने की योजना बनाई, और जुए में छलकर के उन्हें जीता। इसी दुर्योधन ने मेरे और आपके देखते-देखते द्रौपदी की कितनी बेइज्जती की; इसी ने पाण्डवों को मृगचर्म और वल्कल वस्त्र धारण करवाकर जंगल में भेजा और आज वही दुर्योधन पांडुराज के पुत्रों को एक सूत बराबर भी भूमि न देने की जिद पकड़कर बैठा है।

“राजागण ! आप जानते हैं कि दूध के समान अमृत-वस्तु भी साँप के पेट में पहुँचकर विष बन जाती है। महाराज युधिष्ठिर धर्मात्मा हैं। उनकी किसी के साथ शत्रुता नहीं, इसलिए वे तो अज्ञातशत्रु कहलाते हैं। पाण्डवों ने धृतराष्ट्र की आज्ञा का कभी उल्लंघन नहीं किया; गंधर्वों ने दुर्योधन को पकड़ा उस समय पाण्डवों ने उसे छोड़ा; जयद्रथ ने द्रौपदी पर कुदृष्टि डाली तो भी दुःशला के पति उस जयद्रथ को युधिष्ठिर ने क्षमा कर दिया। लेकिन इन और ऐसे अन्य अनेक उपकारों को दुर्योधन पी गया है और इनके बदले में उलटे वैर-विष ही बढ़ाया है।

“पितामह ! एक बात पर आपको और मुझे विचार कर लेना है। यह दुर्योधन आपके और मेरे बल पर युद्ध छेड़ बैठा है। उनके लिए ऐसा करना स्वाभाविक भी था, क्योंकि यद्यपि हम आज तक दुर्योधन के एक भी अधर्म कृत्य की निन्दा किये बिना नहीं रहे, फिर भी हमने उसका साथ नहीं छोड़ा। य त-

सभा में हमारे देखते-देखते कौरवों ने पांचाली की लज्जा अपहरण की और समग्र आर्य-संस्कृति के निधिपति भीष्म तथा समग्र शस्त्र-विद्या के आचार्य द्रोण मूढ़ की तरह बैठे देखते रहे ! उस दिन बहादुर विकर्ण को तो पुण्य प्रकोप हो आया, लेकिन हमें नहीं हुआ । पितामह ! मैं यह खूब समझता हूँ कि अधर्मों के अधार्मिक कृत्यों के प्रति भौन साध लेना भी अधर्म ही है । इतने पर भी अपने मन की दुर्बलता के कारण मैं दुर्योधन का साथ छोड़ नहीं सका । पितामह ! भरद्वाज के पुत्र और अग्नि-वेश के शिष्य द्रोण अपना इतना ब्रह्मचर्य हस्तिनापुर के राज-महल में गंवा बैठे यह बात मुझे लज्जापूर्वक स्वीकार करनी ही होगी । किन्तु भीष्म ! जीवन-भर ब्रह्मचर्य की भीषण प्रतिज्ञा लेने वाले और अपनी आन की खातिर परशुराम—जैसे गुरुदेव के साथ तक युद्ध करने वाले तुम जैसे पुण्य-श्लोक महापुरुष में पुण्य प्रकोप प्रज्वलित क्यों नहीं होता ?

“भाई दुर्योधन ! मैं समझता हूँ कि एक दूसरी बात की ओर भी तुम्हें ध्यान देना चाहिए । तू पितामह पर और मुझ पर युद्ध का आधार रखकर बैठा है । और इसमें सन्देह नहीं कि हम दोनों ही मन में धार लें तो एक दिन में सारी पृथ्वी को अपने वश में कर सकते हैं । स्वयं देवराज इन्द्र तक को हटाना हो तो अवश्य हटा सकते हैं । किन्तु दुर्योधन ! यहां तो पांडवों से निपटना है, और उनमें भी पांडु-पुत्र अर्जुन के साथ । दुर्योधन ! तू अर्जुन को अच्छी तरह पहचानता नहीं है । तुझे तो यही प्रतीत होता है कि भीष्म और द्रोण को पाण्डवों के प्रति पक्षपात है इसलिए ये लोग सदा इसी तरह की बातें किया करते हैं । निश्चय ही अर्जुन के प्रति मेरे मन में पक्षपात अवश्य है इसमें कोई सन्देह नहीं । अर्जुन—जैसे शिष्य के प्रति जिस गुरु के मन में पक्षपात न हो वह गुरु विद्या का सच्चा उपासक नहीं

हो सकता। किन्तु दुर्योधन ! यह केवल पक्षपात का ही प्रश्न नहीं है। भीष्म और मैं, दोनों ही वृद्ध हैं, इसलिए युवक अर्जुन के मुकाबले और दृढ़ता की हम बराबरी नहीं कर सकेंगे। जिस समय अर्जुन हम सबके हाथ पर ताली बजाकर अकेला ही विराट के युद्ध-क्षेत्र पर चला गया था, उस समय तू इस बात का अनुभव कर चुका है। इसके सिवा यह वृद्धावस्था तथा जवानी केवल आयु की ही नहीं है। सारी शस्त्र-विद्या में मैं और पितामह वृद्ध हैं और अर्जुन जवान। आज से बीस वर्ष पहले हम सचमुच ही जवान थे। उस समय के नये-नये शस्त्रास्त्रों तथा उनकी कला हमसे अपरिचित नहीं थी। किन्तु आज इस युग के नवीनतम शस्त्रास्त्रों का हमें बहुत कम परिचय है। हमारी शस्त्र-विद्या सामर्थ्यवान् तो है, लेकिन जितनी समर्थ है उतनी आधुनिक नहीं। अर्जुन तो शस्त्र-विद्या के आधुनिक आचार्य पशुपति से नई विद्या सीखकर आया है, इसलिए यह निश्चय है कि उसकी जवानी और शस्त्रास्त्र विद्या की नवीनतम शोधों का उसका ज्ञान मुझे और भीष्म को उसके मुकाबले में टिकने न देगा। विश्व के ब्राह्मण यह बात आरम्भ से ही कहते आये हैं कि जो विद्या पुरानी पड़ गई है और जिसे नित्य निरन्तर होती रहने वाली नवीनताओं का पुट नहीं लगा है, वह चाहे जितनी समर्थ हो तो भी नवीन युग के सामने टिक नहीं सकती।

“पितामह ! फिर दुर्योधन एक खास बात और भूल जाता है। अर्जुन के रथपर श्रीकृष्ण सारथी होकर बैठनेवाले हैं। मालूम होता है, इसकी ओर उसका लक्ष्य नहीं रहा है ! पितामह ! इन श्रीकृष्ण को आप तो अच्छी तरह जानते हैं। राजसूय यज्ञ के समय इन श्रीकृष्ण ने आपको ही प्रथम अर्घ्य का अधिकारी माना था, और आपका विरोध करने वाले शिशुपाल का सिर धड़ से जुदा करके पृथ्वीपर नीचे गिरा दिया था। विदुर आदि तो श्रीकृष्ण को साक्षात्

ईश्वर का अवतार मानते हैं। मैं इस सरल बात को सीधे-सादे शब्दों में यों रखता हूं कि श्रीकृष्ण हमारे आज के युग-पुरुष हैं। अपने वर्तमान युग के भीतरी-बाहरी प्रवाह, इस युग का समस्त जीवन श्रीकृष्ण के जीवन में मूर्तरूप होता दिखाई देता है। और आज यदि कोई एक पुरुष सम्पूर्ण भारत का जीवन गढ़ रहा है तो वह यह श्रीकृष्ण ही है ! ऐसा युग-पुरुष सारथी बनकर रथ को गतिवान् करे, उस रथ को रोकने की शक्ति किसमें है ? भीष्म ! आपका और मेरा बल चाहे जितना हो, फिर भी हम अर्जुन के रथ के सामने टिक न सकेगे। अर्जुन नवयुवक है, इसकी विद्या सर्वथा नूतन है, उसके पक्ष में धर्म है और भारत के सारे समाज की नाड़ी की गति क्या बताती है यह जानकर देखो तो प्रतीत होगा कि समाज के सम्पूर्ण हृदय का अन्तर-प्रवाह पाण्डवों के पक्ष में ही जाता है।

“पितामह ! हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि पाण्डव युद्ध-क्षेत्र में उतरते हैं तो अपने निज की खातिर। इस युद्ध के पीछे उनके अन्तरतम की बात है, उनके अपने दुःखों की स्मृति है और है राज्य के अपने निज के हिस्से की कसक। मेरे और आपके इस युद्ध में भाग लेने के पीछे भी क्या ऐसे कोई प्रबल कारण हैं ? दुर्योधन और कौरव-बन्धुओं के मन में सच्ची कसक है, किन्तु अपने मन में वह बात नहीं। इस हद तक कौरव-सेना दुर्बल रहेगी। अर्जुन को हम पर तीर चलाते समय जो जोश आ सकता है वह हमको नहीं आ सकता। अपने मन में तो अर्जुन के प्रति सहानुभूति होगी, इसलिए सम्भव है कि अपने हाथ ढीले पड़ जाय, और ढीले न भी पड़ें तो भी हम कोरे कर्तव्य-पालन की दृष्टि से लड़ेंगे; आंतरिक उत्साह से नहीं।

“दुर्योधन ! अर्जुन के सब साधन संसार की सर्वश्रेष्ठ शस्त्रास्त्रशाला के बने हुए हैं। उसका रथ, रथ पर उड़ती हुई

पताका, उसका गाण्डीव, उसके तीर और उसके शस्त्र सभी वरुणदेव की विशिष्ट प्रयोगशाला में तैयार हुए हैं, और उन के निर्माण में जरा भी कोई कसर नहीं रही है। भोष्म के या मेरे पास इन साधनों की समानता करने वाले कोई साधन नहीं हैं।

“पितामह ! मैं बहुत कुछ कह गया। मुझे ऐसा लगता है कि युद्ध के नक्शों पर विचार होने से पहले इन बातों पर विचार होकर अब भी यदि काल की इच्छा हो और युद्ध बन्द हो सके तो बड़ा अच्छा हो।”

यह कहकर द्रोण अपने आसन पर बैठ गये। इसके बाद तुरन्त ही दुर्योधन खंखारता हुआ उठा और कौरवों की तालियों की गड़गड़ाहट में उसने कहना शुरू किया—“पितामह ! द्रोणाचार्य ने जो कुछ कहा, वह मैंने सुना है। जो लोग बूढ़े हो जाते हैं, वे किसी भी कार्य में प्रेरणा देने के बदले निरर्थक दोष निकालने में ही अपना समय गंवाते हैं। इस दृष्टि से द्रोण सचमुच वृद्ध हो गये हैं। मैं तो अपनी बात संक्षेप में ही कह देना चाहता हूँ। दुर्योधन ने जो युद्ध रचा है वह बन्द नहीं हो सकता। आप और आचार्य चाहें उसमें भाग न लें और दूसरे राजा भी मेरा साथ छोड़ दें तो भी मैं, शकुनि, दुःशासन और कर्ण ये चारों जन लड़ लेंगे। पितामह ! लम्बी-लम्बी बातें तो अब बहुत हो चुकी हैं। उनसे मेरा कोई मतलब नहीं। अब आप और आचार्य मिलकर निश्चय कर लें, जिससे युद्ध का विचार आगे बढ़ सके। आचार्य जैसे ब्राह्मण विद्या सम्बन्धी उपदेश देने के लिए अच्छे होते हैं; किन्तु जीवन में उस विद्या का यथाविधि उपयोग करने का क्षात्र-बल ये बिचारे कहां से लावें ?”

“कुमार ! लड़ना ही हुआ तो द्रोण तुम्हारे साथ ही है; किन्तु अपने विचार तो मुझे तुम सबके सामने रखने ही चाहिए।” आचार्य ने व्यथित होकर कहा।

“अवश्य । मेरे साथ रहना न रहना यह तुम्हारी न्याय-बुद्धि पर निर्भर है । किन्तु निरी मन्त्रणा के समय तो मैंने द्रोण से और ही आशा रखी थी ।” दुर्योधन ने तत्काल उत्तर देते हुए कहा—“लेकिन खैर, तुम्हें पहचानने में मैंने भूल की हो तो उसका फल भी मुझे ही भोगना चाहिए । पितामह ! मैं अपने सबकी तरफ की कहता हूँ कि युद्ध का जो पांसा हमने फेंका वह फेंका जा चुका है । मैं समझता हूँ कि आप हमारे साथ हैं । हरितनापुर के सिंहासन का भीष्म के बल पर इतना तो अधिकार है ही । अब आचार्य अपना निर्णय प्रकट करें और अपनी मन्त्रणा आगे शुरू हो ।”

“द्रोणाचार्य ! आप जो कहते हैं वह सब यथार्थ है ।” पितामह बोले—“दुर्योधन समझ जाय तो अब भी क्षत्रियों का विनाश टल सकता है । लेकिन दुर्योधन समझने का नहीं । इसलिए अपने में जितना हो सके उतना कर देना चाहिए । आपन युद्ध में सम्मिलित हुए तो युद्ध आरम्भ होने के बाद भी मौका पाकर समझौता करा सकेंगे । इसलिए युद्ध के कच्चे-पक्के व्यौरों में अपने ज्ञान और अनुभव का योग दो ।”

भीष्म के वचन सुनकर कौरव हर्षित हो उठे । इसलिए द्रोण खड़े होकर बोले—“पितामह ! जैसा काल की इच्छा । दुर्योधन ! समझ मे नहीं आता कि भीष्म पितामह के साथ तेरी पीठ पर खड़े रहने के लिए मुझे कौन धकेल रहा है । लेकिन कुछ भी हो, विनाश के गहर-से-गहरे गढ़े में गिरने में भीष्म जैसे पितामह के साथ रहना हो तो यह भी जीवन का एक सौभाग्य ही है !”

“आचार्य ! यह आपके योग्य ही है ।” भीष्म ने पूर्ति की और इसके बाद सारी सभा युद्ध के नक्शों पर विचार करने में संलग्न होगई ।

: ५ :

दुर्योधन के वाक्प्रहार

द्रोणाचार्य को सेनापति हुए आज चार दिन हो चुके हैं। युद्ध का चौदहवां दिन होने के कारण कौरवों के लिए वह एक काल-दिवस था। इस चौदहवें दिन की शाम को अर्जुन ने सिन्धुराज जयद्रथ का वध करके अपनी प्रतिज्ञा पूरी की थी। दुःशला का पति होने के कारण जयद्रथ दुर्योधन के सगे भाई के समान था। अभी अगले ही दिन जिस समय अभिमन्यु कौरवों का चक्रव्यूह तोड़कर भीतर घुस गया था उस समय उसके पीछे घुसती जाने वाली सारी पाण्डव-सेना को अकेले जयद्रथ ने रोक रखा था और भीम, धृष्टद्युम्न आदि सिरतोड़ प्रयत्न करके भी उसे ढिगा न सके थे। उसी जयद्रथ को अर्जुन ने धराशायी कर दिया। तब कौरव-सेना में भगदड़ मची; किन्तु तुरन्त ही सम्भलकर क्रोध के आवेश में वापस भपटी। सामान्यतया भारत का यह युद्ध दिन-भर जारी रहता और सूर्यास्त के बाद दोनों सेनाएं अपने-अपने शिविर (छावनी) में वापस लौटतीं। इस युग के युद्ध के शिष्टाचार के अनुसार दोनों सेनाएं अपनी शत्रुता को एक ओर रखकर भाई-भाई के रूप में मिल भी सकती थीं। किन्तु आज तो सूर्यास्त के बाद भी युद्ध जारी रहा और अधिक रात बीते तक लड़ने के बाद थके हुए योद्धाओं ने अधिकतर नींद भी वहीं निकाल ली। आज के रात्रि-युद्ध में भोमसेन का पुत्र घटोत्कच कौरवों की सेना में खूब हलचल मचाने के बाद अन्त में कर्ण के हाथों मारा गया।

युद्ध समाप्ति के बाद महाराज दुर्योधन रथ में बैठकर आचार्य के तम्बू में आये। आज उनके मन में चैन नहीं था।

“महाराज, इस समय कैसे ? विश्राम का जो थोड़ा बहुत

समय मिला है, वह तो ले लिया होता। अभी भोर हो जायगा।” आचार्य ने कहा।

“आचार्य ! इस काल-रात्रि में से दुर्योधन के लिए प्रभात की एक भी किरण चमकेगी मुझे यह प्रतीत नहीं होता।” हताश व्यक्ति की भांति दुर्योधन बोला। “द्रोणगुरु ! मैं तो अब जीवन से तंग आ गया हूँ। विजय की कैसी-कैसी आशा करके मैंने आपको सेनापति बनाया था ! और गुरुदेव ! आप सेनापति हुए उस समय मैंने जो मांगा था उसकी याद है ? न हो तो सुनिये, मेरी मांग थी युधिष्ठिर को जीवित पकड़कर सौंपने की !”

“हां, तुमने यह मांग की थी और मैंने उसका जवाब भी दिया था।” आचार्य ने उत्तर दिया।

“आपकी शर्त के अनुसार मैंने अर्जुन को युद्ध से दूर रखा है। अर्जुन संग्राम में हो तो युधिष्ठिर का पकड़ा जाना सम्भव नहीं हो सकता। मैंने इसके लिए त्रिगर्त के युद्ध की अलग ही योजना की है, इसलिए अर्जुन तो नित्य वहां जाता है। फिर भी आप युधिष्ठिर को नहीं पकड़ सके। आचार्य, सुनते हैं आप ?” दुर्योधन ने पूछा।

“सुनता हूँ राजन् ! सुनता हूँ। और अन्तर में खूब व्यथा अनुभव करता हूँ।” आचार्य ने जवाब दिया। “दुर्योधन ! मनुष्य अपना सिर काटकर तेरे सिरहाने रखे तो भी तू ‘बार-बार कोसते हैं’ यही कहेगा। तू मुझ-जैसे को जिम्मेदारी के काम सौंप सकता है, लेकिन इन कामों को सौंपने के साथ-साथ जो विश्वास रखना चाहिए वह रख नहीं सकता। इसके विपरीत शङ्का की ही दृष्टि से देखा करता है। इसलिए तेरा सौंपना भी मिट्टी में मिलता है और हमारा उत्साह भी धूल में मिल जाता है। तेरे ऐसे शङ्काशील स्वभाव से

भीष्म भी तंग आ गये और अन्त में मारे जाने पर ही छुटकारा पाया। यह ठीक है कि मैं युधिष्ठिर को नहीं पकड़ सका। लेकिन उन्हें पकड़ना कितना कठिन काम है, इसका भी तुझे कुछ खयाल है ?”

“खयाल तो है, लेकिन आपने पाण्डवों के प्रति अपने पक्षपात के यशोभूत होकर जितना प्रयत्न किया जा सकता था, उतना अधिक प्रयत्न आपने क्यों नहीं किया।” दुर्योधन ने तनककर कहा, “देखिए, अभिमन्यु आपका चक्रव्यूह तोड़कर अन्दर प्रवेश करने के लिए आगे बढ़ा, उस समय आप चाहते तो उसे रोक सकते थे। किन्तु अभिमन्यु तो ठहरा अर्जुन का पुत्र इसलिए पूंजी के व्याज की तरह आपको प्रेम था ! उसे आप किस तरह रोकते ?”

“अरे मूर्ख ! कौरव-सेना का सेनापति पद देने के कारण ही तू इस प्रकार की भाषा बोल रहा है ? दुर्योधन ! तेरी विजय ही असम्भव है।” आचार्य ने आवेश में भरकर कहा।

“आचार्य ! क्रोधित क्यों होते हैं। मेरे मन का समाधान कर दीजिए, बस इतना ही तो चाहिए। मुझे जैसा प्रतीत होता है, वही मैं कहता हूँ ! आपसे कहना ही यदि आपको अच्छा न लगता हो तो फिर मैं मन पर गहरा अंकुश लगाकर कोई बात मुंह से निकलने ही न दूंगा।” दुर्योधन ने कहा।

“दुर्योधन ! अभिमन्यु तो सिंह-शावक है, श्रीकृष्ण का भानजा और अर्जुन का पुत्र है। और गर्भ में से ही उसने यह विद्या ग्रहण की थी। यह तो तेरे भाग्य की बात है कि व्यूह में से बाहर निकलने की कला वह सीख नहीं सका, अन्यथा हम सबको लेने के देने पड़ जाते। और फिर जरा सोच तो सही, उस अकेले ने हम इतने सारों को किस तरह खेल खिलाये।” द्रोण ने जवाब देते हुए कहा।

“आचार्य ! सिंधुराज जयद्रथ ने सबको रोका । इसलिए उसमें सफल भी हुए ।” दुर्योधन बोला ।

“ठीक है । फिर भी दुर्योधन ! एक बात तो मेरे मन में अब भी खटकती रहती है । अभिमन्यु का वध करने में हमने युद्ध-विद्या के सारे शिष्टाचार और धर्म को एक ओर उठाकर रख दिया । अकेले अभिमन्यु को मारने के लिए हम छः महारथी इकट्ठे हुए ! अभिमन्यु के पास न तो रथ था, न घोड़ा न सारथी । और तो क्या, आक्रमण का जवाब देने के लिए उस समय उसको धनुष-बाण अथवा ढाल-तलवार तक प्राप्त न थी । क्या ऐसे साधन-विहीन और निहत्थे व्यक्ति को मारकर हमने धार्मिक विजय प्राप्त की है ? फिर भी राजन् ! तुम्हारी खातिर मैंने यह सब कुछ किया ।”

“आचार्य ! आपने जयद्रथ की रक्षा करने की बात कहकर उसे सिंधु जाने से रोका और फिर भी अन्त में उसे बचा तो नहीं सके !” दुर्योधन ने ताना मारते हुए कहा ।

“दुर्योधन ! जिसकी मृत्यु आ पहुँची हो उसे बचाने की शक्ति न तो द्रोण में है, न किमी और में । अर्जुन और श्रीकृष्ण ने जिसको काल-कवलित करने का निश्चय कर लिया हो, उसे बचाने में मैं किसी को समर्थ नहीं पाता । दुर्योधन ! तुम्हें समझ लेना चाहिए कि जयद्रथ ने जिस दिन द्रौपदी पर कुदृष्टि डाली, उसी दिन से वह मरा हुआ ही था ।” आचार्य ने जैसे-को-तैसा जवाब देते हुए कहा ।

“गुरुवर द्रोण ! अर्जुन की अनुपस्थिति में युधिष्ठिर को पकड़ लेना सरल था । अकेला सात्यकि उनकी रक्षा कर रहा था । उसे भी आपने नहीं रोका । ऐसी दशा में युधिष्ठिर को पकड़ने की बात तो अब समाप्त हुई ही समझनी चाहिए । उनके पकड़े जाने पर ही मैंने अपनी सारी बाज़ी लगाई थी, वह अब

सारी पलट गई।” दुर्योधन ने कहा।

“दुर्योधन, दुर्योधन ! किसी ने क्या-क्या नहीं किया, यह गिनाकर दोष निकालना तो बड़ा आसान काम है; लेकिन जिन महापुरुषों के हाथ में समाज-संचालन के बड़े-बड़े तन्त्र होते हैं, उन्हें तो किसने क्या-क्या किया यह तोलकर उसकी कदर करनी चाहिए। दूसरों के दोष ढूँढ़ने की तेरी यह बुद्धि ही तेरे हाथ में आया हुआ राज्य गुमावेगी और तेरे अपने आदमी तेरा कभी भी हृदय से साथ न देंगे। अर्जुन-पुत्र अभिमन्यु समाप्त हुआ, महाराज द्रुपद का अंत हुआ, महाराज विराट् मारे गये और सारी सेना को हिला डालने वाला वह घटोत्कच भी खत्म हुआ। लेकिन यह सब कुछ तेरी किसी गिनती में ही नहीं आता।” आचार्य ने जरा रोष से कहा।

“आचार्य ! निरर्थक-सी बातों के पूरा हो जाने पर भी जब-तक तथ्य की कोई एक बात भी न हो जाय तबतक मुझ-जैसे को सन्तोष कैसे हो सकता है ?” दुर्योधन ने रुखेपन से जवाब दिया।

“दुर्योधन ! बहुत हो चुका, अब चुप रह। जा, मैं तुझे वचन देता हूँ कि द्रोण कल पांचालों का वध करके ही रहेगा। दुर्योधन ! मन में तो यह आता है कि तुझ जैसे कृतघ्न की सेवा करने के बजाय इन सारे शस्त्रास्त्र को तिलांजलि देकर किसी जंगल में चला जाऊँ और वहाँ और कुछ न हो सके तो हरिणों को घास खिलाते-खिलाते ही मृत्यु का आलिङ्गन करूँ। लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि द्रोण के भाग्य में यह नहीं बदा है। जब से अकेले एक अश्वत्थामा की खातिर अपनी गरीब भोंपड़ी छोड़कर बाहर निकला हूँ तब से उस भोंपड़ी के लिए बराबर तरसता रहा हूँ, लेकिन वह भोंपड़ी निरन्तर दूर-ही-दूर होती गई है। और दुर्योधन ! इस समय मैं जो कुछ कह रहा हूँ वह मैं ही नहीं, मेरा

काल बोल रहा है। जा, कल सुबह द्रोण को देख लेना।

मेरे सिर का यह सेनापति का ताज अब चुभने लगा है; यह कवच भार रूप प्रतीत होने लगा है और हाथ इन सब शस्त्रास्त्रों को छूना नहीं चाहते। आज तेरे वचनों से घायल होकर मुझे अग्निवेश के आश्रम के दिन याद आ रहे हैं। अच्छा दुर्योधन, अब जा और निश्चय रख कि कल द्रोण तेरे कहने योग्य कोई बात बाकी न रख छोड़ेगा। इससे अधिक मेरी आंखों के सामने अब और कुछ दिखाई नहीं देता। इसलिए कह नहीं सकता।”

यह कहकर द्रोण चप हो गये और दुर्योधन प्रसन्न होता हुआ डेरे से विदा हुआ।

: ६ :

द्रोण-वध

कुरुक्षेत्र के मैदान पर पन्द्रहवां दिन हुआ और द्रोण कौरव-सेना के मोरचे पर चले। युद्ध को चलते हुए चौदह दिन बीत चुके थे और अक्षौहिणी-पर-अक्षौहिणी समाप्त होती जा रही थी, किन्तु इतने पर भी युद्ध का अन्त दिखाई नहीं पड़ रहा था। दुर्योधन के मन में अत्यन्त उद्विग्नता रहती थी। इसलिए आचार्य अपने मन में यह निश्चय करके निकले थे कि आज या तो वह स्वयं समाप्त हो जायेंगे या पांचालों को समाप्त करके रहेंगे।

युद्ध आरम्भ हुआ और उसके साथ ही द्रोण की घोर संहार-क्रिया भी आरम्भ हुई। पाण्डव योद्धा एक के बाद एक धरा-शायी होने लगे। सारे युद्ध-क्षेत्र में रथों के साज-बाज, टूटे हुए पहिए, हाथी-घोड़ों के सिर और धड़, योद्धाओं के कटे हुए हाथ, पैर, धड़ और सिर चारों ओर फैलने लगे। आचार्य द्रोण पाण्डव-सेना को आज इस तरह अपने सपाटे में ले रहे थे मानो

शिशिर ऋतु के अन्त में विंध्याचल के किसी जंगल में लगा हुआ दावानल वहां के घास, वृक्ष, पशु और पक्षियों को अपने सपाटे में ले रहा हो। उनका रूप भी आज प्रलय काल की अग्नि के समान प्रतीत होता था। रथ में बैठकर सारे युद्ध-क्षेत्र में घूमते हुए वे किस समय तरकस में से बाण निकालते हैं, किस समय उसे धनुष पर चढ़ाते हैं, कब धनुष की प्रत्यंचा खींचते हैं और कब बाण छोड़ते हैं, यह कोई समझ नहीं पा रहा था।

द्रोण के हाथों इस संहार को देखकर पांडव आश्चर्यचकित रह गये। इसी समय श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा—“अर्जुन ! अपने आचार्य को देख। ऐसा प्रतीत होता है मानो आज साक्षात् धनुर्वेद मनुष्यरूप धारण करके युद्ध-क्षेत्र में अवतीर्ण हुआ हो। द्रोण इस समय द्रोण नहीं, साक्षात् काल से दिखाई दे रहे हैं।”

“निःसन्देह आज आचार्य अपने वास्तविक रूप में चमके हैं। इस समय उनके सामने सेना किस तरह टिक सकती है ?” अर्जुन ने कहा।

“टिकने की बात ही कहां है ! यदि आधा दिन भी द्रोण इसी तरह लड़ते रहे तो तुम सबको युधिष्ठिर को राज-मुकुट पहनाते की आशा छोड़ देनी होगी। इसलिए अर्जुन, अब विचार करने का समय नहीं है। जल्दी ही ऐसा उपाय होना चाहिए, जिससे कि द्रोण हथियार छोड़ बैठें। यदि उनके कानों में, ‘अश्वत्थामा मारा गया’। ये शब्द पड़ जायें तो निश्चय ही वे हथियार छोड़ देंगे। इसके सिवा और कोई उपाय नहीं है।” श्रीकृष्ण ने कहा।

श्रीकृष्ण का कहना तो ठीक था, लेकिन अर्जुन को यह मार्ग उचित प्रतीत नहीं हुआ। जिन आचार्य से जीवन की अत्यन्त दुर्लभ विद्या प्राप्त की, जिनकी कृपा से सर्वश्रेष्ठ धनुर्धारी की पदवी प्राप्त की और नित्य जिनके चरणों में प्रणाम

करके युद्ध को आरम्भ करता था, उन्हीं आचार्य को इस तरह छल से मारना उसे नहीं भाया।

किन्तु भीम श्रीकृष्ण की बात सुन चुका था। इसलिए उसने मन में धर ली। पाण्डव-सेना में अश्वत्थामा नाम का एक हाथी था, तुरन्त ही उसे मारकर द्रोण के रथ के निकट पहुंच जोर से चिल्ला उठा। ‘अश्वत्थामा मारा गया, अश्वत्थामा मारा गया।’

द्रोण के कानों में “अश्वत्थामा मारा गया” इन शब्दों की झनकार पड़ी, इसलिए एक क्षण के लिए तो वह स्तब्ध हो गये; किन्तु तुरन्त ही सावधान हो गये और सोचने लगे कि ‘अश्वत्थामा इस तरह मर कैसे सकता है? भीमसेन के कहने का क्या भरोसा? अभी जो उनका मन क्षुब्ध हो उठा था, इस खयाल के आते ही वह फिर स्थिर हो गया और उन्होंने पहले से भी अधिक वेग से संहार-कार्य शुरू कर दिया। आज पांचालों को समाप्त कर देने का उनका संकल्प था। इसलिए उन्होंने अपने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया, जिससे तुरन्त ही अनेक शस्त्रास्त्र एक साथ पाण्डव-सेना पर टूट पड़े।

लेकिन ब्रह्मास्त्र के झूटते ही द्रोण की आंखों के सामने ऋषि-मुनियों की मूर्तियां आकर खड़ी हो गईं और उनसे कहने लगीं, “भरद्वाज-पुत्र द्रोणाचार्य! आपने आज यह क्या किया? ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किस अवस्था में होता है अपने इस आवेश में आप यह तक भूल गये? जिन शत्रुओं के विरुद्ध ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करना हो उनके अधिकार का आपने विचार तक न किया? मुनि अग्निवेश के शिष्य द्रोण! क्या आपको हमें यह बताने की भी आवश्यकता है कि विद्या-संसार के कल्याण के लिए है, संहार के लिए नहीं।” आप तो ब्राह्मण-जीवन के स्वप्नों का पोषण करने वाले

ठहरे, तिस पर भी आज अस्त्र-विद्या का ऐसा दुरुपयोग कर रहे हैं, जैसा कोई आर्य क्षत्रिय भी करना पसन्द न करेगा! आचार्य! जरा सोचो! जरा अपने अन्तर में दृष्टि करके देखो। आपकी तो ऋषि-मुनियों के संघ में ही शोभा है, जंगली-पशुओं की तरह एक-दूसरे को फाड़-खाने वाले इन योद्धाओं के बीच आप नहीं सोहते। लोक-संहार का यह घोर कृत्य आपको शोभा नहीं देता। इसलिए अपने ब्रह्मास्त्र को वापस लो और युद्ध के इस दारुण कृत्य से निवृत्त होओ।”

ऋषि-मुनियों के शब्द मानों वायु से मंकृत होकर द्रोण के कानों में पहुँच रहे हों इस प्रकार द्रोण ने उन्हें सुना और गहरी निश्वास ली। पिता भरद्वाज और गुरु अग्निवेश का ब्राह्मण-जीवन उनकी आंख के सामने मूर्तरूप धारण करके खड़ा हुआ दिखाई देने लगा। जिस दिन द्रुपद के पास जाने के लिए घर से निकले थे, उस दिन की याद हो आई और उसके बाद से वह किस तरह ब्राह्मण-जीवन से दूर-से-दूर हटते गये इसके अनेक चित्र उनके स्मृति-पटल पर आने लगे। उनके शरीर से पसीना बहने लगा और हाथ धीमे पड़ गये।

इसी बीच भीमसेन उनके रथ के पास पहुँचकर कहने लगा—“द्रोणाचार्य! धिक्कार है आपको! आपका प्यारे से प्यारा पुत्र अश्वत्थामा मारा गया और फिर भी आप शस्त्र नहीं छोड़ते! गुरुदेव! ब्राह्मण होकर भी आप इन शस्त्रास्त्रों से लिपटे हुए हैं? अश्वत्थामा तो गया। यदि सचमुच ही वह आपको प्यारा था तो अब लड़ना छोड़िये और अपने प्यारे पुत्र की याद में भगवान् का स्मरण कर कृतार्थ हुआिए।”

ऋषि-मुनियों के वचनों से शिथिल हुए द्रोण भीम के ये शब्द सुनकर और भी शिथिल हो गये। “क्या सचमुच मेरा अश्वत्थामा मारा गया? क्या भीम सच कह रहा है? वह

भूठ कहीं भी क्यों ? तब क्या मेरा अश्वत्थामा गया ? पुत्र ! तुझे अपने इस वृद्ध पिता की भी दया नहीं आई ? किन्तु, नहीं । अश्वत्थामा इस तरह मेरे पहले मर नहीं सकता । फिर भी भीम कहता है कि वह मर गया । लाओ, जरा युधिष्ठिर से पूछूं । युधिष्ठिर अज्ञातशत्रु हैं; अखिल विश्व का साम्राज्य मिलने पर भी वे असत्य भाषण न करेंगे । इसलिए उनसे पूछना ठीक होगा । यह सोचते हुए वह युधिष्ठिर के पास पहुँचे और कहने लगे— “युधिष्ठिर ! भामसेन कहता है कि अश्वत्थामा मारा गया । तू मेरा शिष्य है और संसार तुझे अज्ञात शत्रु कहता है । अतः मैं तुझसे जानना चाहता हूँ कि सच बात क्या है ।”

आचार्य का प्रश्न सुनकर युधिष्ठिर उलझन में पड़ गये । उनके सिर पर बड़ा धर्म-संकट आ पड़ा । एक ओर द्रोण सूखी घास को जला डालने वाले दावानल की भांति सारी पाण्डव-सेना को जलाये डाल रहे थे और आधे दिन भी उनका यह संहार-कार्य जारी रहता तो सारी पाण्डव सेना के समाप्त हो जाने की स्थिति आ सकती थी । इसलिए युधिष्ठिर के सामने यह प्रश्न था कि उन्हें इस संहार-कार्य से किस तरह रोका जाय ? अपने लिए प्राण-त्याग करने के लिए आये हुए योद्धाओं की रक्षा वे न करें तो और कौन करे ? दूसरी ओर उनके सामने प्रश्न था अपने प्रिय सत्य की रक्षा का—शरीर से ही प्रिय नहीं, प्राणों से भी अधिक प्रिय; भाई-बन्धुओं से ही नहीं, हस्तिनापुर के राज्य से ही नहीं, इन्द्र के इन्द्रासन और अखिल विश्व के साम्राज्य से भी अधिक प्रिय सत्य की रक्षा का । क्या ऐसे प्रिय सत्य को छोड़ा जाय ? उनके हृदय में भयंकर मन्थन शुरू हुआ ।

इतने में ही श्रीकृष्ण ने उनके पास पहुँच कर धीमे से कहा— “महाराज युधिष्ठिर आपको मालूम होगा कि अभी भीम अश्वत्थामा नामक हाथी को मार चुका है । अतः आप यह तो कह

ही सकते हैं कि अश्वत्थामा मारा गया। द्रोणाचार्य आज जिस तरह लड़ रहे हैं, यदि थोड़ी देर उसी तरह और लड़ते रहे तो आपको हस्तिनापुर के राज्य की आशा सर्वथा छोड़ देनी होगी। मैं यह समझ सकता हूँ कि द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा नहीं मारा गया। इसलिए आपको यह असत्य भाषण करते हुए असमंजस हो रहा है; किन्तु आपको युद्ध में विजय प्राप्त कर हस्तिनापुर के सिंहासन पर बैठना हो, और इससे भी अधिक यदि आपको अपने लिए प्राणों का विसर्जन करने के लिए आये हुए इन योद्धाओं के प्राणों की जरा भी परवाह हो तो 'अश्वत्थामा मारा गया' यह कहे बिना आपकी गति नहीं है। फिर जैसा आप उचित समझें करें।”

महाराज युधिष्ठिर कभी के इधर-उधर झुकने लगे थे। सत्य और सांसारिक लाभों के बीच उनका अन्तरात्मा कभी का भोके खाने लगा था। इसलिए श्रीकृष्ण के वचन सुनकर उनका हृदय और भी आगे बढ़ा और उनके मुँह से निकल गया “अश्वत्थामा मारा गया।”

किसी जीवित व्यक्ति पर बिजली गिरने पर जिस तरह निमिष-मात्र में ही उसकी स्थिति बदल जाती है उसी तरह द्रोण के कानों में युधिष्ठिर के शब्द पड़ते ही उनकी स्थिति बदल गई—उनके हाथों में से शस्त्र छूटकर नीचे गिर पड़े और सारी इन्द्रियाँ शिथिल हो गईं। ऐसा प्रतीत होने लगा, मानो उनका प्राण गहराई में नीचे उतर गया हो, और वे मूढ़ की तरह रथ में बैठे रह गये। भरद्वाज के पुत्र, अग्निवेश के शिष्य, कृपी के प्रिय पति, द्रुपद के आरम्भ के मित्र और बाद के कट्टर शत्रु, पाण्डव-कौरवों के आचार्य, शस्त्रास्त्र विद्या के मूर्तिमान अवतार और अश्वत्थामा के लिए जीवन धारण कर रहने वाले द्रोणाचार्य को इस स्थिति में देखकर द्रुपद का पुत्र और पांचाली का

भाई धृष्टद्युम्न, जो द्रोण के वध के लिए ही महाकुण्ड से उत्पन्न हुआ था, तत्काल उनके रथ पर जा चढ़ा, उनके सारथी को मार दिया और दूसरे ही क्षण उनके सिर के बाल पकड़कर सिर धड़ से अलग कर दिया और जोरों से जयघोष किया ।

युद्ध के दसवें दिन पितामह मारे गये, पन्द्रहवें दिन द्रोणाचार्य का वध हुआ और उसके साथ ही दुर्योधन की विजय की आशा भी टूट गई।

अश्वत्थामा

: १ :

संहार की प्रतिज्ञा

द्रोणाचार्य का वध होते ही सारी कौरव-सेना में हाहाकार मच गया। द्रोण एक प्रकार से धनुर्वेद की साक्षात् मूर्ति थे; क्षात्र तेज के मूर्तिमान अवतार थे; शत्रु के लिए स्वयं काल रूप थे; वे चाहते तो कुछ क्षणों में ही पांडव सेना को ठिकाने लगा देते और निमिष-मात्र में ही शत्रु को परास्त कर दुर्योधन को विजय-छत्र पहना देते। पांचालकुमार धृष्टद्युम्न ने उन्हीं द्रोणाचार्य का सिर धड़ से जुदा कर दिया, इस समाचार से कौरवों के हौसले पस्त हो गये और सब अपनी-अपनी जान बचाने के लिए भागने लगे। कर्ण अपनी सेना लेकर युद्धक्षेत्र छोड़ गया; शकुनि ने भी अपना रथ छावनी की तरफ बढ़ा दिया; दुःशासन हक्का-बक्का होकर बड़े भाई को दूढ़ने लगा; अनेक सैनिक अपने-अपने रथ और हाथी-घोड़ों पर से उतर-उतर कर भाग गये; अनेक भयभीत होकर भागे तो बहुत-से दूसरों को भागते देखकर भाग खड़े हुए। अमावस्या के भाटे के बाद समुद्र का पानी जिस तरह एक साथ उतरने लगता है उसी तरह घड़ी-भर पहले शौर्य से उभरती हुई कौरव-सेना द्रोण का वध होते ही मैदान छोड़कर तेजी से छावनी की तरफ भागने लगी।

कौरव-सेना की इस भगदड़ की ओर अश्वत्थामा की नजर पड़ी। अभी तक वह उसके एक पार्श्व में रहकर शत्रुओं का संहार कर रहा था। अपने पिता द्रोण के वध का उसे पता न था। आसपास की भगदड़ देखकर वह अधीर हो उठा और अपनी ओर आते हुए दुर्योधन को देखकर कहने लगा—
“राजन् ! यह कौरव-सेना इस तरह क्यों भागी जा रही है ? पिता द्रोण के हाथ में शस्त्रास्त्रों के रहते यह भागने का विचार तक कैसे कर पा रही है ? कम-से-कम मैं तो इस भगदड़ को सहन नहीं कर सकता ।”

“अश्वत्थामा ! मेरे हृदय में इस समय कितने घाव लगे हैं, यह मैं तुम्हें किस तरह बताऊँ !” दुर्योधन ने जवाब देते हुए कहा। “आह ! आज मुझ जैसे ग्यारह अक्षौहिणी सेना के अधिपति की अपेक्षा एक सामान्य सैनिक तक कितना अधिक सुखी है ? मेरा हृदय भर आया है, इसलिए कृपाचार्य, आप अश्वत्थामा की बातों का जवाब दें तो अच्छा हो ।”

“राजन् ! आप के हृदय पर आज कितना भार है, यह मैं अच्छी तरह समझता हूँ। इसलिए जिस समाचार के कहने में आपकी जिह्वा नहीं खुलती, वह दुःखद समाचार मैं कड़ा हृदय करके अपने भानजे अश्वत्थामा को सुनाता हूँ।” कृपाचार्य ने धीमे स्वर में कहा।

“कौन-सा समाचार, मामा ?” अश्वत्थामा ने पूछा।

“तेरे पिता द्रोण के वध का।” कृपाचार्य ने कह डाला।

“मामा, क्या कहते हो ! मेरे पिता द्रोण मारे गये ?” अश्वत्थामा ने व्याकुल होकर पूछा।

“हां, मारे तो गये ही, लेकिन इस तरह मारे गये कि सारी कौरव-सेना के हृदय में तीर-सा चुभ गया।” कृपाचार्य ने जवाब दिया।

“सो, किस तरह ?”

“पांचाल-पुत्र धृष्टद्युम्न ने उनका सिर काट लिया !”

“मामा, आपकी बात मेरो समझ में नहीं आती । द्रोण के हाथ में शस्त्रास्त्र रहते । और तो क्या, स्वयं काल की भी इतनी शक्ति नहीं कि उनकी तरफ नज़र उठा सके ।” अश्वत्थामा ने कहा ।

“अश्वत्थामा, तू सच कहता है । द्रोणाचार्य तो आज प्रातः से ही किसी महारण्य में दावानल के घास को जलाने की भांति सारी पाण्डव-सेना को भस्मीभूत कर रहे थे । इससे स्वयं श्रीकृष्ण को ऐसा लगने लगा था कि यदि द्रोण इसी तरह कुछ और समय तक लड़ते रहे तो सारी पाण्डव सेना एक-दो दिन में ही समाप्त हो जायगी ।” कृपाचार्य ने कहा ।

“तब फिर ? अश्वत्थामा ने पूछा ।

“फिर क्या ।” पाण्डवों की विजय के उत्सुक श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा—अर्जुन, जरा आचार्य की ओर तो देख । प्रज्वलित दावानल में जलने वाले कीट पतंगों की तरह अपने सैनिक आचार्य की तेजोग्नि में पड़कर मौत के मुंह में जा रहे हैं । आचार्य यदि आधा दिन भी इस तरह लड़ते रहे तो तुम पाण्डवों को विजय की आशा छोड़ देनी होगी ।” कृपाचार्य ने जवाब दिया ।

“श्रीकृष्ण ने ठीक ही कहा । लोग चाहे जो कुछ कहें, श्रीकृष्ण अपने इस युग के महापुरुष हैं । अच्छा, फिर क्या हुआ ?” अश्वत्थामा बोला ।

“इसके साथ ही श्रीकृष्ण ने यह भी कहा कि आचार्य के हाथ में शस्त्र रहने तक किसी की हिम्मत नहीं कि उनकी तरफ देख सके । उनके हाथ से शस्त्रास्त्र छुड़ाने हों तो ऐसा उपाय

करना चाहिए जिससे 'अश्वत्थामा मारा गया' ये शब्द उनके कानों में पड़ें।" कृपाचार्य ने बतलाया।

"अश्वत्थामा तो अमर है।"

"किन्तु श्रीकृष्ण का मत यही था कि अश्वत्थामा की मृत्यु के शब्द आचार्य के कान में पड़ने पर ही वे शस्त्रास्त्र छोड़ेंगे, और किसी उपाय से नहीं।" कृपाचार्य ने कहा।

"बहुत खूब?" अश्वत्थामा बोला।

"लेकिन श्रीकृष्ण की यह बात अर्जुन को अच्छी नहीं लगी और उसने उसे सुनकर अपना मुंह फेर लिया।" कृपाचार्य ने आगे कहा।

"यह बात सव्यसाची अर्जुन के योग्य ही थी।" अश्वत्थामा ने कहा।

"किन्तु भीमसेन पास ही था। उसने यह बात सुन ली और सुनते ही नजदीक जाकर अश्वत्थामा नाम के एक हाथी को मार कर 'अश्वत्थामा मारा गया, अश्वत्थामा मारा गया' यह शोर मचा दिया।"

"मामा जी! भीमसेन जैसे लोग जब इस तरह की गड़बड़ करते हैं तो बड़ी परेशानी हो जाती है" अश्वत्थामा ने कहा।

"परेशानी क्यों हो?" कृपाचार्य ने पूछा।

"परेशानी हुई। भीमसेन का कोलाहल जब आचार्य के कानों में पड़ा तो उन्हें बहुत क्रोध हुआ, फिर भी उनका संहार-कार्य तो जारी ही रहा।" कृपाचार्य बोले।

"पिता ऐसे शोर से कैसे घबरा गये?" अश्वत्थामा ने पूछा।

"घबरा कैसे गये, उनका काल उन्हें बुला रहा था। भीमसेन ने उनके पास आकर जोर से आवाज लगाई 'अश्वत्थामा मारा गया। और पुत्र के मारे जाने पर भी लड़ने पर आचार्य को धिक्कारा।" कृपाचार्य ने जबाब दिया।

"लेकिन पुत्र के जीवित होते हुए आचार्य को फटकार बताने

वाला भीम होता कौन है ?” अश्वत्थामा ने आवेश में कहा ।

“कुछ भी हो, भीम की फटकार सुनकर आचार्य कुछ सहम गये और उसका कहना ठीक है या नहीं, इसका निश्चय करने के लिए वे युधिष्ठिर के पास गये ।” कृपाचार्य ने बतलाया ।

“सत्यवादी युधिष्ठिर के पास ?” अश्वत्थामा ने पूछा ।

“हां ।” कृपाचार्य ने जवाब दिया ।

“फिर ?” अश्वत्थामा ने पूछा ।

“आचार्य ने जब युधिष्ठिर से अश्वत्थामा के मारे जाने के सम्बन्ध में पूछा तब श्रीकृष्ण उनके पास ही थे । युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण की तरफ देखा और कभी स्वप्न में भी भूठ न बोलने वाले कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण का संकेत पाकर कह दिया—“हां, अश्वत्थामा मारा गया ।” कृपाचार्य ने जवाब देते हुए कहा ।

“मामाजी ! युधिष्ठिर भूठ बोले, यह तो गजब हो गया ! कुरुक्षेत्र के युद्ध का परिणाम चाहे जो कुछ हो; साम्राज्य का मुकुट दुर्योधन के सिर पर रखा जाय अथवा युधिष्ठिर के; लेकिन युधिष्ठिर भूठ बोले इससे उनकी पराजय तो आज हो चुकी । आह ! बेचारे युधिष्ठिर ! मेरे और भीमसेन-जैसों के जीवन में तो सरल और सीधा सत्य ढूंढने से भी मुश्किल से मिलेगा; लेकिन वह तो आज ठेठ अन्तिम सीढ़ी पर पहुंच कर उससे फिसल पड़े । खैर ! फिर, पिताजी का क्या हुआ ?” अश्वत्थामा ने कहा ।

“आचार्य ने युधिष्ठिर के शब्द सुनते ही हाथ से हथियार छोड़ दिये और आंख मूंदकर रथ पर बैठ गये !” कृपाचार्य ने जवाब देते हुए कहा ।

“शस्त्र छोड़ दिये ?”

“हां ।”

“आह, पिताजी ! आपने शात्र क्यों छोड़ दिये ? आपका प्रिय पुत्र अश्वत्थामा तो यहां जीवित बैठा है।” अश्वत्थामा ने व्यथित हृदय से कहा।

“द्रोण के हाथ से हथियार रखते ही धृष्टद्युम्न रथ पर चढ़ दौड़ा और उनके बाल पकड़कर सिर धड़ से जुदा कर दिया।” कृपाचार्य ने बतलाया।

“पिता का सिर धृष्टद्युम्न ने काटा ? धृष्टद्युम्न ने ! आह, पांचालकुमार ! आज तूने गुरु-हत्या का महापाप किया। किन्तु क्या तुझे पता नहीं कि अश्वत्थामा अभी जीता है ? पापो कहीं के ! तूने अधमतापूर्वक पिता की हत्या की और अर्जुन यह सब देखता रहा ? पाण्डव भा देखते रहे ? श्रोकृष्ण ने भी उसे न रोका ?” अश्वत्थामा आवेश में कहता गया।

“अर्जुन ने तो ज़ोर देकर धृष्टद्युम्न से कहा था कि गुरुजी का वध नहीं करना है, इन्हें जीवित पकड़ लाना है।” कृपाचार्य ने बताया।

“और तिस पर भी उस नीच पाञ्चालकुमार ने उनका वध कर डाला ? धृष्टद्युम्न ! तुझे इस बात का जरा भी खयाल न आया कि द्रोण के एक सिर के बदले कितने पाण्डवों के सिर तराजू में तौलने पड़ेंगे ? द्रूपद के छोकरे ! याद रखना, द्रोण के भी एक लड़का है और वह भी पिता का बदला लेना जानता है।” यह कहता हुआ अश्वत्थामा क्रोध से फुंकार मारने और आँखें चढ़ाने लगा।

“अश्वत्थामा ! शान्त हो, शान्त हो !” कृपाचार्य ने उसे समझाने की चेष्टा करते हुए कहा।

“मामा ! पिता की मृत्यु के समाचार ने मुझे व्याकुल कर दिया है। मैं सुध-बुध गंवा बैठा हूँ और मेरी आँखें धृष्टद्युम्न को ताक रही हैं। युद्धस्थल में उसे देखकर मैं क्या कर डालूंगा,

कुछ कहा नहीं जा सकता ।” अश्वत्थामा ने रोषपूर्वक कहा ।

“प्रिय अश्वत्थामा ! इतना उतावला न हो, तेरे रोम-रोम में आग बरस रही है । जरा उसे शान्त कर । द्रोण तो अब स्वर्ग को सिधारे । तू मन को विह्वल न कर ।” कृपाचार्य ने उसे शान्त करने का प्रयत्न करते हुए कहा ।

“मामा ! मामा ! पिता मुझे छोड़कर स्वर्ग-धाम को चले गये, इस विचार-मात्र से ही मैं विकल हो उठता हूँ । पिता ! मेरे जन्म के आरम्भ काल से ही आप मेरे लिए जिये; मेरे लिए हस्तिनापुर की खाक छानी; मेरे लिए दुर्योधन का साथ दिया और अन्त में मेरे लिए ही प्राण त्यागे ! पिता ! हा, पिता ! आपके ऋण से मैं किस प्रकार उच्छ्रय हो सकूँगा !” अश्वत्थामा ने विलाप करते हुए कहा ।

धृष्टद्युम्न का वध करके तुम उस ऋण से उच्छ्रय हो सकते हो ।” कृपाचार्य ने कहा ।

“इतना ही काफी नहीं है । द्रोण और पाञ्चाल वंशों के बीच परम्परा से वैर चला आ रहा है । आज धृष्टद्युम्न ने पिता का वध करके इस जलती हुई अग्नि में फूँक मारकर उसे और भी भड़काया है । अश्वत्थामा अकेले धृष्टद्युम्न का ही नहीं, सारे पाञ्चाल-परिवार के सिर धड़ से ज़ूदा करके ही अपनी आत्मा को तृप्त कर सकता है और तभी उसका पितृ-तर्पण पूरा हो सकता है । अश्वत्थामा यह न कर सका तो मामा, तुम समझना कि तुम्हारी बहन के गर्भ से पत्थर पैदा हुआ था, अश्वत्थामा नहीं ।” अश्वत्थामा ने आवेश के साथ कहा ।

“अश्वत्थामा, यह प्रतिज्ञा बड़ी कड़ी है । जरा विचार कर मुंह से शब्द निकालो ।” दुर्योधन ने कहा ।

“राजन् ! पिता ने तो मेरे लिए प्राण तक गंवा दिये और मैं पाञ्चालों का वध करने में सोच-विचार करूँ ? राजन् !

मेरे लिए तो आश्चर्य की बात यही है कि इस प्रकार पिता का सिर काटने वाला अभी तक अपना सिर धड़ पर धारण किये जीवित मौजूद है ! और हाँ, मामा ! तुम तो मुझे पागल ही कहा करते हो ?”

“मैं तो अभी भी वही कहता हूँ । पाण्डवों के वध का विचार करना कोई ऐसी-वैसी बात नहीं है ।” कृपाचार्य ने कहा ।

“किन्तु मामा ! धृष्टद्युम्न ने बाल पकड़कर पिता का सिर काट लिया क्या यह बात ऐसी-वैसी है ! आप याद रखना, आपका यह भानजा पाण्डवों में ऐसा तड़लका मचायगा कि उनके सिर तो धड़ से जुदा होंगे ही, साथ अश्वत्थामा का नाम सुनकर पाञ्चाल स्त्रियों के गर्भ गिरने लगेंगे और एकाध बचा-खुचा पाञ्चाल-वंशी बाकी रहा भी तो संसार के किसी कोने-कचरे में लुक-छिपकर उसे अपना जीवन बिताना होगा ।” अश्वत्थामा ने दृढ़तापूर्वक कहा ।

“आचार्यमुत ! यदि ऐसा हुआ तब तो बहुत भारी काम होगा । तब तो युधिष्ठिर को भी पता चल जायगा कि सत्य का त्याग करके भी वह पृथ्वी का साम्राज्य प्राप्त न कर सके ।” दुर्योधन ने बढ़ावा देते हुए कहा ।

“राजन् ! वही होगा । मैं तो हृदय से इस बात की प्रतिज्ञा कर चुका हूँ ।” अश्वत्थामा ने कहा ।

: २ :

वैर की अग्नि

कुरुक्षेत्र से कुछ ही दूरी पर एक मोटे बरगद के पेड़ के नीचे रात को पहरा लगा हुआ था ।

“कौन वहाँ घूम रहा है ?” बरगद के नीचे लेटे हुए कृपाचार्य ने आवाज देकर पूछा ।

“मामा ! मैं हूँ अश्वत्थामा”

“बेटा, अभी तू सोया नहीं ?” कृपाचार्य ने बैठे होते हुए पूछा। इतने ही में पास में सोते हुए कृतवर्मा ने पूछा--“अश्वत्थामा ! वहाँ रथ के पास क्या कर रहे हो; क्या भोर हो गई ?”

“दिन निकलने में तो अभी बहुत देर है।” अश्वत्थामा ने जवाब दिया।

“तो फिर रथ किस लिए जोड़ रहा है ? यहाँ आ, मेरे पास सो जा।” कृपाचार्य बोले।

“मामा ! आप ही के पास तो सो रहा था। बहुत देर तक करवटें लेता रहा, लेकिन नींद आती ही नहीं।” अश्वत्थामा ने जवाब दिया।

“हृदय में आग जल रही हो तब नींद आवे भी तो कैसे ?” कृतवर्मा ने कहा।

“आग तो हमारे हृदय में भी जल रही है।” कृपाचार्य बोले।

“मामा ! आग-आग में भी अन्तर होता है।” मुँह फेरते हुए अश्वत्थामा ने कहा।

“अश्वत्थामा ! क्या तू समझता है कि हमारे हृदयों में पाण्डवों और पाञ्चालों के प्रति कुछ कम दाह है ? क्या तू यह समझता है कि महाराजा दुर्योधन की अन्तिम इच्छा की पूर्ति के लिए हमारे मन में कम लगन है ?” कृपाचार्य सहन न कर सके हों इस प्रकार बोले।

“मामा इसमें समझने को तो कोई बात ही नहीं है। महाराज दुर्योधन के पास से विदा होकर इस पेड़ के नीचे पहुँच कर आप दिन निकलते ही पाञ्चालों की छावनी पर धावा कर देने का निश्चय करके दोनों जने सो गये और मैं विकलता के मारे करवटें बदलता-बदलता अन्त में उठकर रथ जोड़ने के लिए चल दिया। मैं अभी तो पाञ्चालों की छावनी पर जाता हूँ।” अश्वत्थामा ने ऊँचा कटाक्ष करते हुए कहा।

“अभी, इतनी रात को ?” कृपाचार्य ने आश्चर्य से कहा।

“मामा ! अश्वत्थामा के लिए तो अब रात और दिन एक समान ही हैं।

“अश्वत्थामा ! तेरा सिर फिर गया मालूम होता है।” कृपाचार्य ने कहा।

“आप सच कहते हैं मामा ! अज्ञातशत्रु युधिष्ठिर गुरु की हत्या के लिए असत्य बोलते हैं; पिता द्रोण ऐसे वचन पर विश्वास कर शस्त्र छोड़ बैठते हैं; पांचालकुमार धृष्टद्युम्न शस्त्र-रहित गुरु का सिर काट लेता है; बलराम और श्रीकृष्ण के देखते-देखते भीमसेन महाराज दुर्योधन की जंघा पर गदा का प्रहार करता है; और जिस मस्तक पर हस्तिनापुर का राज-मुकुट शोभित होता है उम पर चोट पहुँचाता है; इन सब दृश्यों से अकेले अश्वत्थामा का ही नहीं बल्कि सारे मानव-समाज का सिर चक्कर खाने लगा है। इतने पर भी पांडव और पांचाल अभी तक किस के भाग्य से जीवित हैं !” अश्वत्थामा ने आवेश के साथ जवाब दिया।

“भाई, दिन निकलते ही मैं और मामा तेरे साथ चलेंगे। हम ने पांचालों को परास्त करने का महाराज दुर्योधन को वचन दिया है, यह बात मैं भूल नहीं गया हूँ।” कृतवर्मा ने कहा।

“कृतवर्मा, मुझे क्षमा करो। अश्वत्थामा दिन निकलने तक की प्रतीक्षा करने की स्थिति में नहीं है। यह रात्रि मुझे बुला रही है; यह अन्धकार अपना सहयोग देने के लिए हाथ बढ़ा रहा है; इस पेड़ पर का घुग्घू सोते हुए सत्र कौओं को मारकर मुझे कभी का गुरुमंत्र पढ़ा रहा है और वहाँ उस भूमि पर जीवन के अन्तिम साँस लेते हुए महाराज दुर्योधन मझे फट-

कार रहे हैं। मामा ! आप जानते हैं कि आज तो इन महाराज के एक श्वास का भी मूल्य है। इसलिए मैं रात को व्यर्थ ही गँवा नहीं देना चाहता।” अश्वत्थामा ने कहा।

“अश्वत्थामा ! तू कहता है वह सब कुछ सच है; किन्तु रात्रि के समय शत्रु पर धावा बोलना उचित नहीं। हम आर्यों के और राक्षसी आदि के युद्धों में यह भी एक भारी अन्तर है। हम आर्य युद्ध तो करते हैं, किन्तु अपना मनुष्यत्व गँवाकर, पशु न बन जाने की दृष्टि सामने रखकर, युद्ध समाप्ति के बाद हम सब खिलाड़ियों की तरह आपस में मिल-जुलकर रहते हैं। इस प्रकार रात्रि हमारा युद्ध-विराम है। हमारे युद्ध-शास्त्रों ने युद्ध के समय उत्पन्न पशु-वृत्ति को मिटा देने और मानव-हृदय के उच्च अंकुरों को विकसित करने के समय को पवित्र समय माना है। इसलिए इस समय युद्ध करके हमें उसे अपवित्र न कर देना चाहिए।” कृपाचार्य ने खिन्न होते हुए कहा।

“मामा ! आप कैसी बात करते हैं ? यह सारा युद्ध ही अपवित्रता की मूर्ति है।” अश्वत्थामा ने ज़रा हँसते हुए कहा।

“अश्वत्थामा ! यह ठीक है कि जहाँ चचा भतीजे का सिर काट रहा है, मामा भानजे को पृथ्वी पर लिटा रहा है और भाई भाई के प्राण ले रहा है वहाँ मानव-हृदय की पवित्रता के लिए स्थान नहीं है। किन्तु आपसी भगड़ों को सुलझाने के लिए जब तक हमारे पास कोई दूसरा उपाय न हो, तब तक ऐसा युद्ध अनिवार्य ही है। किन्तु इसमें भी मनुष्य ने मानवता के कतिपय तत्त्वों को स्थान देने का प्रयत्न किया है। उन्हीं में से युद्ध का शिष्टाचार पैदा होता है। युद्ध में शत्रु का वध तो किया जाय, किन्तु वह भी वीरता के अमुक मान का पालन करके। उदाहरण के लिए, गदा-युद्ध तो किया जाय, किन्तु उममें किसी की नाभि के नीचे प्रहार न किया जाय—यह गदा-युद्ध का शिष्टाचार है।

इस प्रकार के शिष्टाचार युद्ध की भीषणता में भी मानव-हृदय का सन्देश पहुँचाते हैं, और मनुष्य चाहे जितना पशु ही बन जाय, फिर भी अन्त में है वह मनुष्य ही, यह सिद्ध करता है।” कृपाचार्य ने जवाब देते हुए कहा।

“मामा ! मुझे तो ये सब बातें मनुष्य की निरी पशुता को ढकने के लिए शास्त्रकारों का कोरा ढकोसला प्रतीत होता है।” अश्वत्थामा ने सिर खुजाते हुए कहा। “मनुष्य पशु ही है और पशु ही रहेगा। इस प्रकार के शिष्टाचारों से उमके पशुत्व को ढककर धर्माधर्म के ये ढोंग क्यों खड़े करते हो ? पशु तो पशु ही है। वह एक दूसरे का शिकार करता है और जब मौत आती है तो मर जाता है। आपके इन युद्ध-विराम, रात, धर्मयुद्ध और शिष्टाचार आदि सबको धता बनाकर मनुष्य एक बार पूरा पशु बन जाय तो ही अच्छा है। मनुष्य यदि सचमुच मनुष्य ही होगा, पशु नहीं, तो अन्त में थक जायगा, और अपनी पशुता को और उसी तरह इस प्रकार के युद्धों को छोड़ भी देगा। किन्तु आप शास्त्रकार लोग, एक बार मनुष्य को जी भरकर पशु बन जाने दो न ?”

“अश्वत्थामा ! कैसी मूर्खता-भरी बातें करता है।” कृपाचार्य से न रहा गया और बीच में हा बोल पड़े। “तेरे हिसाब से तो फिर धनुर्वेद की ये सब मर्यादाएँ निरी मूर्खता ही होंगी ? मेरे मत से तो पांडव और पांचाल निश्चिन्त होकर सोते हों उस समय उनपर धावा करना सुस्पष्ट अधर्म है।”

“मैं भी इन्कार कहां करता हूँ। मैं तो मानता हूँ कि यह युद्ध, यह मार-काट यह कटा-कटी स्वयं अधर्म है।” अश्वत्थामा ने कहा। “किन्तु, साथ ही मैं मानता हूँ कि जब हमने इस महान् अधर्म को अङ्गीकार किया, इतना ही नहीं, धर्म समझा, तब ऐसे छोटे-छोटे अधर्म तो उसके निरे बच्चे हैं। शत्रु को जब

मारना ही है तो फिर दिन को ही मारिये या रात को, दोनों समान ही हैं। रात को मारने से बिचारा सोते हुए हो प्राण गँवा देगा, इससे उल्टे और दुःख से बच जायगा।”

“अश्वत्थामा ! ऐसा प्रतीत होता है कि द्रोणाचार्य की सारी विद्या का तुझपर उलटा असर हुआ है। शास्त्रकारों ने तो सोते हुए सिंह तक के शिकार को वर्जित ठहराया है।” कृपाचार्य ने कहा।

अश्वत्थामा इस पर फिर हँस पड़ा और कहने लगा — “यह तो इसलिए है कि सोते हुए सिंह को मारने में वीरता कम रहती है। इसलिए जिसे अपनी बहादुरी दिखानी हो वह सिंह को जगाकर उसका शिकार करे। किन्तु जिसके लिए वीरता-अवीरता का कोई प्रश्न न होकर केवल सिंह के प्राण लेने का ही प्रश्न हो, वह उसे सोते हुए को मारे या जगाकर, दोनों एक-सा ही है। अश्वत्थामा को अपनी वीरता दिखानी हो तो वह सोते हुए शत्रुओं को न मारे। किन्तु आज मेरे लिए तो वीरता का कोई प्रश्न ही नहीं है। इस बात को तो संसार आज तक कई बार देख चुका है कि अश्वत्थामा वीर है और वीर-पुत्र है। इस समय तो मेरे सामने पांचालों के वध का प्रश्न है। इस काम के लिए मुझे दिन की अपेक्षा रात अधिक अनुकूल प्रतीत हो रही है। इसलिए, मामा ! आपको वीरता दिखानी हो तो भले ही आप दोनों सुबह आना, मैं तो इसी समय जा रहा हूँ।”

“अश्वत्थामा ! हमें भी कोई वीरता का ढिंढोरा नहीं पीटना है।” कृतवर्मा ने कहा। “किन्तु हमारे लिए शोभा की बात यही है कि हम मारें तो उसे ललकार कर मारें। सोते हुए पर आक्रमण करना तो निरे कायर का काम है।”

“तुम्हारी बात बिलकुल ठीक है, किन्तु अश्वत्थामा आज ऐसी स्थिति पर पहुँच गया है कि कायर कहलाकर भी वह आज

रात को ही आक्रमण करेगा। इन पांचालों के नामों का खयाल करता हूँ तो मेरे रोएँ खड़े हो जाते हैं और उनमें से आग भड़ने लगती है।” अश्वत्थामा ने रोषपूर्वक कहा। “मामा ! मामा ! मैं आपसे क्या कहूँ ? कोई ऐसा वेग मुझे ढकेले दे रहा है जिसे मैं समझ नहीं पा रहा हूँ, इसलिए मैं बिवश हो गया हूँ। आप मुझे रोकेंगे तो आत्म-हत्याके सिवा मेरे लिए कोई दूसरा मार्ग न बचेगा।”

“अश्वत्थामा ! तू पागल हो जायगा।” कृपाचार्य ने कहा।

“मामा ! यही चाहता हूँ।” उसने कहा। “आज ये शस्त्रास्त्र, यह ज्ञान, यह यज्ञोपवीत, सब भाररूप प्रतीत होते हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि यह सिर भी धड़ से उतर जाय तो बोझ हलका हो जाय। मामा ! इस समय मैं आपकी रात-दिन अथवा धर्माधर्म की झंझट में पड़ना नहीं चाहता। जिस तरह भी हो पांचालों की जड़ खोद फेंकूँ, बस मेरे मन में तो आज यही एक बात, यही एक काम और यही एक ध्येय समा रहा है। फिर चाहे यह धर्म हो या अधर्म, यह रात में हो या दिन में, पांचालों को नाश किये बिना हृदय की आग नहीं बुझेगी।”

“अश्वत्थामा !” कृपाचार्य ने सम्बोधन करते हुए कहा, “मनुष्य के हृदय में तो ऐसी न मालूम कितनी आगें जलती रहती हैं, सिर्फ हमें उनका ज्ञान नहीं होता। आज एक को बुझाने के लिए पीछे पड़ने पर कई दूसरी धधकती हुई प्रतीत होगी। अश्वत्थामा ! मैंने तेरी अपेक्षा दो चौमास अधिक देखे हैं। तुझे यह न समझ बैठना चाहिए कि हृदय की आग यों ही बुझ जाती है। कई बार तो एक को बुझाने का प्रयत्न करते हुए मनुष्य दूसरी दस नई आग भड़का बैठता है और अन्त में अपने चारों ओर धधकती अग्नि में स्वयं ही जलकर भस्मीभूत होजाता है।”

“मामा ! मुझे न रोको ।” अश्वत्थामा ने व्यग्रतापूर्वक कहा । आज आपके शब्द मेरे कानों में गूँजते हैं, किन्तु फिर भी मेरा मन उन्हें सुनना नहीं चाहता । आज तो आपका भानजा जाकर ही रहेगा । मुझे आशीर्वाद दीजिए ।”

“किन्तु हम आ ही रहे हैं न ?” कृतवर्मा ने कहा ।

“तुम पीछे आना, मुझे आगे जाने दो । ऐसा प्रतीत होता है पांचालों का काल मुझे बुला रहा है ।” यह कहते हुए अश्व-त्थामा ने अपना रथ पूरे वेग से पांचालों की छावनी की ओर हॉक दिया ।

: ३ :

अंधेरी रात में

कुरुक्षेत्र इस समय भारतवर्ष का हृदय बना हुआ है । आज अठारह दिनों से वहाँ भारत के धर्माधर्म का लेखा लिखा जा रहा है; अठारह दिनों से हस्तिनापुर का राज-मुकुट वहाँ अपने लिए योग्य मस्तक की खोज कर रहा है । कुरुक्षेत्र के इस मैदान पर संसार के अंधकार को वेधता हुआ अश्वत्थामा का रथ धृष्टद्युम्न की छावनी की तरफ बढ़ा जा रहा है ।

अश्वत्थामा जन्म से ब्राह्मण है और परमात्मा ने ब्राह्मण के मस्तक में इसलिए विद्यारत्न पैदा किया कि वह अपनी इस विद्या से संसार की सेवा करे । किन्तु अश्वत्थामा के भाग्य में कुछ और ही बढ़ा था । द्रोण को वह प्राणों से भी अधिक प्रिय था; उसके दूध का प्रश्न हल करने के लिए द्रोण ठेठ द्रुपद के पास तक गये और द्रुपद को नीचा दिखाकर चैन ली; अश्व-त्थामा के प्रति प्रेम के कारण ही उन्होंने उसे चुपचाप शस्त्र-विद्या की शिक्षा दी; उसकी ममता के कारण ही द्रोण ने हस्तिनापुर रहना स्वीकार किया और अन्त में उसी की ममता के मारे शस्त्र छोड़कर मृत्यु का वरण किया ।

द्रोण का ऐसा लाड़ला अश्वत्थामा जन्म से ब्राह्मण होते हुए भी, ब्राह्मण न रहा था। उसका सारा जीवन हस्तिनापुर के प्रपञ्चों और शस्त्रास्त्रों की झनकार के बीच ही बीता था। द्रोण की प्रतिभा और गौरव ने अश्वत्थामा को कुछ अभिमानी भी बना दिया। आज वह उन्हीं पिता के वध के कारण पागल हो उठा था। पिता के वध से चकर खाया हुआ उसका मस्तिष्क कुछ विकृत-सा हो गया था; उसका सारा शरीर काँपने लगा था; उसकी रक्ताभ आँखें देखते हुए भी मानो देख नहीं पाती थीं; घोड़े की लगाम, हाथ का चाबुक, अपना रथ और सारा मार्ग कुछ भी दिखाई नहीं पड़ रहा था; उसकी आँखें देख रही थीं केवल सुदूर छावनी में अपने पलंग पर सोये हुए एक-मात्र धृष्टद्युम्न को।

पाञ्चालों की छावनी के पास पहुँचते ही अश्वत्थामा रथ पर से उतर पड़ा; घोड़ों को खोल दिया और स्वयं छावनी का एक चक्कर लगाने के लिए चल पड़ा। चारों ओर निस्तब्धता छाई हुई थी; दीपक मन्द-मन्द जल रहे थे; रात्रि ने सारे डेरों पर अपना लिहाफ़ उड़ा रखा था; केवल दूरी पर एकाध शृगाल बोल रहा था; बीच-बीच में पहरूवे का पगरव सुनाई पड़ता था, और दूर से-बहुत दूर से महाराज दुर्योधन की आँखें अन्धकार को वेधकर अश्वत्थामा के सारे शरीर में व्याप्त व्यग्रता को टिकाये हुए थी।

अश्वत्थामा ने घूमते हुए छावनी का चक्कर लगाया और उसके सारे डेरों की गिनती की; पहरेदार को अच्छी तरह देखा और तुरन्त ही तरकश में से तीर निकालकर उस पर चलाया। रात की शान्ति को वेधता हुआ तीर सन-सन करता हुआ चला; किन्तु पहरेदार का पहरा यथावत् जारी रहा। अश्वत्थामा ज़रा रुका और फिर तुरन्त ही दूसरा तीर चलाया। उसका भी कुछ असर न हुआ और पहरेदार के क़दम वैसे ही पड़ते रहे।

यह क्या बात है ? अश्वत्थामा उत्तेजित हो उठा, और एक के बाद एक तीर चलाने लगा। दो, चार, दस, बीस, पच्चीस, पचास, अनगिनत तीर चला डाले, लेकिन ऐसा मालूम होता था मानो पहरेदार उन सबको निगल जाता हो।

“अवश्य ही, यह पहरेदार कोई साधारण व्यक्ति नहीं है।” अश्वत्थामा ने निमिष-मात्र में ही कल्पना कर ली। वह सोचने लगा “जब कि अर्जुन तक मेरा एक भी तीर विफल नहीं कर सकता, वहाँ इस चौकीदार ने मेरे इतने तीर हवा में चलाये गये तीरों की तरह बेकार कर दिये !”

उसने फिर तीर चला चलाकर अपना तर्कश खाली कर दिया, किन्तु व्यर्थ !

“क्या अकेला यह पहरेदार ही मेरा सारा समय खा जायगा और दिन निकलने से पहले धृष्टद्युम्न को समाप्त करने का मेरा संकल्प निरा संकल्प ही रह जायगा ? पिता द्रोण ! आपका पुत्र आज अवश्य ही आपका वैर चुका कर रहेगा। महाराज ! दुर्योधन ! विश्वास रखिये जीवन के अन्तिम तट पर बैठे हुए आपको मैं धोखा कभी न दूँगा। यह किसकी आवाज़ सुनाई दे रही है ? क्या पहरेदार ने किसी को जगा दिया ? नहीं, नहीं, यह तो मेरा निरा भ्रम है।”

अश्वत्थामा इस तरह मन में सोचता-विचारता हुआ छावनी की सीमा के पास पहुँच गया और चौकीदार को सचेत कर कहने लगा—“भाई मैं नहीं जानता कि मेरे सारे बाणों की परवान करने वाले तुम कौन हो। आज मेरे लिए एक-एक पल का भी मूल्य है। इसलिए तुमसे जानना चाहता हूँ, अन्यथा तुमसे पूछता तक नहीं। तुम जो कोई भी हो, मुझे इसकी चिन्ता नहीं। मैं अपने बारे में बता देना चाहता हूँ कि मैं आचार्य-पुत्र अश्वत्थामा हूँ और मैंने पाञ्चालों का वध करने की प्रतिज्ञा की है

इसलिए छावनी के अन्दर प्रवेश करना चाहता हूँ ।”

“खबरदार, आगे कदम न रखना ।” पहरेदार ने शान्त किन्तु दृढ़ता लिये हुए स्वर में कहा । अश्वत्थामा के पैर न चाहते हुए भी पीछे को खिसक गये । “अश्वत्थामा ! तूने मुझे नहीं पहचाना । मैं कैलाशवासी शङ्कर हूँ ।” पहरेदार ने कहा ।

“देवाधिदेव महादेव ! मैं अत्यन्त दीनता-पूर्वक आपसे भिक्षा मांगता हूँ कि आप मुझे अन्दर प्रवेश करने दें ।” अश्वत्थामा ने अत्यन्त नम्रता-पूर्वक कहा ।

“मूर्ख ब्राह्मण ! शङ्कर के पहरे को तूने यों ही समझ लिया है ।” महादेव खिल-खिलाकर हँसते हुए बोले—“तुझे पता नहीं, मैं तो श्रीकृष्ण के साथ के अपने मैत्री सम्बन्ध के कारण ही आज की रात पहरा देने आया हूँ, अन्यथा मैं तो अस्त्र-विद्या का जगद्गुरु हूँ, मैंने ऐसे अनेकों युद्ध देखे हैं और आगे दगूँगा । क्या तुझे पता नहीं कि तेरे पिता और स्वयं अर्जुन को पाशुपत जैसे अस्त्रों की शिक्षा के लिए हिमालय की शरण लेनी पड़ी थी ?”

“देवाधिदेव ! आपके प्रभाव को मैं अच्छी तरह जानता हूँ ।” अश्वत्थामा ने फिर गिड़गिड़ाते हुए कहा—“आज अन्तर की ज्वाला से तपता हुआ मैं पाञ्चालों का संहार करने के लिए आया हूँ । दिन का उजाला होने से पहले-पहले मुझे अपना काम पूरा कर लेना चाहिए । आपके इजाजत देने पर ही मैं छावनी के अन्दर प्रवेश कर सकता हूँ । मेरे हृदय में आज जो अग्नि धधक रही है, वह शान्त होने जैसी नहीं है । आपने मुझे अन्दर प्रवेश न करने दिया तो मैं यहीं इसी जगह जलकर भस्म हो जाऊँगा । प्रभो ! मेरे मन को और कोई रास्ता सूझ ही नहीं रहा है ।”

यह कहकर अश्वत्थामा ने तुरन्त ही अग्नि प्रज्वलित की और उसमें जल मरने के लिए तैयार हुआ ।

यह देख महादेव कहने लगे—“अश्वत्थामा ! क्या तुम्हें जैसे व्यक्ति का इस प्रकार आत्महत्या करना उचित है ?”

“भगवन् ! अब भी मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप मुझे भीतर प्रवेश करने दें ।” अश्वत्थामा ने कहा । “आपके सामने मेरी शस्त्रास्त्र विद्या कुण्ठित हो गई है, इसलिए मेरे लिए अन्त में एक यही उपाय बच रहता है । इस समय आपके सामने इस प्रकार हतवीर्य हो जाने के बाद मैं मरूँ नहीं तो जीकर भी क्या करूँ ?”

“ब्राह्मण के छोकरे, अश्वत्थामा ! देख, मेरा पहरा तो अब पूरा होने आया, इसलिए मैं तो यह चला, किन्तु तुम्हें यह बताना चाहता हूँ कि तेरा यह मार्ग अधर्म का है ।” शङ्कर ने कहा ।

“भगवन् ! मेरे सामने इस समय धर्म-अधर्म जैसी कोई वस्तु है ही नहीं । आपने मुझ पर अत्यन्त कृपा की; अब आप पधारें । मैं छावनी में प्रवेश करता हूँ ।” अश्वत्थामा ने कहा ।

“अश्वत्थामा ! अश्वत्थामा ! सम्भलकर जाना । कहीं दूसरों की मौत बुलाते-बुलाते तू खुद ही उसका ग्रास न बन जाय ।” शङ्कर ने जाते-जाते कहा । “लेकिन तू भी करते क्या करे ? तुम सब तो काल के चक्र में पड़कर दीपक में पतङ्ग की तरह मृत्यु के मुँह में पड़ते हो । तुम्हें खुद को इस बात की सुधि ही कहाँ है कि तुम सब क्या करना चाहते हो और कहाँ जा रहे हो । अच्छा, अब तू जा । आज मेरी बात पर ध्यान नहीं दे रहा है, लेकिन एक दिन आयगा जब तुम्हें इसकी याद आयगी ।”

शङ्कर विदा हुए और अश्वत्थामा भूखे भेड़िये की तरह पांचालों पर दूट पड़ा।

×

×

×

पांचालों के शिविर में एक ऊँचे पलंग पर धृष्टद्युम्न सो रहा था। उसके विचार में आज कोई उसकी निद्रा के भंग करने वाला न था, आज रात को न तो युद्ध-समिति की कोई बैठक होने वाली थी, न सैन्य-निरीक्षण के लिए ही उसे जाना था, आज उसे किसी महारथी के साथ कोई खास मन्त्रणा भी नहीं करनी थी, न किसी नये व्यूह की रचना पर ही विचार करना था; आज कोई संवाद देने वाले भी आने वाले नहीं थे, इसलिए अठारह दिन की मार-धाड़ और कटाकटों के बाद वह गहरी नींद में सोया हुआ था। दूसरे दिन महाराज युधिष्ठिर के विजय-जलूम में आगे-आगे चलकर हस्तिनापुर का स्वागत ग्रहण करने के वह मनसूवे बाँध रहा था।

चाँदनी के समान श्वेत बिछौने पर श्यामवर्ण धृष्टद्युम्न सोया हुआ था; पाम ही द्रौपदी के पांच लाड़ले पुत्र और एक तरफ को पांचाल वीर थे; ऊपर अंधेरे में होने वाले संसार भर के काले कृत्यों के सनातन साक्षी रूप तारे छिटक रहे थे और आस-पास शान्ति, असाधारण शान्ति, मृत्युरूप शान्ति व्याप रही थी। कभी-कभी उलूक की आवाज इस शांति को भंग करती हुई सुनाई पड़ जाती थी।

अश्वत्थामा ने शिविर में पैर रखा। उसके हाथ में नंगा तलवार थी; सिर के बाल बिखरे हुए थे; मस्तक पर मिन्दूर का टीका लगा हुआ था; चेहरे से विह्वलता झलक रही थी; आंखों से ग्वून चू रहा था और उसके पैरों में किसी महान हत्यारे का-सा आतङ्क और दृढ़ता थी।

वह सीधा धृष्टद्युम्न के पलंग के पास जा पहुँचा। धृष्टद्युम्न

को देखते ही उसके रोंगटे खड़े हो गये । उसके हाथ की तलवार ऊँची हो गई और उसके चेहरे पर आनन्द की मन्द मुस्कान भलकने लगी । होंठ दबाता हुआ वह मन में गुनगुनाने लगा “पाञ्चाल बच्चे, प्रभु को याद कर ले !”

अश्वत्थामा अपने मन में कल्पना कर ही रहा था, इतने ही में आकाश से टूटते हुए एक तारे का प्रकाश धृष्टद्युम्न के मुँह पर पड़ा । इस प्रकाश में अश्वत्थामा ने धृष्टद्युम्न का मुँह देखा और तत्काल ही वर्षों पहले धृष्टद्युम्न के शिष्य-भाव से द्रोणाचार्य के पास आने का दृश्य उसकी आँखों के सामने आ खड़ा हुआ; उसके मन में उस समय का बाल-भाव लहरें लेने लगा और इसलिए तलवार का प्रहार करने के लिए उठाया हुआ हाथ सहज ही धीमा पड़ गया और न जाने किस तरह आँखों के सामने अधेरा छा गया !

एक क्षण में ही यह सब कुछ हो गया और दूसरे ही क्षण वह अपनी दुर्बलता को झँझोड़कर मिह की भाँति जाग्रत हो गया; दुर्योधन के सामने की हुई प्रतिज्ञा फिर से मन में ताजी की; धृष्टद्युम्न के विरुद्ध अपने वैर को फिर से जगाया, पिता का वैर लेने का अपना निश्चय फिर से दृढ़ किया और आँखें मीचकर सोते हुए धृष्टद्युम्न पर खड्ग का प्रहार किया ।

एक प्रहार से पाञ्चाल-पुत्र के दो टुकड़े हो गये; दूसरे प्रहार में पाञ्चाली के पुत्रों के मिर धड़ से जुदा हो गये; और अगले प्रहारों से पाञ्चाल वीरों के टुकड़े होने लगे । इस प्रकार जहाँ एक क्षण पहले असाधारण शांति व्याप्त हो रही थी वहाँ भयंकर घमासान मच गया; एक क्षण पहले जहाँ चांदनी की तरह बिछे हुए सफेद विस्तर शोभा दे रहे थे, वहाँ रक्त से भीगी हुई चादरें रक्त चुआने लगीं; एक क्षण पहले जो पाञ्चालों का शिविर था, वह इस समय उनका वध-स्थल बन गया ।

और अश्वत्थामा !

पाञ्चालों का विनाश करने के दूसरे ही क्षण उसके सिर का भूत उतर गया। एक क्षण पहले सिंह के समान प्रतीत होने वाला अश्वत्थामा दूसरे ही क्षण बकरी के समान दिग्वार्ध देने लगा। दूर-दूर हवा में उसे गाण्डीव की ध्वनि और द्रौपदी की चीत्कार सुनाई देने लगी; स्वयं अपनी ही अन्तरात्मा में उसे हृदय की फटकार सुनाई देने लगी, इससे वह भयभीत हो उठा और उसी भयभीत अवस्था में दिन निकलने से पहले ही वह भाग खड़ा हुआ।

: ४ :

धंधवाती आग

“भाई, तुम घड़ी-भर के लिए ज़रा मो जाओ।” व्यास भगवान् के शिष्य गौतम ने अश्वत्थामा से कहा। “गंगा के तीर पर ऋषि मुनियों का एक भागी सम्मेलन हो रहा है, पिताजी उसमें सम्मिलित होने गये हैं।”

“ऋषि-मुनियों का सम्मेलन ?” अश्वत्थामा ने पूछा।

“हाँ, तुमने यह सुना कि नहीं, हस्तिनापुर के राज-मुकुट के लिए कौरव-पांडवों के बीच आज कई दिनों से युद्ध चल रहा है ? गौतम ने कहा—

“इसका ऋषि-मुनियों से क्या सम्बन्ध ? संसार आज तक इसी तरह लड़ता आया है और आगे भी लड़ता रहेगा। ऋषि-मुनि तो हिमालय की गुफाओं में बैठकर समाधि लगाते रहा करें, उनका और लड़ाई का परस्पर क्या सम्बन्ध ?” अश्वत्थामा ने कहा।

“यह कैसे कहा जा सकता है।” गौतम ने तेजी से कहा। “मेरे पिताजी के लिए यह न समझ बैठना कि वह अपने आश्रम में वृक्ष के नीचे बैठे हुए निरी आँखें बन्द किये रहते हैं। समस्त मानव-समाज का कल्याण उनका जीवन-व्रत है। जिस समय

संसार वैर-विष की अग्नि में जलने लगता है, क्या उस समय उस वैर-विष को मिटाने के उपाय सोचना इन ऋषि-मुनियों का कर्त्तव्य नहीं है ? पिताजी लौटकर सम्मेलन का हाल सुनायेंगे तब तुम्हें पता चलेगा कि इन ऋषि-मुनियों और नामधारी ऋषि-मुनियों के बीच कितना अन्तर है। अच्छा, अब सो जाओ। पिताजी आयेंगे उस समय मैं तुम्हें जगा दूँगा।”

“मुझे सोना नहीं है।” अश्वत्थामा ने कहा।

“मैं देख रहा हूँ कि तुम्हारी आँखों में नींद घुट रही है। हमारी किसी की भी आँखें ऐसी हों तो कुछ भी होता हो हमें नींद आ ही जाती है।” गौतम ने कहा।

“गौतम ! तुम्हें पता नहीं, आज कितने ही दिनों से मैं तो अपनी नींद गँवा बैठा हूँ।” अश्वत्थामा ने बताया।

“नींद गँवा दी ?” गौतम ने अश्वत्थामा की आँखों से आँखें मिलाते हुए कहा। “पिताजी तो कहा करते हैं कि या तो चक्रवर्ती राजा की नींद जाती रहती है या फिर हत्यारे की। तुम कोई बड़े भारी चक्रवर्ती तो नहीं हो ?”

“नहीं भाई।” अश्वत्थामा निश्वास लेता हुआ बोला।

“तब सो जाओ ?” गौतम हाथ से कंकड़ उछालता हुआ बोला। “भाई, तुम लोग तो बड़े आदमी ठहरे, इसलिए नींद तुमसे चौंकर भागती फिरती है। और हमारे पास तो यह वृद्ध की छाया है, दिन-भर के परिश्रम की थकावट है, ऊपर आकाश की छाया और नीचे भली पृथ्वी माता है। इसलिए हम नींद को छोड़ना चाहें तो भी वह हमें न छोड़ेगी।”

“गौतम ! मैं जब तुम्हारे जैसा था उन दिनों भी मेरे भाग्य में ऐसी कोई बात न थी।” अश्वत्थामा ने निराशा के स्वर में कहा।

“क्या तुम भी आश्रम में रहते थे ?” गौतम ने कौतूहलपूर्वक पूछा। “तुम्हारे भी पिताजी थे ? तब भी इसी तरह हिरनों के

साथ खेला करते थे ? तूम भी ऐसे कुञ्जों में अध्ययन करते थे ? तब तो पक्षियों की यह मधुर किलकिलाहट तुमने बहुत सुनी होगी । देखो न यह कैसी मधुर और मन्द पवन चल रही है । जरा लम्बे तो हो जाओ । भाई तुम्हारे लिए मैंने अपनी दरी बिछाई है, वह मैंने आज ही धोई है । उसमें एक बदबूदार बड़ा-सा दाग था वह किसी तरह छूटता ही नहीं था, इसीलिए मैंने इसे आज खूब पंछीटी, फिर भी देखो इसमें जरा-सा निशान बाकी रह ही गया । तुम बड़े लोगों के बिछौने तो नौकर चाकर धोते होंगे ? और उनमें तो दाग रहते ही क्यों होंगे ?”

“गौतम ! गौतम ! तूम आगे और कुछ न कहो तो कितना अच्छा हो ?”

“क्यों, क्या तुम्हें नींद आने लगी ?”

“नींद तो नहीं आई, लेकिन तुम जब ज्यों-ज्यों ये बातें करते है त्यों-त्यों मेरे मन में न मालूम क्या होने लगता है । तुम्हारे शब्द सुनते ही मेरे हृदय की अनेक पीड़ाएँ जाग उठती हैं ।” अश्रुत्थामा ने व्यथित स्वर से कहा ।

“तुम्हारे शरीर में पीड़ा है । यह कहो न कि तुम बीमार हो इसलिए नींद नहीं आती ।” गौतम ने अपना कहना जारी रखा “पिताजी केवल ऋषि ही नहीं है, असाध्य रोगों को मिटा सकने-वाले वैद्य भी हैं । तुम्हें ठीक ही सूझा कि यहाँ आगये । यहाँ की हवा ही ऐसी है कि मनुष्य निरन्तर अपने फेफड़ों में उसे खींचे तो सब बीमारियाँ अनायास ही दूर हो जाती हैं । अच्छा, अब तुम्हें नहीं छेड़ूँगा । जरा लेट जाओ मेरी तो नींद उचट गई है, इसलिए जरा उधर गौश्रों को घास के दो पूले डाल आऊँ ।” यह कहता हुआ गौतम वहाँ से उठकर चलता हुआ । अश्रुत्थामा भूमि को कुरेदता हुआ वहीं बैठा रहा ।

आश्रम में व्यास भगवान् अपने शिष्य-मण्डल के साथ बैठे थे और संसार-भर के वैर-विष के विनाश के लिए आश्रम-वासियों को क्या करना चाहिए इसकी चर्चा चल रही थी। अश्वत्थामा वल्कल वस्त्र धारण कर व्यास मुनि की ओट में छिप गया था।

इतने ही में सड़क पर से रथ की गड़गड़ाहट सुनाई दी। गड़गड़ाहट सारी शिष्य-मण्डली के कानों में पड़कर शान्त हो गई, किन्तु अश्वत्थामा के कान चौकन्ने हो गये, उसका शरीर तन गया, उसकी आँखें जमीन से हटकर सड़क की ओर जा लगीं, और पलक मारते ही वह आम्र-कुञ्ज से बाहर निकलकर रास्ते के खेतों में उगी हुई दूब पर जा खड़ा हुआ।

आश्रम के पास की सड़क पर दो रथ दौड़ते हुए आ रहे थे। आगे के रथ में भीमसेन बैठा हुआ घोड़ों को तेजी से हाँकता ला रहा था; उसके पीछे के रथ के घोड़ों की लगाम श्रीकृष्ण के हाथों में थी।

“यह रहा वह दुष्ट!” भीमसेन रथ में से ही चिल्ला उठा और तत्काल उस पर से नाचे कूद पड़ा। श्रीकृष्ण ने भी अपना रथ ठहरा दिया और अर्जुन तथा युधिष्ठिर को साथ लेकर नीचे उतरे।

“अर्जुन ! देख ले उस दुष्ट को। केवल वल्कल धारण किये हुए है।”

“अश्वत्थामा ज़रा घबराया। उसे निश्चय था कि भीम उसका वध किये बिना न रहेगा। किन्तु द्रोण का पुत्र यों ही मृत्यु को गले लगा लेने वाला न था। पल-भर में ही उसके मन में कई उपाय आये और चले गये। उधर भीम और अर्जुन की लल-कार उसका हृदय नाँच रही थी। उसके पास कोई साधन नहीं था; रथ-जोतने योग्य धैर्य नहीं था और रुपड़े बदलने की सुधि नहीं थी। वह बड़े चक्कर में पड़ गया। एक क्षण मामा कृपा-

चार्य का खयाल करने लगा, और फिर तत्काल ही दूब के एक तिनके को मंत्रित कर सङ्कल्प किया—“शत्रु पर आज मैं इस ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करता हूँ। यह ब्रह्मास्त्र पाण्डव-कुल को निर्बीज कर दे।”

दूब का तिनका फेंकने-भर की देर थी कि दिशाएँ चारों ओर से काली होने लगीं; एक तिनके में से जलते हुए अनेक शस्त्रास्त्र छूटने लगे; प्रलय काल की पवन चलने लगी, आकाश में अभूत-पूर्व गड़गड़ाहट होने लगी और आश्रम के पशु-पक्षी त्रस्त हो इधर-उधर रचा-स्थल ढूँढने लगे।

“अर्जुन ! इस दुष्ट ने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया है। तू भी तो यह प्रयोग जानता है। अतः जल्दी कर।” श्रीकृष्ण ने कहा।

“महाराज श्रीकृष्ण ! आचार्य द्रोण का तो यह आदेश है कि ऐसे अवसर पर ब्रह्मास्त्र का प्रयोग नहीं होना चाहिए।” अर्जुन ने कहा।

“रहने दो ऐसे आचार्य के आदेश। द्रोण के वध के साथ ही उनके आदेश भी समाप्त हो गये। श्रीकृष्ण ! अर्जुन से यह कुछ न होगा। अश्वत्थामा का काम मैं पूरा करूँगा।” भीमसेन ने कहा।

“अर्जुन ! तू भूल करता है।” श्रीकृष्ण ने सम्बोधन करते हुए कहा। “ब्रह्मास्त्र जैसे शस्त्रास्त्रों का प्रयोग इसीलिए निषिद्ध माना गया है कि लोग उनका उपयोग दूसरों के संहार के लिए करते हैं। ऐसे अस्त्रों की शोधकर मानव-समाज को स्वयं ही पश्चात्ताप करना पड़ा है। द्रोण ने यह समझकर कि लोगों के अन्तःकरणों के अच्छी तरह निर्णय होने से पहले इस प्रकार के अस्त्रों की शोध का उपयोग समाज के कल्याण की अपेक्षा अकल्याण के लिए ही अधिक होगा, तुझे यह आदेश दिया होगा। किन्तु सखा ! इस समय तुझे लोक-कल्याण की दृष्टि से ब्रह्मास्त्र

का प्रयोग करना है; अश्वत्थामा के वध की दृष्टि से नहीं ।”

“श्रीकृष्ण ! तुम्हें ऐसे समय में अर्जुन के साथ मगध-पञ्ची करना कैसे अच्छा लगता है । मुझे इनके जितनी विद्या प्राप्त होती तो आज मैं संसार को दिखा देता ।” भीम ने उतावलेपन से कहा ।

“अर्जुन !” श्रीकृष्ण ने सम्बोधन करते हुए कहा—“जल्दी करो । अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र को और अधिक फैलने का अवसर मिल गया तो हम सबको भारी पड़ेगा ।”

“अच्छी बात है” अर्जुन ने कहा । और तुरन्त ही ब्रह्मास्त्र का स्मरण कर सङ्कल्प किया—“अश्वत्थामा के कल्याण के लिए हमारे अपने कल्याण के लिए और अखिल मानव-समाज के कल्याण के लिए मैं ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करता हूँ ।” इस सङ्कल्प के साथ उसने ब्रह्मास्त्र चलाया ।

व्यास के आश्रम पर दो ब्रह्मास्त्र आमने-सामने टकराये इसलिए कुछ देर के लिए अन्धकार और सघन हो गया और पृथ्वी काँपने लगी । साथ ही ऐसा प्रतीत होने लगा मानो आश्रम की वायु में विष व्याप्त हो गया हो !

व्यास भगवान् अपने कुञ्ज में बैठे थे; वहाँ से उठ खड़े हुए । हाथ में पलाश-दण्ड और दूब ली और अपनी योग-दृष्टि से आकाश की ओर देखकर वहाँ आ पहुँचे ।

उन्हें आया देखकर युधिष्ठिर “प्रभो, पुराण ऋषि ! आपको अनेक नमस्कार” इन शब्दों के साथ उनका अभिवादन कर उनके चरणों में लेट गये ।

व्यास भगवान् ने अश्वत्थामा की ओर भृकुटी चढ़ाते हुए रोष के साथ कहा—“अच्छा अश्वत्थामा, मैंने तुम्हें अपने आश्रम में आने दिया, क्या वह इसीलिए ? तूने ये बल्कल वस्त्र इसीलिए धारण किये हैं ? तूने कुञ्ज में बैठकर ऋषि-मुनियों के

सम्मेलन की चर्चा सुनी क्या उसका यही परिणाम है ?”

“भगवन् ! ये लोग मेरा वध करने के लिए आये हैं।” अश्वत्थामा घबराता हुआ बोला ।

“तूने इनके पुत्रों का वध किया उस समय इस बात का खयाल नहीं किया ?” व्यास ने आँख लाल करते हुए कहा ।

“भगवन् ! इन शत्रुओं के शस्त्र से मारे जाने में मुझे अब कुछ हिचकिचाहट न होगी । किन्तु आपके लाल-लाल नेत्र मैं देख नहीं सकता । मुझे क्षमा कीजिए ।” अश्वत्थामा ने काँपते हुए कहा ।

“अश्वत्थामा ! मुझे दुःख इस बात से होता है कि तू अपने ब्राह्मणत्व से इतना नीचा गिर गया है।” व्यास ने कहा—“जिस दिन स्वयं ब्राह्मण की ब्राह्मण-जीवन से श्रद्धा मिट जाय, उसी दिन समझ लेना चाहिए कि संसार के अकल्याण का श्रीगणेश हो गया । वैर के मारे तेरे पिता ने ब्राह्मण-जीवन को उठाकर खूँटी पर लटका दिया था और तूने तो उसे तिलाञ्जलि ही दे डाली ।”

“भगवन् ! यह ठीक है कि मैं आज ब्राह्मण नहीं रहा । मेरी आपसे अब यही प्रार्थना है कि आप इन लोगों से मेरी रक्षा करो, जिससे मैं आपकी सेवा में रह सकूँ ।

“तो फिर यह ब्रह्मास्त्र किसलिए चलाया था ?”

“अपने बचाव के लिए ।”

“किन्तु क्या तुम्हें पता नहीं कि कोई भी ब्रह्मास्त्र का प्रयोग इस तरह नहीं कर सकता ?” व्यास ने पूछा ।

“मुझे अपने सामने मौत खड़ी दिखाई दे रही थी, इसलिए मुझे इस बात का कुछ विवेक नहीं रहा।” अश्वत्थामा ने जवाब दिया ।

“और अर्जुन ! तूने भी भारी भूल की है ।” अर्जुन की ओर फिरते हुए व्यासजी ने कहा । “ब्रह्मास्त्र के प्रयोग सम्बन्धी विधि-निषेध का तुझे पता है । उनका तो तूने ध्यान न रखा सो तो है ही, पर, साथ ही इस बात का भी खयाल न रक्खा कि यह मेरा आश्रम है ।”

“भगवन् ! मैंने किसी के प्रति द्वेष-भावना से नहीं, प्रत्युत संसार-मात्र और स्वयं अश्वत्थामा के कल्याण की दृष्टि से इसका प्रयोग किया है । तिस पर यह बात तो स्पष्ट ही है कि हमें उसके ब्रह्मास्त्र से अपनी रक्षा करनी श्री ।” दोनों हाथ जोड़ते हुए अर्जुन ने कहा ।

“चिरञ्जीव ! इन अठारह दिनों के युद्ध के बाद भी एक बात तेरी समझ में नहीं आई । मनुष्य-मात्र शस्त्रास्त्रों का प्रयोग करने के समय यही कहते हैं कि हम तो अपनी रक्षा के लिए उनका प्रयोग करते हैं और साथ में संसार के कल्याण की भी डींग हाँकते हैं । किन्तु दूसरों को मारने से मनुष्य स्वयं अपनी रक्षा तक नहीं करता और संसार का कल्याण तो निश्चित रूप से नहीं करता । तुम्हारे ये शस्त्रास्त्र क्या करते हैं और क्या कर सकते हैं इस बात का इतना भारी प्रदर्शन हो चुकने पर भी, तुम्हारा यह भ्रम अभी ज्यों-का-त्यों बना ही हुआ है । अर्जुन ! जिसके रथ की बागडोर श्रीकृष्ण के हाथ में हो उसकी समझ में तो यह बात कभी की आ जानी चाहिए थी ।”

“मुनिराज ! रथ की बागडोर तो अवश्य ही मेरे हाथ में है, लेकिन हाँकता तो जहाँ के लिए यह कहता है उधर ही हूँ ।” श्रीकृष्ण ने हँसते-हँसते कहा ।

“अच्छा अर्जुन ! तू अपना ब्रह्मास्त्र वापस ले ले ।” व्यास

मुनि ने अपना दाहिना हाथ ऊँचा उठाते हुए आदेशात्मक स्वर में कहा ।

“जैसी आपकी आज्ञा ।” यह कहकर अर्जुन ने अपना ब्रह्मास्त्र वापस ले लिया ।

“अश्वत्थामा ! अब तू भी अपना ब्रह्मास्त्र वापस ले ले” व्यास मुनि ने अश्वत्थामा की ओर मुड़कर कहा ।

“भगवन् ! मुझे वापस लेना नहीं आता ।” अश्वत्थामा ने काँपते हुए कहा ।

“हैं ! वापस लेना नहीं आता ! तब मूर्ख तूने इसका प्रयोग किया ही क्यों ?” व्यास ने चकित होते हुए पूछा ।

“भगवन् ! वापस लेना आता नहीं और प्रयोग करते समय सङ्कल्प यह किया है कि पाण्डव-कुल का नाश हो !” अश्वत्थामा ने जवाब देते हुए कहा ।

“अरे दुष्ट !” व्यास ने खिन्न स्वर से कहा—“तुम लोगों ने हम ऋषि मुनियों को भारी चिन्ता में डाल दिया है । द्रोण ने यही सबसे बड़ी भूल की कि पुत्र-स्नेह से प्रेरित होकर तुम्हें यह अस्त्र सौंप दिया । तूने उस भूल का खूब लाभ उठाया । ब्राह्मण का जब पतन होता है तो उसका अन्त कहाँ जाकर होगा यह कोई नहीं कह सकता । अच्छा बता, अब तेरा ब्रह्मास्त्र अन्त में कहाँ जाकर गिरेगा ?”

“उत्तरा के गर्भ पर ।” अश्वत्थामा ने कहा ।

“जो फल सड़ गया है, उसमें गन्ध आये बिना कैसे रह सकती है ?” व्यास ने दुःख से कहा ।

भीमसेन से न रहा गया । उसने कहा—“मुनिवर ! मैं इस अश्वत्थामा का बध करने आया हूँ । इसका बध न किया गया

तो द्रौपदी अनशन करके अपने प्राण त्याग देगी। आपकी आज्ञा से अर्जुन ने ब्रह्मास्त्र तो वापस ले लिया, किन्तु अब मैं अश्वत्थामा को न छोड़ूँगा।”

“भीम ! अश्वत्थामा को मारकर क्या करेगा ?” व्यास ने पूछा।

“अपने और द्रौपदी के मन को शान्त करूँगा।” भीम ने जवाब दिया।

“यह केवल विडम्बना है।” व्यास ने कहा—“इस प्रकार मन शान्त होता होता तो अठारह अक्षौहिणी सेना का वध करके शान्त हो जाता। मनो को सच्ची शान्ति तो तब होगी जब सारा संसार इन शस्त्रास्त्रों का त्याग कर देगा। प्रभो, श्रीकृष्ण ! आप इस समय कुछ बोलते क्यों नहीं ?”

“पुराण मुनि ! जहां आप जेमे मुनि रात-दिन संसार के कल्याण का चिन्तन करते रहते हों वहाँ मेरे कहने योग्य बात ही क्या रह जाती है ?” श्रीकृष्ण ने कहा।

“भीम ! यह अश्वत्थामा तुम सबके गुरु द्रोणाचार्य का पुत्र है। इसमें सन्देह नहीं कि इसने जैसी भूल की है, उससे तुम इसका सिर काट सकते हो। किन्तु भूल का बदला मृत्यु से पूरा नहीं होता। कहो, युधिष्ठिर ! तुम्हें यह बात कैसी प्रतीत होती है ?” व्यास मुनि ने कहा।

“मुनिराज ! आप ठाक ही कहते हैं।” युधिष्ठिर ने कहा—“छावना से चलते समय तो मैं भी अश्वत्थामा के वध का निश्चय करके ही चला था; किन्तु अब मेरा मन उससे पीछे हटता है। गुरु-पुत्र का वध करके मैं प्रसन्न नहीं होना चाहता।”

“तब क्या द्रौपदी को गँवाकर प्रसन्न होंगे।” भीम ने रोष से पूछा।

“भीम ! इस तरह उतावले न होओ ।” श्रीकृष्ण ने कहा ।
 “अश्वत्थामा ब्राह्मण है, इसके मस्तिष्क में मणि है । उस मणि को ले लेना उसका वध करने के समान ही है । हम अश्वत्थामा को द्रौपदी के पास ले जायेंगे । द्रौपदी भी पाञ्चालराज की पुत्री है । उसके हृदय में भी त्रियम्बक की उदारता है । गुरु-पुत्र को क्षमा कर अपनी महत्ता सिद्ध करना उसे भी रुचिकर प्रतीत होगा । धर्मराज युधिष्ठिर तुम्हारी क्या राय है ?”

“तुम्हारा कहना ठीक है ?” युधिष्ठिर ने कहा ।

“अच्छा तो अश्वत्थामा ! अब तू रथ पर चढ़कर इनके साथ चलना और द्रौपदी मांगे तो बिना किसी आनाकानी के अपने सिर की मणि निकालकर उसे दे देना । यदि वह तेरा शरीर मांगे तो उसके देने में भी मत हिचकिचाना । तू देने में नहीं हिचकिचावेगा तो उस लेने में हिचकिचाहट जरूर होगी । और यदि तू देने में हिचकिचाया तो उसे उसके लेने का अधिक आग्रह होगा । संसार का यही सनातन नियम है ।” श्री व्यास ने कहा ।

“प्रभो ! आप पर श्रद्धा रखकर मैं रथ पर सवार हो इनके साथ जाता हूँ । वहां से वापस लौटकर आपके पास ही रहूँगा ।”

“द्रोण-सुत !” व्यास ने जवाब दिया—“पीछे की बात पीछे होंगी । मस्तक की मणि गंवाने के बाद तो तुझे कुछ दिन पृथ्वी पर इधर-उधर भटकते ही फिरना होगा; तेरा चित्त किसी एक ठिकाने पर जम ही न सकेगा । सारे जीवन को विकृत कर देने पर उसके अच्छे होने में भी समय तो लगेगा ही । तू जब कभी भी आयगा, तेरे लिए आश्रम के द्वार खुले होंगे । किन्तु अश्वत्थामा ! ऐसे आश्रम में रहने का उफान तो बहुतों के मन में पैदा होता है किन्तु वह निरा उफान न रहकर निश्चय के रूप में

परिणत हो इसके लिए ईश्वर की कृपा की आवश्यकता है।
अच्छा आज तो तू जा ! प्रभु तेरा कल्याण करें; तुम सबका
कल्याण करें। प्रभु कृष्ण ! संसार का कल्याण हो।”

अश्वत्थामा को लेकर भीमसेन आदि विदा हुए और न्यास
भगवान् आश्रम की ओर लौटे।

भीष्म

: १ :

गंगा-पुत्र

“देवी, जरा ठहरो !”

गंगा माता का गहन जल मन्द-मन्द बह रहा था। चारों तरफ अंधेरा छाया हुआ था। किनारे के वृक्ष धीरे-धीरे हिल रहे थे। दूर से ठहर-ठहर कर गीदड़ों की बोली सुनाई देती थी। प्रवाह की सीमा के बाहर रेत का लम्बा मैदान पसरा पड़ा था।

किनारे पर बसी राजधानी में से एक स्त्री सनसनाती हुई आई। उसके शरीर का रंग गोरा था, सिर के बाल बिखरकर छाती पर फेल रहे थे, उसके पैरों में तेजी और हाथों में तुरत का पैदा हुआ एक बच्चा था।

वह किनारे पर पहुँचे, बालक को रुमाल में लपेटकर नीचे रखा; अपने बाल ठक किये, कपड़े की लंगट लगाई और बालक को उठाने को भुक्तो हा थी कि पछे से किसी ने आवाज दी—“देवी, जरा ठहरो !”

मानो बिजली का झटका लगा हो इस प्रकार वह स्त्री चौंक उठी और तुरन्त ही पछे की ओर देखकर बोली—“महाराज शान्तनु, आप यहां कहां ?”

“देवी, इस बालक को तुम नहीं मार सकतीं” शान्तनु ने हस्तिनापुर के स्वामी के-से, स्वर में कहा।

“महाराज, यह रहा आपका पुत्र। अपना सह-जीवन इसी

क्षण से समाप्त होता है। बोलते क्यों नहीं ?” देवी गंगा ने कहा।

“गंगा, गंगा ! यह बालक अपनी आठवीं सन्तान है। अपने एक-को नहीं सात-सात पुत्रों को तुमने जल-समाधि दे दी। यह सब मैं गूंगा बना देखता रहा। देवी ! हस्तिनापुर के महलों में फूलने-फलने के लिए उत्पन्न हुए पुत्रों को अपने से जुदा करते हुए मेरे मन पर क्या-क्या बीती होगी, क्या तुम्हें इसका ध्यान आता है ? आज इस आठवें पुत्र को भी जब तुम पानी में प्रवाहित करने निकलीं तो मैं अपना धीरज कायम न रख सका। और जीवन के सार रूप अपने प्रिय पुत्र के लिए इतना-सा अनुभव करना भी क्या कोई अपराध है ?” महाराज शान्तनु ने व्यथित हृदय से कहा।

“महाराज, इस दृष्टि से देखा जाय तो आपने आज तक कुछ नहीं कहा यही अपराध है। आज तो आपने अपना कर्तव्य-पालन किया है।” गंगा ने शान्ति से जवाब दिया।

“तब तुम यह कहकर, कि अपना सह-जीवन आज से समाप्त होता है, मुझे व्यर्थ ही दुःखा क्यों करता हो ?” शान्तनु ने पूछा।

“महाराज, आपने मेरा आशय नहीं समझा।” गंगा ने कहा। “अपना विवाह हुआ, उससे पहले ही मैंने आपसे शर्त की थी कि मैं जो-कुछ भी करूँ आप उसमें बाधा न देंगे, और उसी प्रकार आप उस विषय में मुझसे कुछ पूछेंगे भी नहीं। कहिये, यह बात ठीक है या नहीं ?”

“हां, तुम्हारी यह शर्त जरूर थी। किन्तु तुम जैसी धर्मपत्नी पुत्रों को ही मार डालोगी और मुझे अपनी जवान पर ताला लगा लेना पड़ेगा इस बात की तो मुझे स्वप्न में भी कल्पना नहीं हुई थी। इसकी कल्पना हुई होती तो शर्त करने से पहले ही उसका

विचार करता ।” महाराज शान्तनु ने जवाब देते हुए कहा ।

देवी गंगा ने कहा—“महाराज, यह सब तो आज कहा जाता है । उस दिन तो आपका मन मुझ पर मोहित था इसलिए शर्त के परिणाम की आपके दिमाग में कल्पना हो ही नहीं सकती थी । कामी पुरुष यदि शान्ति के साथ पूर्वापर का विचार कर सकते होते तो मानव-समाज कभी का बदल गया होता । किन्तु महाराज, आपने शर्त की, अतः अब तो उसका पालन होना ही चाहिए । अब आगे पहले से मोच-समझकर शर्त करना ।”

शान्तनु से रहा न गया । उन्होंने कहा—“आज तक कभी जबान न खोली और आज एक बार बोला उसी पर सह-जीवन समाप्त ? बस इतना ही । तुम्हारे प्रति मेरा स्नेह अंधा है, कहीं इसीसे डरा तो नहीं रही हो ?”

गंगा ने कहा—“निश्चय ही नहीं । महाराज ! मैं कितनी ही कठोर क्यों न होऊँ, फिर भी हूँ तो स्त्री ही, हमारी छाती में कितना कोमल हृदय धबकता है, कठोर-हृदय पुरुषों को इसका पता न तो कभी लगा था और न आगे ही लगने वाला है । महाराज ! आपने तो आठवें पुत्र के लिए धीरज गंवाया; किन्तु इन हाथों से सात-सात पुत्रों को जल में सुलाते हुए मेरे-उनकी जननी के-हृदय पर क्या-क्या बीती होगी इसकी भी आप कल्पना करते हैं ? महाराज शान्तनु ! मैं देव-पुत्रा हूँ, हमारे देवकुलों में बालक कितने महंगे मोल के होते हैं, आपको इसका पता नहीं । आप आर्यों को इन बालकों का महत्त्व तो अभी सीखना है । किन्तु महाराज मेरे वचनों पर विश्वास रखिये; किसी गूढ़ ईश्वरीय संकेत से प्रेरित होकर ही मैंने अपने सात पुत्रों को जल-समाधि कराई; उसी गूढ़ संकेत से प्रेरित होकर मैंने आपसे विवाह किया था और उसी गूढ़ संकेत से प्रेरित होकर मैं आज आपसे

विलग हो रही हूँ।”

“देवी, देवी ! तुम यह क्या कहती हो ?” महाराज शान्तनु ने विह्वल होकर कहा। “तुम्हारे बिना यह शान्तनु किस तरह जीवित रह सकेगा ? तुम कहो तो मैं अपनी कही हुई बात को वापस ले लूँ और इस पुत्र का भी तुम्हें जो-कुछ करना हो खुशी से करो। किन्तु देवी ! मुझे इस तरह न छोड़ो।”

गंगा ने गम्भीर स्वर से जवाब दिया—“महाराज, इस तरह क्यों घबराते हैं ? मैं तो गंगा हूँ। वह सामने बरफ के पहाड़ दिखाई देते हैं; वहाँ से मेरा जन्म हुआ है। इस जगह मनुष्य का नाम-निशान न था, उस समय से मैं इस प्रदेश में विचरती हूँ। आज आप जहाँ खड़े हैं और जिस जगह आपका हस्तिनापुर बसा हुआ है, वहाँ एक समय समुद्र लहरें मारता था। एक बार परमात्मा का आदेश हुआ और समुद्र वहाँ से हटा, जिससे वहाँ एक गढ़ा हो गया। पिता की गोद में से खिसकती-खिसकती मैं इस भारी गढ़े में गिरी तो वर्षों तक निकल न सकी। ओ हो, कितना गहरा गढ़ा था ! पिता के घर से ला-ला कर मैंने वर्षों तक इसमें मिट्टी पूरी तब कहीं मैं गढ़े में से बाहर निकल सकी। यह तो युग-युगांतर की बात है। उसके बाद तो इस प्रदेश में मनुष्य आये; कितने ही आये और कितने ही गये। उनके आवागमन का लेखा मेरे गर्भ में संगृहीत है, उसे समझने वाला कोई पैदा होगा तो पढ़ सकेगा। महाराज, आंखें क्यों बन्द कर दी हैं ?”

“देवी, तुम जो कुछ कह रही हो उसे समझने के लिए मैं आंखें बन्द करके गहराई में उतरता हूँ। तुम आगे कहो। मैंने तो तुम्हें अपनी ही तरह हाड़-मांस की पुतली-मात्र समझा था।” शान्तनु ने कहा।

“इसमें आपका क्या दोष ?” गंगा ने कहा। “हाड़-मांस की पुतली तो हूँ ही न, नहीं तो तुम्हारी चमड़े की आंखों को आकर्षित

क्यों होना पड़ता ? किन्तु महाराज, इस बात को जाने दो ।”

“तुम जो कह रही थीं, उसे जारी रखो ।” शान्तनु ने कहा ।

गंगा ने कहना शुरू किया—“महाराज, हम सभी बहनें इसी श्वेत पर्वत पर से निकली हैं । इस सारे प्रदेश पर आप जो सिद्ध, ऋषि-मुनी, दानो और पण्डित आदि देखते हैं, यह सब हमारे ही पानो का प्रताप है । मैं समूचे आर्यावर्त को माता के समान हूँ फिर भी सदा कुंवारी हूँ । करोड़ों मानव-प्राणी मेरे तट पर जिये और मरे हैं; हजारों महाराजाओं के रथों ने इस प्रदेश के चक्कर काटे हैं और चकनाचूर हुए हैं; लाखों सैनिक इस प्रदेश पर घूमे हैं और धूलि-धूमरित हुए हैं । किन्तु इन सबको काल अपने उदर में समा गया है । केवल मैं कुमारी बची हूँ और बची रहने वाली हूँ । अपने गर्भ में कितनी ही संस्कृतियों को मैंने पोषण दिया है और इन सबका तेज आप आर्यों को सौंप देने का मुझे ईश्वरीय आदेश है । महाराज, आपका यह पुत्र मेरा तेज इस प्रदेश में फैलावेगा । लीजिये इस पुत्र को । जाओ, चिरंजीव ।” यह कहते हुए गंगा ने बालक को हाथ में लेकर आगे किया ।

शान्तनु ने कहा—“देवी, मैंने तुम्हारी इस महिमा को पहचाना नहीं और केवल वासना को दृष्टि से ही तुम्हें देखा, इसके लिए मुझे क्षमा करो । तुम आर्यावर्त की माता हो तो इस पुत्र को तुम्हीं पाल-पोस कर बड़ा करो, तुम्हारे अमृत-पान से मेरा यह पुत्र देश को प्रकाशमान करेगा ।”

गंगा ने जवाब दिया—“अच्छा तो ऐसा ही करूंगी महाराज, आप इसका नाम देवव्रत रखिये । इसे पाल-पोसकर मैं आपको सौंप दूंगी । आप पधारो ।”

“किन्तु गंगा !” शान्तनु ने आर्द्र स्वर से कहा । “तुम्हारे बिना मैं सूने महल में किम तरह कदम रखूंगा ? मेरी एक भूल को तुम छोड़ नहीं सकतीं ?”

गंगा ने जवाब दिया—“महाराज, इसमें भूल का कोई प्रश्न ही नहीं है। अपना वचन अब पूरा हुआ। अपने ने इतने समय तक गृहस्थ-जीवन बिताया, इतने पर भी यदि काम-वासना ज्यों-की-त्यों रही हो तो अब उसे जीतने के लिए दूसरा उपाय ढूँढ़ना होगा। महाराज, खिन्न न होओ; प्रसन्न होकर जाओ।”

शान्तनु ने कहा—“तब फिर जैसा मेरा भाग्य। देवी, शान्तनु का अन्तिम नमस्कार स्वीकार करो और अपने इतने लम्बे सहवास के अन्त में मुझे कुछ आज्ञा दो, जिससे कि मैं तुम्हें पहचान न सका उसका प्रायश्चित्त हो जाय।”

गंगा ने जवाब में कहा—“महाराज, मैं तो आपकी दासी ठहरी। आपके पैर की धूलि सिर पर चढ़ाकर जीवित ही मुक्ति पा सकती हूँ। किन्तु एक बात कहने को जी करता है।”

“कहो, जरूर कहो।” शान्तनु ने कहा।

गंगा ने कहा—“महाराज, मनुष्य विवाह करते समय चाहे जैसा घुमा-फिराकर बातें करता हो, वह विवाह करता है अधिकतर वासना-तृप्ति के लिए। आपने भी इसी तरह विवाह किया। किन्तु एकाध व्यक्ति भाग्यवश इस विवाह से वंचित रह जाता है, और उसकी वासना के शान्त न होने के कारण उसे इधर-उधर भटकते फिरना पड़ता है। महाराज, तुम्हारी भी ऐसी ही दशा न हो, मैं ईश्वर से यही चाहती हूँ।”

“हा, देव !” शान्तनु ने कातर स्वर से कहा। “हा, देव-वेव कुछ नहीं। इस समय आपका मनोभाव कैसा है यह मैं समझती हूँ। किन्तु काम ऐसे मनोभावों को हड़प जाता है यह भी मैं उतनी ही अच्छी तरह समझती हूँ। महाराज, जिस दिन आपके मन से ऐसी वासना का उदय हो उस समय सावधान रहना और मेरे साथ बिताये दिनों की याद कर मन को बहलाने का प्रयत्न करना। मेरे चिह्न के रूप में यह पुत्र तो आपके पास है ही।

इतने वर्ष आपके पास रहकर मैं आपसे इतना भी न मांगू तो मेरी आत्मा को शान्ति न मिलेगी, इसलिए यह मांगे लेती हूँ।”

शान्तनु ने कहा—“हमसे तुमने मांगा क्या है ? यह तो मुझे जो करना चाहिए, यह तुमने पहले से ही कह बताया है, बस इतना ही तो है। शान्तनु अब और किसी पर नजर न डालेगा।”

“महाराज अब मैं आपसे आज्ञा लेती हूँ।”

गंगा के इतना कहते ही प्रवाह के बीच पर्वत-जैसी लहर उठी और किनारे आकर गंगा और देवव्रत को लेकर वापस लोट गई।

शान्तनु किनारे पर खड़े-खड़े देखते रहे।

: २ :

पिता की चिकित्सा

“कहिये मन्त्रीजी, आ पहुंचे क्या ?” महल के एक विशाल कक्ष में घुसते हुए कुमार देवव्रत ने पूछा।

“जी, हां” मन्त्री ने आसन पर से खड़े होते हुए जवाब दिया। “आपने आदमी न भेजा होता तो भी आज तो मैं आने वाला था ही।”

दोनों के आसन पर बैठने पर देवव्रत ने कहा—“पिताजी की बीमारी के बारे में अपनी बात तो हो ही चुकी है। उसके बाद आपने क्या किया इसका मुझे कुछ पता नहीं। किन्तु मेरी चिन्ता दिन-पर-दिन बढ़ती जाती है।”

“कुमार, आपसे बात होने के बाद मैं उस विषय में पूरा प्रयत्न कर चुका हूँ।” मन्त्री ने जवाब दिया।

“किन्तु उस प्रयत्न का परिणाम मुझे पिताजी के चेहरे पर आज सुबह तक दिखाई नहीं दिया।” कुमार ने बताया। “उनका

शरीर दिन-पर-दिन क्षीण होता जाता है; चेहरा सफेद होता जा रहा है, आंखें और नीचे को धसकती जाती हैं। मैं जब-जब उनसे मिलता हूं तब-तब न जाने क्यों वे मेरी ओर देखकर नीचे पृथ्वी की ओर आंखें गड़ा देते हैं; और जब मैं पूछता हूं तो बड़ी मुश्किल से आंखें ऊंची करके मेरे सामने गूंगे की तरह देखते रहते हैं। मैं आपसे बहुत समय से कहता आ रहा हूं कि अपने राजवैद्य कहलाने वाले वैद्यों की बुद्धि इस रोग में कुछ काम न आयगी। इस रोग की जड़ गहरी होनी चाहिए। क्या हस्तिनापुर में कोई ऐमा वैद्य नहीं है जो महाराज के अन्तस्तल की गहराई में उतरकर थाह लावे ?”

“कुमार, आप जैसा कहते हैं उसी तरह मैंने प्रयत्न करके देख लिया है।” मन्त्री ने जवाब दिया।

“तब फिर बताओ रोग का कुछ पता लगा है। रोग का निदान हो जाने के बाद इलाज तो बहुत कठिन नहीं होता।” कुमार ने कहा।

मन्त्री ने गम्भीर स्वर में कहा— ‘कुमार, पता तो अवश्य लगा है, किन्तु मेरे उसे बताने पर कुछ समय तक तो आप सिर रहेंगे और बात मानेंगे नहीं।”

“मन्त्रीजी, वैद्य ने शास्त्रीय विधि से पूरी खोज करके जो बात निश्चित की हो, उससे मैं इनकार कैसे कर सकूंगा ?” देवव्रत ने कहा।

मन्त्री ने जवाब दिया—“कुमार, वैद्य मुझसे कहते थे कि समाज के परम्परागत सम्बन्ध कुछ ऐसे हो जाते हैं कि हमारे मन अमुक सम्बन्धी के विषय में अमुक प्रकार का विचार करने से ही इन्कार कर देता है। कुमार, क्या आप इस बात को मान सकेंगे कि महाराज का मन एक मछुवे (धोवर) की पुत्री में उलझ गया है ?”

कुमार ने सिर हिलाते हुए कहा—“महाराज शान्तनु क्रे विषय में यह बात सम्भव नहीं हो सकती ।”

मन्त्री तुरत ही बोले—“देखो, राजकुमार, मैं कहता था न ? किन्तु कुमार, इस बात को कौन जान सकता है कि मनुष्य के हृदय में कैसे-कैसे विकार खोये पड़े हैं और उनमें से कौन-कौन-से कब-कब जागकर उस पर सवार हो जायेंगे ।”

“तब फिर वैद्य ने यह बात किस तरह जानी ?” कुमार ने शान्त होकर पूछा ।

मन्त्री ने कहा—“सुनिये । वैद्य ने लगातार दस दिन तक महाराज के मुंह से स्वप्न में निकले हुए वचन सुने, चेष्टाएं देखीं; दिन के समय महाराज के साथ देश-विदेश की अनेक बातें कीं; उनके अंग-रक्तकों के साथ कई तरह के सवाल-जवाब किये और अन्त में इन सबके आधार पर निर्धारित अपना निर्णय मुझे कह सुनाया ।”

“तब फिर महाराज स्वयं ही हम से यह बात क्यों नहीं कहते ?” कुमार ने पूछा ।

“कहें किस तरह ?” मन्त्री ने कहा । “लोक-लाज वस्तु ही ऐसी है कि मानव-हृदय के स्वाभाविक प्रभाव को रोक देतो है । और कुमार वैद्य के कहने के बाद मैंने निजी तौर पर जांच की तो पता लगा कि महाराज ने उस कन्या की मांग तक की थी ।”

“यह बात ? फिर क्या हुआ ?” कुमार ने पूछा ।

“किन्तु, कन्या के पिता ने आपत्ति का ।” मन्त्री ने जवाब दिया ।

“अपनी कन्या के रानी बनने पर मझुआ आपत्ति करता है ?”

कुमार ने आश्चर्य प्रकट करते हुए पूछा ।

“कर सकता है ।” मन्त्री ने जवाब दिया । “यह तो अपनी मरजी की बात है । मझुवे ने महाराज से साफ हा कहा कि वह इस बात का वचन दें कि उमको कन्या से उत्पन्न पुत्र ही हस्तिना-

पुर की गद्दी पर बैठेगा, तभी वह अपनी कन्या देगा।”

“पानी के जीवों पर अपनी गुजर करने वाले लोगों को भी ऐसा नशा चढ़ता है ? ठीक; फिर महाराज ने इस पर क्या कहा ?” कुमार ने पूछा।

मन्त्री—“महाराज क्या कहते ? उन्होंने सिर खुजाया। आप तो ठहरे देवीकुमार; आपको इस बात का क्या पता। किन्तु गंगा-देवी के रहते महाराज किसी दूसरे की तरफ नजर तक नहीं डालते थे। उस समय तो देवी की हुंकार रहती थी, क्या मजाल थी कि महाराज कहीं और नजर डाल सकते।” अब गंगादेवी के विलुप्त हो जाने से महाराज पर किसी का अंकुश नहीं रहा। किन्तु गद्दी के अधिकारी आप हैं, महाराज मछुवे को वचन दे ही कैसे सकते थे ? फिर भी उनसे कन्या का मोह नहीं छूटता, इसीलिए दुःख पा रहे हैं। सारे शहर में इसी एक बात की चर्चा है और लोग खुल्लम-खुल्ला कहते हैं कि महाराज को बुढ़ापे में यह क्या सूझा है ?”

किसी गहन विचार में से जागते हुए-से कुमार देवव्रत ने कहा—“मन्त्रीजी, एक ओर तो मैं गद्दी का अधिकारी हूँ और दूसरी ओर महाराज का चित्त चुराने वाली कन्या है और इन दोनों के बीच आज महाराज की खींच-तानी हो रही है। और यह खींच-तान ही उनके रोग का कारण है। महाराज का यह रोग धर्मानुकूल तो नहीं ही है। किन्तु कामदेव समाज के धर्माधर्म के इस प्रकार के बन्धन को कहां मानता है ? मन्त्रीजी आपने महाराज को इस रोग से मुक्त करने का कोई उपाय भी सोचा है।”

“हां, मैं तो सोच चुका हूँ। आज महाराज को कोई सच बात कहने वाला नहीं है, अन्यथा उनसे कहना चाहिए कि वे इस कन्या के प्रति अपना मोह छोड़ दें।”

“तब क्या महाराज अच्छे हो जायेंगे ?” कुमार ने पूछा।

“क्या आपका यह अनुभव है कि लोग काम के पाश से इस प्रकार एकदम छूट सकते हैं ?”

“तो फिर क्या हो ? न मानें तो कुढ़ते रहें ।” मन्त्री ने कह डाला ।

“ठीक; उन्हें तो इस खींच-तान में भुरना ही रहा । वे मोह को छोड़ सकते हैं न मुझसे ही कुछ कह सकते हैं । किन्तु मन्त्रीजी, मुझे ऐसा लगता है कि महाराज को इस पीड़ा से मैं मुक्त कर सकता हूँ और मुझे वह करना ही चाहिए ।”

“किस तरह ?” मन्त्री ने पूछा ।

“मैं स्वयं हस्तिनापुर की गद्दी के अधिकार को छोड़ दूँ ।” कुमार ने कहा ।

“कुमार, कुमार ! आप यह क्या कहते हैं ? यह तो महाराज की निरी वासना है । वे बड़े आदमी ठहरे, इसलिए कोई उनके सामने बोलता नहीं । मामूली आदमी कोई इस तरह की वासना करे तो लोग उसको कलंक लगावें । आपको इसके लिए गद्दी क्यों छोड़नी चाहिए । महाराज को कल सुबह होश आ जायगा ।”

“मन्त्रीजी, इस तरह सोचना ठीक नहीं ।” कुमार ने कहा ।

“मेरे लिए तो प्रश्न यह है कि पिताजी का जीवन अधिक मूल्यवान है अथवा हस्तिनापुर की गद्दी । यदि मैं पिताजी को बचा सकता होऊँ तो हस्तिनापुर की गद्दी छोड़ देना मेरा धर्म है ।”

“कुमार यदि आप युवराज न होकर एक साधारण व्यक्ति होते तो मैं आपकी इस वृत्ति को आदरपूर्वक स्वीकार करता । किन्तु आपका प्रश्न केवल व्यक्तिगत प्रश्न नहीं है । आप गद्दी का त्याग करें, इसमें तो हस्तिनापुर की सारी प्रजा का प्रश्न निहित है । केवल पिता की वासना की तृप्ति के लिए, आप हस्तिनापुर की गद्दी दूसरे के हाथों में सौंप दें यह बात मुझे तो लोककल्याण की दृष्टि से अधर्मपूर्ण प्रतीत होती है ।” मन्त्रों ने गम्भीरतापूर्वक कहा ।

“मन्त्रीजी, आप भूलते हैं।” कुमार ने कहा। जिसे प्रजा की सेवा करनी होगी वह गद्दी पर न होते हुए भी प्रजा के अन्तःकरण में अपने लिए नया सिंहासन बना लेगा। निरे गद्दी पर बैठने वाले तो कदाचित् ही लोक-कल्याण कर सकते हैं। मैं गद्दी का अधिकार छोड़कर लोक-सेवा का अधिकार तो छोड़ नहीं रहा हूँ। इसके विपरीत गद्दी से थोड़ी दूर रहकर जनता की अभिलषित कुछ अधिक ही सेवा कर सकूँगा। फिर किसे पता है कि मेरे भाग्य में ऐसी लोक-सेवा लिखी है या नहीं, आज तो पिता को रोग-मुक्त करना, और वह गद्दी का अधिकार छोड़कर भो, मुझे अपना धर्म प्रतीत होता है।”

“कुमार, मुझे तो आपका विचार अच्छा नहीं लगता।” मन्त्री ने निश्वास लेते हुए कहा—“महाराज आपका अधिकार छीनकर उस कन्या से विवाह करें, इसमें उनकी क्या शोभा रहेगी? आप पितृ-भक्ति से प्रेरित होकर ऐसा करते हैं, यह तो ठीक है; किन्तु इससे महाराज की आंख कब खुलेंगी इसका भी आपने विचार किया?”

“महाराज की और संसार की आंख खुलनी होगी तो इसी उपाय से खुलेगी।” कुमार ने धीमे स्वर में कहा। “किन्तु आंखें खुलें या न खुलें, मुझे अपने लिए जो धर्म प्रतीत होता है, उसी का पालन करना चाहिए। मेरा मन तो अब यह कहता है कि अब इस विषय में मुझे स्वयं ही मछुवे के पास जाकर कन्या की मांग करनी चाहिए, और अपना निर्णय भी उसे ही बताऊँ, जिससे कि उसे सन्देह के लिए कोई कारण न रहे।”

“किन्तु आप पहले महाराज के कान तक तो यह बात पहुंचावें। मेरा तो खयाल है कि महाराज स्वयं ही यह बात स्वीकार न करेंगे।” मन्त्री ने कहा।

“मुझे यदि गद्दी छोड़ने की कोरी बात ही करनी हो और

वास्तव में गद्दी छोड़नी न हो तब तो महाराज के कानों तक यह बात पहुँचाना ठीक है। किन्तु मुझे तो महाराज को निरोग करना है, इसलिए मैं सीधा मछुवे के ही पास जाऊँगा और कन्या की मांग करूँगा। आपको मेरे साथ चलना होगा।” कुमार ने दृढ़ता से कहा।

“जैसी कुमार की आज्ञा।” मन्त्री ने कहा।

कुमार ने आगे कहा—“मैं अभी तैयार होकर आता हूँ, आप जरा यहीं बैठें। हम अभी चलेंगे।”

मन्त्री बाहर जाते कुमार की ओर विचारमग्न होकर देखते रहे।

: ३ :

भीष्म-प्रतिज्ञा

“कुमार, कहिये क्या आज्ञा है।” मछुवे ने हाथ जोड़कर पूछा।

कुमार देवव्रत ने कहा—“भाई मैं तो आज्ञा लेने आया हूँ, देने नहीं। मेरे आने का कारण तो तुम समझ ही गये होगे। अपने पिता के लिए तुम्हारी कन्या की मांग करने आया हूँ।”

मछुआ जरा सीधा तनकर बोला—“कुमार हमारी लड़कियों के लिए राजमहल का वास कैसा? हमारे लिए तो भले ये घास-फूस के भोंपड़े, भले ये फटे-टूटे कपड़े और भली यह नाव। धन्य है गंगा मैया; कि जो रात-दिन हमारा संरक्षण करती है। हमारे बालकों ने नदी के खुले जलवायु का सेवन किया है। अतः राजमहल में तो ये मुर्झा जायेंगे।”

मन्त्री से न रहा गया; वह बीच में ही बोल उठे—“भले मानुस, तू तो लक्ष्मी के तिलक करने आने पर मुँह धोने जाने के

समान कर रहा है ! हस्तिनापुर की गद्दी का अधिकारी राजकुमार मांग करने आया है जरा इसका खयाल रख और सोच-समझ कर जवाब दे । तेरी लड़की हस्तिनापुर की रानी बनेगी, यह भी समझता है या नहीं ?”

“मन्त्रीजी, मुझे क्षमा करो ।” मछुवे ने शान्तिके साथ जवाब देते हुए कहा । “मेरा यह विश्वास है कि हमारे इस परिश्रमी जीवन में जो आनन्द है वह राजकीय जीवन में ढूँढे भी नहीं मिलेगा । आज तो मैं, मेरी स्त्री और यह लड़की, तानों हाँ हवा से चलती नाव चलाते हैं, कमाते हैं और खाते हैं । पास के प्रकाश-स्तम्भ पर जलाने के लिए दीपक रखा है, उसे मैं भी जलाता हूँ और यह लड़की भी जलाती है । किसी समय गंगा माता क्रोधित होकर विकराल रूप धारण करती है, उस समय हमारी नाव आकाश-पताल देखती है और हम किनारे पर खड़े हुए झुरते रहते हैं; उसमें भी भगवान् न करे यदि हममें से किसी को गंगा में समा दे तो हम आह भरकर बैठ रहेंगे । लेकिन इस सुख-दुःख में हम सब साथ हैं । सब एक साथ काम करते हैं, साथ रहते हैं, साथ रोटी खाते हैं और साथ ही दुःख भेलते हैं । अपने पसीने की कमाई की रोटी खाने वालों को जहाँ ऐसा आनन्द मिले ऐसा कोई राजमहल है ? कुमार, मुझे क्षमा करना हम किनारे पर बसने वाले लोगों को अच्छी तरह बात करना नहीं आता । किन्तु मेरी लड़की राजा से ब्याही जायगी इसलिए इसके हाथ-पैरों में मेंहदी लगाई जायगी । क्या आप समझते हैं कि हमारी नाव पर डाँड चलाने से मेरी लड़की के हाथों में आज जो ललाई है, वह कहीं मेंहदी से आने वाली है ? मैं जानता हूँ कि मेरी लड़की राजमहल के हिंडोले पर झूलेगी, किन्तु मन्त्रीजी, इस गंगामैया का पानी जिस समय हिंडोले लेता है और हमारी बच्ची को अपनी छाती पर नचाता है वह आनन्द उसे कहां मिलने वाला है ?

हम तीनों इस घास के भौँपड़े में बैठकर जिस आनन्द के साथ रूखी-सूखी रोटी खाते हैं, राजमहल के विविध प्रकार के भोजन में भी वह आनन्द उसे नहीं मिलेगा। इसलिए मन्त्रीजी, मेरे मन में यही खयाल होता रहता है कि अपनी लड़की को मुझे इस दुःख में नहीं डालना चाहिए। अपने शरीर के ढाँचे को निकम्मा बनाने में जो बड़प्पन मानते हों ऐसे ही किसी परिवार की कन्या महाराज के लिए खोज निकालिये; मेरी यह कन्या राजमहल में कुम्हला जायगी।”

“कुमार, यह तो और भां चण्ट निकला। आपने ज्यों-त्यों करके घूंट गले-के नोचे उतारी तो यह मछुवा और भी चतुराई दिखाने लगा।” मन्त्री ने कुमार से कहा और फिर मछुवे की ओर मुड़कर कहने लगा—“भाई, तू तो इस तरह की बातें करता है जैसे हमने तेरा जीवन देखा ही न हो। रात-दिन डांड चलाते-चलाते प्राण निकले जाते हैं यह तो कहता नहीं है, और सुख-आनन्द की बातें करता है। यदि तुझे लड़की देनी ही नहीं हाती तो यह क्यों कहा था कि ‘मेरा धैर्यता गद्दी पर बैठे तभा मैं उसे दे सकता हूँ?’ आज बुद्धिमान बनकर बड़ो-बड़ो बातें बनाने बैठा है।”

“यदि मेरा वश चलता हो तो मैं किसी भी शर्त पर महाराज को कन्या न दूँ। संसार में जहां-जहां गरीब लोगों ने मालदार जंवाई दूढ़े हैं, वहां-वहां ही उनके हाथ जले हैं। किन्तु मन्त्रीजी, मैं करूँ क्या, मेरी लड़की को भी महाराज से विवाह करने का मोह हो गया है! मैंने उसे बहुत समझाया लेकिन मेरी बात उसके गले उतरती ही नहीं, इसलिए लाचार हूँ।” मछुवे ने गम्भीर भाव धारण करते हुए कहा।

“तब फिर कुमार की मांग स्वीकार करके कन्या का विवाह महाराज के साथ कर दे।” मन्त्री ने कहा।

“लेकिन..... मल्लुवा रुककर बोला। मन्त्रीजी, मैंने थोड़ी दुनिया देखी है। अपने जीवन को निचोड़कर पालित-पोषित पुत्रियों को राजमहल में ढकेल देने के बाद उनकी क्या दशा होती है यह मैंने सुन रखा है। जब तक वह राजा की आंखों में चड़ी रहती है तब तक तो रानी रहती है, और नज्दों से उतर जाने के बाद महल के एक कोने में पड़ी-पड़ी सड़ने वाली एक कंगाल अबला रह जाती है। इसीलिए मेरा यह आग्रह है कि महाराज से अपनी लड़की का विवाह करूं तो एक शर्त पर कर सकता हूं कि उससे उत्पन्न पुत्र ही गद्दी पर बैठे।”

“इससे क्या लाभ? यदि तेरा धेवता गद्दी पर न बैठे तो अन्त में नाब चलायगा और अधिक सुखी होगा यही न?” मन्त्री ने कहा।

“मेरे विचारों के अनुसार तो यही बात है, लेकिन मेरी लड़की के विचारों के अनुसार नहीं। लड़का गद्दी का अधिकारी हो तो किसी-न-किसी दिन रानी की पूछ हाना सम्भव है। विवाहित जीवन में रही हुई कमी राजमाता के रूप में पूरी कर लेने से उसे संतोष हो सकता है। मेरी कन्या को जो आज ‘महाराज’ ‘महाराज’ की धुन लगी हुई है, वह तो अधिकतर आंखों का आकर्षण-भर है। मुझे तो पिता की हैसियत से उसके भविष्य का भी विचार करना है।” मल्लुवे ने दृढ़ता पूर्वक कहा।

“तो तेरी मांग यही है न कि कुमार देवव्रत के बजाय तेरा नाती गद्दी का वारिस समझा जाय?” क्या तू यह नहीं समझता कि ऐसा करके तू इस कुमार के साथ अन्याय करता है?” मन्त्री ने पूछा।

“यह तो स्पष्ट ही है।” मल्लुवे ने कहा। यदि मेरी चलती तो मैं अन्याय समझी जाने जैसी कोई मांग करता ही नहीं। आप सब महाराज के सलाहकार हैं, इसलिए आपको यह अन्याय रोकना

चाहिए। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि महाराज की और मेरी लड़की की, दोनों ही की बुद्धि मारी गई है।”

देवव्रत ने बीच में ही टोकते हुए कहा—“मन्त्रीजी, आड़ी टेढ़ी बातें छोड़िये। मेरा खुद का यह आग्रह है कि महाराज इस मछुवे की कन्या से विवाह कर लें। और भाई मछुवे, तू जो शर्त कर रहा है वह तेरी दृष्टि से सर्वथा उचित है। महाराज आज पीड़ित हैं, उससे उन्हें मुक्त करने का मुझे केवल एक ही उपाय दिखाई देता है और वह यह कि मुझे हस्तिनापुर की गद्दी का अपना अधिकार छोड़ देना चाहिए। क्यों, यही बात है न?”

“कुमार मैं यह नहीं कहता। आप खुशी से राजगद्दी भोगें।” मछुवे ने कहा।

देवव्रत से न रहा गया। वह बोले—“भाई तू यह नहीं कहता, लेकिन मैं कहता हूँ। मन्त्रीजी सुनो—“आर्यावर्त को इस पतित-पावनी गंगामैया के तट पर खड़े होकर मैं देवव्रत प्रतिज्ञा करता हूँ कि ‘हस्तिनापुर की गद्दी पर मैं अपना कोई अधिकार न जमाऊंगा।’ बस भाई मछुवे ! अब अपनी कन्या का विवाह महाराज से करके मुझे चिन्ता-मुक्त कर।”

मछुवे ने मुस्कराते हुए कहा—“कुमार तुम्हारी प्रतिज्ञा तो ठीक है, किन्तु इससे मुझे सन्तोष नहीं होता।”

“तू तो कोई निरा गंवार प्रतीत होता है।” मन्त्री ने क्रोध के आवेश में कहा।

मछुवा फिर हंसा और बोला—“राजपुरुषों को तो मुझ-जैसे व्यक्ति गंवार ही प्रतीत होते हैं। लेकिन गंवार लोग सफेद दीवारों और श्वेत वस्त्रों के पीछे छिपे रहते हैं या ऐसी भौंपड़ियों और लंगोटियों के पीछे यह बात दुनिया से छिपी नहीं है।”

“मन्त्रीजी, ऐसी बात न कहो।” कुमार ने बीच में पड़कर कहा, और मछुवे से पूछा—भाई तुम्हें अभी भी असन्तोष

बना हुआ है ?”

“जी हाँ”, मछुवे ने जवाब दिया । “मुझे इसमें तो जरा भी शंका नहीं है कि आप अपनी प्रतिज्ञा पूरी करेंगे और गद्दी की ओर नजर उठाकर भी नहीं देखेंगे । किन्तु आपके पुत्रों के विषय में यह बात नहीं कही जा सकती । उन्होंने तो कोई प्रतिज्ञा की नहीं है, इसलिए गद्दी के लिए उनका लड़ना स्वाभाविक ही है । और उस समय मेरा नाती निस्सहाय हो जायगा । चाहे जैसा भी हो वह होगा तो मछुवें का नाती । समस्त क्षत्रियजाति आपके पुत्रों के पक्ष में खड़ी होगी और आपके प्रतिज्ञा-पालन करने पर भी मेरी लड़की और नाती दोनों ही दुःखी होंगे ।”

मन्त्री चकित हो उठे और कहने लगे—“ओह ! यह तो कोई बड़ा भारी राजनीतिज्ञ मालूम होता है । इसे तो महाराज को विदेश-विभाग का मन्त्री नियुक्त करना चाहिए । कुमार, यह मछुवा अब सीमा से बाहर की बातें करने लगा है ।”

इस बीच कुमार आखें बन्द करके जरा गहराई में उतर गये । जीवन के छोटे-बड़े अनेक प्रश्न उनके सामने आकर खड़े हुए और छुट्टी लेकर चलते हुए । हस्तिनापुर की गद्दी, भावी गृहस्थ-जीवन सन्तान, काम-वृत्ति; ये सब प्रश्न एक के बाद एक मन में पैदा हुए और विलीन होते गये । पिता की रक्षा के एक ही महा विचार ने इन सब विचारों को दूर ढकेल दिया, और कुमार मानो इन सबके बीच से डुबकी मारकर निकले हो इस तरह सिर हिलाते हुए बोले—“भाई, धीवर ! मैंने विचार कर लिया है । गद्दीपर के अपने अधिकार को मैं कभी का छोड़ चुका हूँ, किन्तु तुम्हें मेरे पुत्रों का डर बना हुआ है । अतः मन्त्रीजी, माता गंगा, आर्यावर्त के देवताओं और कुरुकुल के पूर्वजों, सुनो—‘मैं देवव्रत प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं स्वयं सन्तान उत्पन्न करूँगा ही नहीं और इसके लिए विवाहित जीवन में भी प्रवेश नहीं करूँगा ।’ बोल भाई

“धीवर, अब तो बस ? अब भो तेरा कोई डर बाकी रहा है क्या ?”

मन्त्रो और धीवर दोनों ही कुमार की प्रतिज्ञा सुनकर स्तब्ध रह गये । धीवर की कन्या भो आश्चर्य-चकित रह गई । सारा वातावरण गम्भीर बन गया और दूर-दूर उछलती हुई गंगा मैया की लहरों के बीच से न मालूम किस तरह आवाज आई “यह प्रतिज्ञा तो अत्यन्त भीष्म है, और ऐसी प्रतिज्ञा लेनेवाला भो भीष्म है ।”

और इसी दिन से देवव्रत भीष्म कहलाने लगे ।

: ४ :

वंश की रक्षा का प्रश्न

महाराज शान्तनु ने धीवर की कन्या से विवाह कर लिया । कन्या का नाम मत्स्यगंधा था; उसे बदलकर सत्यवती किया । सत्यवती के महाराज शान्तनु से दो पुत्र हुए । समय बोलने पर महाराज शान्तनु का स्वर्गवास हुआ और सत्यवती का पुत्र हस्तिनापुर की गद्दी पर बैठा । बड़े भाई भीष्म इन भाइयों के लिए दो राज-कन्याएं अपहरण करके लाये और उनसे इनका विवाह किया ।

किन्तु सत्यवती के दोनों पुत्र छोटी अवस्था में ही मृत्यु के ग्रास बन गये और पीछे युवती विधवाएं छोड़ गये । रानी सत्यवती के शोक की कोई सीमा न रही । दोनों ही पुत्रों के कोई सन्तान न थी, इसलिए हस्तिनापुर की गद्दी का पुराना प्रश्न सत्यवती के सामने फिर आ खड़ा हुआ और उसे परेशान करने लगा ।

पुत्रों की उत्तर-क्रिया से निवृत्त होकर एक बार बैठी थी कि भीष्म वहां आ पहुँचे और बोले—“माताजी कैसे बैठी हो ?”

सत्यवती जरा शरमाती हुई बोली—“ओह, भीष्म ! तुम आये ? मैं तुम्हें कभी की याद कर रही थी ।

“कहिए क्या काम है ?” भीष्म ने पूछा ।

“हां, तो मैंने जो कहा था, उस पर तुमने विचार किया ? मेरी बात समझ में आती है ?” सत्यवती ने पूछा ।

“इसमें विचारने का समय ही नहीं है, और समझ में आने-जैसी कोई बात भी नहीं है ।” भीष्मने बैठते-बैठते कहा, “गंगामैया के किनारे खड़े रहकर मैंने जो प्रतिज्ञा की है, उससे मैं बाल बराबर भी पीछे नहीं हटना चाहता ।”

“किन्तु भीष्म ! क्या समूचे कुल का नाश होते देखकर भी हठ न छोड़ना उचित है ?” सत्यवती ने जरा नजदीक आकर कहा ।

“माता, ऐसा न कहो । यह हठ है ही नहीं अपने वचन पर शुद्ध बुद्धि से टिके रहने के विचार को ही यदि तुम हठ कहती हो, तो फिर मुझे कुछ कहना नहीं है।” भीष्म ने गम्भीरता पूर्वक कहा ।

“किन्तु गंगा-सुत भीष्म ! उस दिन के संयोग ही कुछ और थे । उस समय मैं छोटी थी; गंगा के पुत्र में कितनी उदार वृत्ति और कितनी महानता होगी, मैं यह कुछ भी नहीं जानती थी, और महाराज केवल मूढ़ होकर बैठ गये थे । उन सब संयोगों में मेरे पिता ने तुमसे ऐसी प्रतिज्ञा करवाई थी ।” सत्यवती ने व्याकुल होकर कहा ।

भीष्म ने तत्काल उत्तर दिया—“और वह प्रतिज्ञा थी अतः उसका यथोचित पालन होना ही चाहिए माता । मुझसे व्यर्थ का आग्रह न करो । इसके विपरीत, यदि आज मैं अपनी प्रतिज्ञा तोड़ने के लालच में पड़ भी जाऊं तो आपको मुझे उससे बचाना चाहिए । प्रतिज्ञा-भंग से होने वाला कुल का नाश अप्रकट किन्तु

धेक भयङ्कर होता है। इसलिए माताजी, आप कोई और ाय सोचिये।”

“तो फिर एक ही उपाय बाकी रह जाता है और वह है योग का।” सत्यवती ने कहा।

“इसमें तुम्हें जैसा ठीक लगे सो करो।” भीष्म ने कहा।

“भीष्म, अब ऐसा उड़ाऊ जवाब ठीक नहीं।” सत्यवती ने न्त ही कहा। “मुझे ठीक लगने प्रश्न नहीं है, हम दोनों के ा लगने का प्रश्न है। अब तो मुझे तुम्हारी सलाह पर चलना। भीष्म, इतने वर्षों में मैंने तुम्हारी परीक्षा कर ली है और यह ाच्य पूर्वक मानो कि मुझे तुम पर पूर्ण विश्वास है। इस ाय की बागडोर अब तुम्हारे हाथ में है। बोलो, गद्दी के लिए ा करना है। गादी पर बिठाने के लिए पुत्र की तो आवश्य- ा है ही।”

“नियोग का मतलब तो यह है कि कोई पर पुरुष इन वधुओं सन्तानोत्पत्ति करे। आपकी कठिनाई मैं समझता हूँ किन्तु पकी नियोग की बात मेरी समझ में नहीं आती।” भीष्म ने चार करते हुए कहा।

“इसमें क्या आपत्ति है?” सत्यवती ने कहा। “अपने ाज में मैं नियोग के कई उदाहरण बता सकता हूँ।”

“माता सत्यवती, यह तो मैं भी जानता हूँ कि समाज में योग प्रचलित है; किन्तु यह प्रथा सम्मान योग्य नहीं है। आज अपने समाज में भी कितने ही सज्जन पुरुष ऐसे जंगली ाज को पसन्द नहीं करते।” भीष्म ने जवाब देते हुए कहा।

“किन्तु भीष्म, नियोग की तो शास्त्रों में भी स्वतन्त्रता दी गई। इसके सिवा आज तो वंश की रक्षा का और कोई उपाय ा मूक्तता।” सत्यवती ने कहा।

भीष्म ने कहा—“यह मैं समझता हूँ किन्तु अभी तक हमें इस

वस्तु से उतनी घृणा न थी, जितनी आज है। यों तो एक दिन ऐसा भी था, जब कि हम आर्यों में विवाह की प्रथा ही नहीं थी और स्त्री और पुरुष स्वच्छन्द विचरते थे। एक बार एक ऋषि के आश्रम में स्वयं ऋषि, उनकी पत्नी और पुत्र तीनों बैठे थे कि इतने ही में वहां अचानक एक दूसरे ऋषि पहुंचे और ऋषि-पत्नी की कलाई पकड़कर चलते बने।”

“क्या बात कहते हो ? अच्छा फिर ?”

“सच कह रहा हूं।” भीष्म ने कहा। “फिर क्या, ऋषि तो कुछ बोले नहीं किन्तु उनके पुत्र की आंखों में यह बात खटक गई और वह गरम हो उठा।”

“फिर ?”

“फिर” भीष्म बोले “ऋषि ने उसे जरा शांत किया और आर्यों में प्रचलित प्रथा की बात कही। इस पर पुत्र ने कहा—“पिताजी, हम आर्यों में अभी तक यह प्रथा भले ही चली आई हो, किन्तु अब से ऐसी प्रथा बन्द होनी चाहिए और आर्य स्त्री-पुरुषों को विवाह-बन्धन में बांधकर अपने पर अंकुश लगाना चाहिए। तब से आर्यों में विवाह आरम्भ हुए।”

“पहले ऐसी बात थी, यह किस तरह माना जाय ?” सत्यवतो ने कहा।

भीष्म ने जवाब देते कहा—“ऐसा ही था, और इतने पर भी वह किसी के मन को चुभतो न थी। समय बीतने पर यही बात चुभने लगी और ऋषि-पुत्र ने इस चुभन को स्पष्ट रूप में प्रकट किया। नियोग की इस प्रथा के सम्बन्ध में भी वही बात है। प्रचलित प्रथा है इसलिए यह कितनी दूषित है इसका हमको अनुभव नहीं होता। किन्तु स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध की पवित्रता को अधिक उच्च कक्षा तक ले जाने के लिए प्रयत्नशील व्यक्ति इस प्रथा की निन्दा करते हैं और मझे तो ऐसा प्रतीत होता है

कि कुछ ही वर्षों में यह प्रथा जड़ से जाती रहेगी ।”

सत्यवती को आवेश हो आया और वह बोली—“यह जिस दिन नष्ट होगी तब की बात तब से रही । आज तो मैं महाराज शान्तनु की बेल को जीवित रखना चाहती हूँ । भीष्म ! तुम्हारे अपने निज के विचार चाहे जो कुछ हों, किन्तु इस विषय में मैं तुम्हारी सहायता चाहती हूँ ।”

“तो कहो, आप क्या करना चाहती हैं ?” भीष्म ने कहा ।

“भीष्म !” सत्यवती कुछ अटकती हुई बोली “सच कहूँ ? तुम्हें अपने पेट के लड़ने के समान समझकर कहती हूँ, भला । कहूँ ?”

“अवश्य कहिए।” भीष्म ने कहा ।

“मेरे प्रति कोई विपरीत विचार तो न करोगे ?” सत्यवती ने जरा शंकाशील होते हुए पूछा ।

“इतने वर्षों के अनुभव के बाद भी यदि विश्वास न होता हो तो फिर मैं क्या कह सकता हूँ ?” भीष्म ने कहा ।

“भीष्म, वर्षों पहले की बात है । एक बार जब मैं गंगा मैया के पानी पर नाव चला रही थी तब मेरा पराशर ऋषि के साथ समागम हो गया था और उनसे मेरे एक पुत्र हुआ था ।” सत्यवती ने झिझकते हुए बताया ।

“आज वह पुत्र कहां है ?” भीष्म ने पूछा ।

“वह आज वेदव्यास के नाम से प्रसिद्ध है ।” सत्यवती ने स्पष्टीकरण करते हुए कहा ।

“क्या, भगवान् वेदव्यास तुम्हारे पुत्र हैं ? अहोभाग्य तुम्हारे कि तुमने ऐसे पुत्र को जन्म दिया ?” भीष्म कह उठे ।

“अपने इसी पुत्र को मैं नियोग के लिए बुलाने का विचार कर रही हूँ ।” सत्यवती ने कहा ।

“भगवान् व्यास को ?” भीष्म ने आश्चर्य-चकित होकर पूछा । “तुम कैसी बात कहती हो माता ?”

“इसमें शंका की कोई बात नहीं है भीष्म ! चलते समय वह मुझसे कह गया था इसलिए अवश्य ही आयगा !” सत्यवती ने निश्चयपूर्वक कहा ।

भीष्म ने सिर खुजाते हुए कहा—“मैं तो नहीं समझता कि वह आयेंगे और तुम्हारी बात स्वीकार करेंगे । वर्तमान विश्व-के नवीन विचारकों में वे अग्रसर हैं, ऐसी दशा में ऐसी बात वे कैसे कर सकते हैं । फिर वह बात जुदी है कि माता का आदेश हो और उन्हें यह स्वीकार करना पड़े ।

“यही बात है । बाकी तो तुम सब लोग एक से ही हठी हो । एक बार जिस बात को पकड़ लेते हो उसे छोड़ना जानते ही नहीं । किन्तु माता की हैसियत से मैं उससे मांग करूंगी । तुम्हारे तो प्रतिज्ञा लेने में भी मैं हूँ कारणभूत थी, इसलिए आदेश देते हुए संकोच होता है । किन्तु व्यास से तो मैं इतनी बात आग्रह पूर्वक कह सकूंगी । और मेरा मन गवाही देता है कि चाहे जिनना विरोध करने पर भी अन्त में वह मेरा मन रखेगा ।”

“तब तो उन्हें अवश्य बुलाओ ।” भीष्म ने कहा । “यदि यह बात निश्चित है कि हमें गद्दी के लिए पुत्र की आवश्यकता है तो इन सब उपायों का अवलम्बन भी उतना ही निश्चित है ।” भीष्म ने कहा ।

, ऐसा ही है ।” सत्यवती ने कहा । “जब एक बात करनी ही है तो फिर ढीले-ढाले मन से क्यों की जाय ? मैं अभी व्यास को बुलाने का उपाय करती हूँ और अम्बा और अम्बालिका के कान में भी यह बात डाले देती हूँ । मुझे तो तुम्हारे मत का खयाल रखना है, फिर ये पुत्र-वधुएं क्या कहती हैं उसका भी ध्यान रखना है; और इतने पर भी महाराज शान्तनु के वंश की रक्षा तो करनी ही है ।”

“अच्छा माताजी, अब मैं जाना चाहता हूँ।” यह कहकर भीष्म खड़े हो गये।

“अच्छा जाओ।” ब्यास के आने के बाद आवश्यकता पड़ी तो तुम्हें बुलाऊंगी।”

यह कहकर सत्यवती उठकर पुत्र-वधुओं के कमरे की ओर चली और भीष्म अपने महल की तरफ गये।

: ५ :

विकर्ण की नजर में

विकर्ण दुर्योधन का छोटा भाई था। जिस समय द्यूत-सभा में कौरवों के अधर्म को सब कोई चुपचाप सहन कर गूंगे बने बैठे थे, उस समय विकर्ण ने उसके विरुद्ध आवाज उठाई थी और अपना पुण्य-प्रकोप प्रकट करने के लिए सभा छोड़कर चला गया था।

द्यूत-सभा के अगले दिन विकर्ण भीष्म पितामह के महल पर गया। पितामह नित्य-कृत्यों से निबटकर अपने बगीचे में टहल रहे थे। वहीं विकर्ण पर उनकी नजर पड़ी और उन्होंने पूछा—“कहो विकर्ण, इस समय कहां से आ पहुंचे?”

“पितामह”, विकर्ण ने जवाब देते हुए कहा—घर चैन नहीं पड़ रहा था इसलिए आपके पास आने को जी कर आया।”

“आज शहर में उत्तेजना कैसी है?” भीष्म ने पूछा।

विकर्ण ने तुरन्त जबाब दिया। “उत्तेजना तो ऐसी है कि अपना सब कुछ ही उसमें भस्मीभूत हो जाय; किन्तु पितामह! समाज स्वभाव से ही इतना शान्त है और बड़े भाई इतने चालाक हैं कि यह उत्तेजना भा समय पाकर शान्त हो जायगी। किन्तु मुझे आश्चर्य तो यह है कि आप और द्रोणाचार्य-जैसों के बैठे रहते भी पांचाली का चीर खींचा गया।”

भीष्म ने एक चबूतरे पर बैठते हुए कहा—“इसमें आश्चर्य जैसी कोई बात ही नहीं। कुरुकुल का विनाश निकट आगया है, ये सब उसी के चिह्न हैं। तेरा बड़ा भाई अपने कुल का नाश करने के लिए ही पैदा हुआ है।”

विकर्ण ने जवाब में कहा—“पितामह, यह तो मैं भी मानता हूँ। विनाश के निकट होने पर ही इस तरह की बातें सूझती हैं। लेकिन आप यह सब गूंगे बने हुए किस तरह देखते रहते हैं?”

“मैंने तो वहीं उसी समय आपत्ति की थी।” भीष्म ने स्पष्टीकरण करते हुए कहा।

“पितामह !” विकर्ण ने नीचे बैठते हुए कहा। “इस तरह के शब्दों को कहीं आपत्ति करना थोड़े ही कहा जा सकता है ? यह तो अपना मतभेद कहा जा सकता है। हमारे सारे कुल में आपका वह पूर्व जीवन, आपका गौरवपूर्ण स्थान आपका ज्ञान, आपकी प्रतिष्ठा और कुछ न हो तो भी आपके ये सफेद बाल, हमें आपसे कहीं अधिक आशाएं रखने को प्रेरित करते हैं !”

“मैं तो जब-जब मुझे प्रतीत होता है तेरे पिता और भाई को चेताता रहता हूँ; किन्तु उनका काल निकट आ गया है इसलिए उनके कानों को कुछ सुनाई नहीं देता।” भीष्म ने कहा।

“पितामह ! आपका चेताना भर काफी नहीं कहा जा सकता।” विकर्ण ने उत्तर में कहा।

“तब क्या करूँ ?” भीष्म ने प्रश्न किया।

विकर्ण ने अधिक निकट आकर जवाब देते हुए कहा—“पितामह ! आपको यह बताने का मुझे क्या अधिकार है ? माता सत्यवती ने एक बार आपको अपनी प्रतिज्ञा से डिगाने के लिए कितनी अधिक महनत की, किन्तु आप हिमालय की तरह अचल ही बने रहे; एक बार आपके गुरु परशुराम ने अम्बालिका को

फिर स्वीकार करके विवाह करने के लिए अत्यन्त आग्रह किया, उस समय भी आपने अपना निश्चय न छोड़कर स्वयं गुरु के विरुद्ध हथियार उठाये और अन्त में अपनी मनचाही बात करके रहे। क्या ये दोनों बातें सच हैं ?”

“हां, दोनों ही बातें सच हैं।” भीष्म ने जवाब दिया।

विकर्ण ने तुरन्त ही जवाब दिया।

“तब फिर सारे कौरव-वंश में पहले कभी भी घटित न होने वाली कुल-वधू के चीर खींचे जाने जैसी घटना के अवसर पर आप केवल उचित अनुचित का शास्त्रार्थ करने बैठ गये क्या यह ठीक था ? आपने चाहा होता तो आप महाराज धृतराष्ट्र को अच्छी तरह झकझोर सकते थे, आप चाहते तो शकुनि मामा के चपत लगाकर बाहर निकाल सकते थे, और बड़े भाई साहब को कान पकड़कर नीचे बैठा सकते थे; इतना ही नहीं आपने चाहा होता तो दुःशासन की क्या मजाल थी कि द्रौपदी के एक अंगुली भी छूता ?”

“इसका अर्थ तो यही हुआ कि मैं ठीक तरह नहीं चाहता इसीलिए ऐसा होता रहता है ?” भीष्म ने पूछा।

“बहुत-कुछ अंश में यही बात है।” विकर्ण ने कहा। “इस प्रकार की घटनाओं से आपके चित्त में जो चिन्ता होनी चाहिए वह होती प्रतीत नहीं होती। मैं यह जानता हूं कि आप ऐसे प्रसंगों पर बड़े भाई को रोकते हैं। लेकिन वह पक्के आदमी हैं। वह समझते हैं कि पितामह अधिक-से-अधिक गुस्सा निकाल लेंगे। वास्तव में आपके शब्दों के पीछे उन्हें कोई शक्ति दिखाई नहीं देती।”

“शक्ति दिखाना न दिखाना तो दुर्योधन के हाथ की बात है।” भीष्म ने कुछ दीनता के साथ कहा।

“केवल ऐसी ही बात नहीं है।” विकर्ण ने कहा। “यह मैं

जानता हूँ कि आपके कितना कुछ कहने पर भी बड़े भाई कुछ नहीं मानते। वस्तुतः आज उनके मन में यह निश्चय है कि पिता-मह कुछ भी कहते रहें, आखिर हैं वह मेरे ही। आपके इस मूक सहयोग पर तो बड़े भाई और उनके साथी नाचते हैं, और समाज भी आपके ऐसे सहयोग के कारण भारी भ्रम में पड़ता है।”

“किन्तु विकर्ण, क्या तू समझता है कि जिस तरह तू सभा से उठकर चला गया उस तरह मैं भी जा सकता था ?”

“अवश्य जा सकते थे।” विकर्ण ने तत्काल उत्तर दिया। “मेरे जैसे मामूली आदमी के चले जाने को तो मूर्खता कहकर उड़ाया जा सकता है। किन्तु आप तो समस्त कौरव-कुल के संरक्षक के समान हैं। आप उठ कर चल दिये होते तो सारी सभा और बड़े भाई भी विचार में पड़ जाते, और कदाचित् बड़े भाई स्वयं आपके पैरों में पड़ने आते। किन्तु आप बैठे रहे और आपके देखते, आपको साक्षी बनाते हुए चण्डाल चौकड़ी सारा खेल खेलती रही।”

“चिरंजीव, तू जो कह रहा है वह मेरे गले उतर रहा है” भीष्म ने धीमे स्वर में कहा।

“पितामह ! आपको याद है महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के समय पहले पूजा किसकी की जाय यह प्रश्न खड़ा हुआ था और आपके यह मत प्रकट किया था कि ‘श्रीकृष्ण ही अपने युग के महापुरुष हैं अतः प्रथम पूजा उन्हीं की होनी चाहिए’ इस पर कितनी खलबली मची थी ?” विकर्ण ने अपना बोलना जानी रखते हुए कहा। “उस समय शिशुपाल, जरासिन्धु आदि कितनी उछल-कूद करने लगे थे यह आप भूले न होंगे। किन्तु आपका रोआं भी खड़ा न हुआ, और शिशुपाल का सिर धड़ से जुदा होकर पृथ्वी पर गिरा तब भी आपको जरा भी क्षोभ

न हुआ। जो ऐसे पितामह को देख चुका हो, उससे यदि कोई कहे कि कल सभा में पितामह चित्रवत् बैठे पाञ्चाली का चीर-हरण देखते रहे, तो वह उस पर कैसे विश्वास करेगा ?”

“पुत्र विकर्ण !” भीष्म धीमे स्वर में कहने लगे—“तेरे वाक्य तो हृदय के आर-पार होते जाते हैं और तू जो कहता है वैसा करने को मन भी बहुत चाहता है, किन्तु फिर भी यह खयाल होता है कि मेरे बैठे रहते पापी दुर्योधन कुछ तो मर्यादा में रहेगा।”

विकर्ण विद्रूपस्वर में कहने लगा—“पितामह ! यह तो आपके मन का पछतावा मात्र है। आपके सहारे बड़े भाई यह सब-कुछ कर पाते हैं। आप एक बार उनका त्याग करके तो देखें ? लेकिन बड़े भाई अच्छी तरह जानते हैं कि आप उन्हें छोड़ नहीं सकेंगे, इसीलिए उल्ल-कूद करते रहते हैं।”

“त्याग करना तो चाहिए लेकिन उसके लिए मन नहीं करता। यही विचार हो आता है कि किसी तरह अपना वंश टिका रहेगा तो यह आन्तरिक कलह तो अपने-आप मिट जायगा; इसीलिए किसी तरह निभा रहा हूँ।” भीष्म ने जवाब देते हुए कहा।

प्रत्युत्तर में विकर्ण ने कहा—“पितामह ! बड़े भाई ने आपके इस मोह को अच्छी तरह ताड़ लिया है। आप एक बार उन्हें खुला छोड़कर तो देखिए, फिर भले ही वह इससे हजार गुना अत्याचार करें।”

भीष्म बोले—“भाई विकर्ण ! मेरे जितनी तेरी आयु हो लेने दे, फिर बात करना। मुझसे ऐसा हो नहीं सकता। दुर्योधन मुझ-जैसे बूढ़े की कितनी चिन्ता रखता है इसका भी तुझे पता है ? दुर्योधन के कार-बार में मुझे ज़रा भी असुविधा नहीं होती, यह सब भूल कर उसका त्याग करना मुझे उचित प्रतीत नहीं होता।

विकर्ण ने कहा—“पितामह ! जिस रात बड़े भाई पैदा हुए

उस रात कोई नहीं जन्मा । आपको और प्रजा को अच्छी तरह रखने में बड़े भाई का मतलब है । क्या आप जानते हैं कि अपनी चालाकी से आपको और प्रजा को प्रसन्न रखकर वह समस्त आर्यावर्त के लोकमत को अपने पक्ष में खींचना चाहते हैं ? इस प्रकार बड़े भाई की ओर से मिलने वाली सब प्रकार की सुख-सुविधा में फंसकर तो आप पाण्डवों के साथ अन्याय करते हैं !

“विकर्ण” भीष्म बोले—“तू मुझसे एक नौजवान की-सी-जल्द-बाजी करने को कहता है यह ठीक नहीं । आज तो पाण्डव बन में गये हैं, और तेरह वर्ष समय के साथ-साथ बीत जायेंगे; उसके बाद जब पाण्डव घर वापस लौटेंगे तो एक साथ मिलकर रहेंगे ।”

विकर्ण—“आपको ऐसी आशा भले ही हो, मुझे तो ऐसा प्रतीत नहीं होता । एक दो नहीं, तेरह-तेरह वर्ष तक यत्न पूर्वक मन में संचित वैर उस दिन जोर के साथ फूट निकलेगा और अपने सारे कुल का नाश कर डालेगा । आप और द्रोणाचार्य हमारे पक्ष में से हट जायें तो बड़े भाई की आंखें आज ही खुल जायें ।”

“तेरी बात मेरे गले नहीं उतरती ।” भीष्म गहरे विचार से जागकर बोले “फिर अपने प्रति दुर्योधन के सौजन्य को देखकर भी ऐसा करना उचित प्रतीत नहीं होता ।”

“पिता यह यह न समझिये कि बड़े भाई के उस सौजन्य में कुछ वास्तविकता है; यह तो आपको और द्रोणको अपने पक्ष में रखने का मूल्य है !” विकर्ण ने कहा ।

“नहीं, नहीं । दुर्योधन कैसा ही हो, कम-से-कम इतना दुष्ट नहीं है । अपने वंश में इतनी गहरी दुष्टता पैदा हो नहीं सकती” भीष्म ने सिर हिलाते हुए कहा । “किन्तु विकर्ण कल की घटना

से तो मैं चौंक गया हूँ, और दुर्योधन को चेता देना चाहता हूँ कि फिर कभी ऐसा हुआ तो यह समझ रख कि भीष्म तेरा साथ न देगा।”

विकर्ण ने कहा—“आप भले ही यह सब कहें। किन्तु मुझे तो ऐसा लगता है कि आज आप पर बुढ़ापा छा गया है। यदि ऐसा न होता तो क्या हस्तिनापुर के सारे राज्य-सिंहासन पर और विवाहित जीवन के सारे सुखों पर लात मार देने वाला व्यक्ति आज स्थूल देह की सामान्य सुविधाओं पर लात नहीं मार सकता था। किन्तु बड़े भाई की चालाकी ने आपको अपने वश में कर लिया है इसलिए भले ही विचार और वाणी में आप चाहे जितना जोश दिखावें लेकिन आपका निश्चय इतना क्षीण हो गया है कि व्यवहारतः आप बड़े भाई को छोड़ नहीं सकेंगे। आप बड़े भाई की पोठ पर खड़े रहकर अपने कुल को बचाने की इच्छा रखते हैं मुझे तो यह स्पष्ट रूप में आपकी दुर्बलता प्रतीत होती है। हम नवयुवक तो यह सोचते हैं कि दुःशासन ने द्रौपदी का चर खाचा और आप वह देखते रहे, इसलिए आप भी चीर खींचने में भागी हुए। इसी तरह बड़े भाई जो-जो अधर्म करते हैं, उन सब में आप भा भागदार हैं। मैं तो यही समझता हूँ कि आपको इस भागोदारों में से अलग हट जाना चाहिए; लेकिन इस समय मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि आप उसमें से निकल नहीं सकेंगे।”

“इस तरह निकल भागने में कुल का कल्याण नहीं दिखता।” भीष्म ने कहा।

“मुझे तो इसी में कल्याण प्रतीत होता है।” विकर्ण ने कहा—“फिर भी आप विचार करके देखिये। आपने मेरी अज्ञा अधिक बाल पकाये हैं, इसलिए अपने विचार मैं अपने पास रखता हूँ। यदि ओर अधिक अनुभव से इनमें कोई भूल अनुभव हुई तो

उसे ठीक कर लूंगा। आज तो मुझे जैसा प्रतीत हुआ आपसे कह डाला है। इसमें यदि कोई अविनय हुआ हो तो क्षमा कीजिए।

“नहीं, भाई नहीं।” भीष्म ने कहा। “अविनय की क्या बात थी। तुम-जैसे सत्यभाषी व्यक्ति इससे भी अधिक कठोर बातें कहें तभी बूढ़े कानों में वह सहज ही उतर सकते हैं। मैं आज की तेरी बातों से खूब प्रसन्न हूँ। तेरे मन में जब भी जो विचार आयें मुझ से बराबर खुलकर कह सकता हूँ; जरा संकोच करने की आवश्यकता नहीं।

“पितामह ! आज तो आज्ञा चाहता हूँ। फिर किसी दिन आऊंगा” विकर्ण ने खड़े होते हुए कहा और भीष्म को विचार करते हुए छोड़कर चल दिया।

: ६ :

दुर्योधन को सीख

हस्तिनापुर का सभा-मण्डप खचाखच भर गया और समुद्र की उत्ताल तरंगों के समान लोगों के जोश को श्रीकृष्ण के समाधान कारक शब्दों ने कौरव-सभा को घड़ी-भर के लिए तो शान्त कर दिया। श्री कृष्ण के शब्दों का गर्म समझने वाले भीष्म तुरन्त ही खड़े हो गये और बोले—

“पुत्र दुर्योधन ! आज श्रीकृष्ण-जैसे महापुरुष अपने घर आकर समझौते की सलाह देते हैं इसे मैं अपने कुरु-कुल का अहो भाग्य समझता हूँ। और यहां एकत्रित क्षत्रिय वीरो ! वर्षों पूर्व राजसूय-यज्ञ के समय जो बात शिशुपाल से कही थी, वह आज आपसे भी कहना चाहता हूँ। इन श्रीकृष्ण के भी अपने समान दो हाथ और पैर हैं, इसलिए इन्हें भी अपने ही समान साधारण मनुष्य नहीं समझ लेना चाहिए। श्रीकृष्ण हमारे इस समय के युग-पुरुष हैं। जब-जब संसार में अन्धकार छा जाता है और

जनता दीन और पामर बनकर धर्म के मार्ग से विमुख हो जाती है, तब-तब हमारे बीच ऐसे युग-पुरुष जन्म लेते हैं और अन्धकार को दूर करके समाज को फिर से धर्म-मार्ग पर ले जाते हैं। मुझे तो यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि श्रीकृष्ण का जन्म विशेषकर इसीलिए हुआ है। श्रीकृष्ण वसुदेव और देवकी के पुत्र हैं, कंस के भानजे हैं, अर्जुन के मित्र हैं, सुभद्रा के भाई हैं, अपने कौरव-वंश के सम्बन्धी हैं, किन्तु इनकी सच्ची पहचान यही है कि ये आज के अपने युग-पुरुष हैं।

“आज श्रीकृष्ण पाण्डवों की ओर से सन्धि का सन्देश लेकर आये हैं। मैं यह जानता हूँ कि श्रीकृष्ण के निमित्त से अनेक शत्रु मारे गये हैं; स्वयं उनका मामा मारा गया यह बात सुप्रसिद्ध है; स्वयं यमराज को भी कुछ न समझने वाला शिशुपाल क्षण-भर में हुआ न हुआ हो गया, यह इन्हींका प्रताप है; संसार-भर के राजाओं को बन्दी बनाने वाले जरासन्ध को नीचा दिखाने वाले भी ये श्रीकृष्ण ही हैं। इन सब कामों में उनका एक-मात्र उद्देश्य संसार में शान्ति स्थापित करना था, और आज भी वह इसी उद्देश्य से हमारे पास आकर खड़े हुए हैं। अवसर आने पर वज्र से भी अधिक कठोर हृदय प्रतीत होने वाले इन कृष्ण का हृदय फूल से अधिक कोमल है। इसीलिए वह किसी भी उपाय से शान्ति चाहते हैं।

“श्रीकृष्ण ने अपनी बात हमारे सामने रखी उस समय आप सबके चेहरों पर से मुझे प्रतीत हुआ कि समझौता अवश्य हो जायगा और श्रीकृष्ण का प्रयत्न विफल नहीं होगा। इस खयाल से तो मेरे अन्तरतम में शान्ति पैदा हुई। किन्तु उसके बाद कर्ण और शकुनि के दुर्योधन के कान में घुस-पुस करने और दुर्योधन के चेहरे पर के अनेक प्रकार के भावों के उतर-चढ़ाव से मुझे ऐसा लगता है कि कौरवों का कल्याण अभी दूर है।

“और दुर्योधन ! तुझे मैं क्या कहूँ ? अभी तक तेरे सभी अधर्मा को मैं खुली आंखों देखता रहा हूँ और फिर भी मैंने तेरा साथ नहीं छोड़ा । मुझे आशा थी कि ‘दुर्योधन अब अपनी भूल को जरूर समझ लेगा और आज नहीं तो कल अवश्य सुधर जायगा’ और इस आशा के बल पर ही मैं तेरे साथ चिपटा रहा हूँ । किन्तु आज तेरी दुष्टता का वास्तविक चित्र मेरे सामने खड़ा है । दूसरे लोग मुझसे कहते थे, तो मैं मानता नहीं था । किन्तु स्वयं श्रीकृष्ण हम सबके भले की बात कहते हैं, उसमें भी जब तेरा सिर हिलता है और आंखें लाल पीली होती हैं तो तेरी दुष्टता कितनी गहरी है यह स्पष्ट दिखाई पड़ने लगता है ।

“दुर्योधन ! यह न समझना कि श्रीकृष्ण तेरी दुष्टता को समझते नहीं हैं, अथवा तेरे पिता के क्रोध को नहीं जानते या पाण्डवों के पराक्रम से अपरिचित हैं । आज संसार के चारों ओर फैली हुई काल-सागर की लहरों की गति को श्रीकृष्ण ने अच्छी तरह जान लिया है । इतने पर भी कौरव-वंश का विनाश एवम् क्षत्रिय-जाति का संहार रोकने के लिए, हस्तिनापुर की गद्दी पर रक्त के छींटे न पड़ने देंगे और हम सबके कल्याण के लिए, आर्यावर्त के कल्याण के लिए और शान्ति-स्थापन के लिए वह हमारे पास आये हैं । दुर्योधन ! आज श्रीकृष्ण को तेरे मानव-हृदय के प्रति विश्वास पैदा हुआ है; गांधारी के सत्य और कौरव-वंश की तपस्या के प्रति श्रद्धा जाग्रत हुई है । यदि हम सब अपनेको श्रीकृष्ण की इस श्रद्धा के योग्य सिद्ध किया तो संसार में शान्ति अवश्य स्थापित होगी ।

“दुर्योधन ! जिस प्रकार तेरे पिता विचित्रवीर्य के पुत्र हैं उसी तरह पाण्डु भी विचित्रवीर्य का पुत्र है; तू जितना गद्दी का अधिकारी है, बल्कि उससे भी अधिक युधिष्ठिर उसके अधिकारी हैं ।’ इतने पर भी तूने आज तक अनेक तरह के छल-कपट रच-

कर पाण्डवों को गद्दी से दूर ही रखा है, क्या तू समझता है कि यह बात कोई नहीं जानता । तूने पाण्डवों को मारने के अनेक पयत्न किये किन्तु वे मरे नहीं; तूने उन्हें परेशान करने में कोई कसर बाक़ी नहीं छोड़ी, फिर भी उन्होंने निर्भीकता के साथ सब परेशानियां सही, और आज भी यदि तूने उनको उचित बात को स्वीकार न किया तो संसार के न्यायालय तेरे विषय में क्या निर्णय देंगे, इसका भी तुझे कुछ खयाल है ?

“तुझे अपने शकुनि और कर्ण में बहुत अधिक विश्वास है । आज तक शकुनि तुझे जो रास्ता बताता रहा, उसी पर तू चलता रहा । लेकिन शकुनि कितना नोच और पतित है तुझे इसका भी कुछ पता है ? और तेरा यह कर्ण समय-असमय बकवाद करता रहता है; किन्तु उस जैसे कौए की बकवास कभी तेरे लिए फल-जनक हो नहीं सकेगी । दुर्योधन ! राजकुमारों के पास बचपन से ही ऐसे दुष्ट इकट्ठे होने लगते हैं और इसलिए उन बेचारों को सच्ची बात का पता ही नहीं चलता और अन्त में वे सीधे विनाश के गढ़े में जा गिरते हैं । दुर्योधन ! तेरा भा वही हाल हुआ है ।

“दुर्योधन ! तू अपने मन में यह समझता है कि भीष्म और द्रोण अपनी मदद पर खड़े हैं, तब डर किसका है ? लेकिन यह तेरी भूल है । विकर्ण जो बात कहता था, वह अब अधिक स्पष्टता से मेरी समझ में आ रही है । मैं अभी तक गूंगा बना हुआ तेरे सब अधर्मों का साथ देता आया हूं, इसलिए अब तो मैं तेरे लिए कदापि न लड़ूंगा । तू और तेरी चण्डाल चौकड़ी लड़कर देख ले, और तब लड़ा किस तरह जाता है इसका पता चलेगा । तेरा मामा एक कोने में बैठ बैठा जो उछल-कूद करता रहता है, उसे युद्ध के खुले मैदान में खड़ा कर, जिससे कि उसे भी पता चले । युद्ध के मैदान में चौपड़ की तरह खाली खिल-खिलाकर पासे नहीं

नहीं डाले जाते, वहां तो सिंह-शावकों का खेल है।

“किन्तु दुर्योधन ! घड़ी-भर के लिए यह भी जान ले कि मैं और द्रोण तेरे पक्ष में लड़े भी तो भी उससे होना क्या है ? क्या उससे तुझे विजय मिल जायगी ? इसकी कदापि आशा न रखना । हम तो अब पुराने ढांचे हो गये हैं; हमारी विद्या कितनी ही प्रबल होने पर भी वह पुरानी है; हमारे शस्त्रास्त्र कितने ही कारगर होने पर भी वे पुराने युग के हैं, हम चाहे जितने शूर-वीर हों तो भी बूढ़े हो गये हैं । और तुझे तो सर्वथा नौजवान अर्जुन के मुकाबले में लड़ना है; उसका रथ वरुण देव की अस्त्रशाला में आधुनिक रीति पर बना है; वर्तमान युग के महान् धनुर्विद्या विशारदों ने उसे मन्त्र विद्या की दीक्षा दी है; उसके धनुष और भाले का संसार में और कोई जोड़ नहीं है। और सबसे बढ़कर तो यह बात है कि उसके रथ पर श्रीकृष्ण सारथी बनकर बैठने वाले हैं । दुर्योधन ! मैं यह सब कह रहा हूं, इस पर तेरे साथी हंस रहे हैं । लेकिन यह याद रखना कि श्रीकृष्ण जिसके सारथी हों उन्हें जीतने के लिए संसार में कोई समर्थ नहीं है ।

“इसलिए दुर्योधन ! मेरा कहना है कि पांडवों के साथ समझौता करले और श्रीकृष्ण का आशीर्वाद प्राप्त कर । ऐसा करने पर पाण्डव तेरे मित्र बन जायंगे; उनकी मैत्री से तेरा राज्य-ध्वज अधिक शोभित होगा, और पांडव-कौरवों के एक हो जाने पर सारा संसार उनके चरणों में सिर झुकाने लगेगा । शकुनि और कर्ण ! तुम मेरी इस सलाह को स्वीकार करो और दुर्योधन को समझाओ । क्यों तुम अकारण ही हमारे सारे वंश का विनाश कराते हो ?

“महाराज धृतराष्ट्र ! आप इस विषय पर विचार करें । आपका यह पुत्र दुर्योधन आज समूचे कौरव-वंश का संहार

करने के लिए तुला खड़ा है, आप इसे रोकें। आप आज कौरव-वंश के प्रधान हैं; आपके लिए तो कौरव और पांडव एक समान होने चाहिए। पाण्डु के वन में मर जाने के बाद आप ही पांडवों के पिता बने थे, इतने पर भी पांडवों के साथ अन्याय किये जाने में आपने अपना सहयोग दिया, इससे आप इन्कार नहीं कर सकते। किंतु महाराज ! पाण्डव इन सब बातों को भुला देने की क्षमता रखते हैं। आज आप अपना बड़प्पन सिद्ध करें और पाण्डवों के साथ न्याय करें। महाराज धृतराष्ट्र ! अभी सन्धि करने का समय है। आज यदि सच बात न मानी और लड़ाई हुई तो आपने आज तक जिन-जिन कलि-कृत्यों को उत्तेजन दिया है उन सबका फल जब आपको भुगतना पड़ेगा तब बहुत कठिन प्रतीत होगा और उस समय तक इस बूढ़े के वचन आपको याद आवेंगे। धृतराष्ट्र ! आज आप दुर्योधन से यह बात सर्वथा स्पष्ट रूप से कह दें, और यदि वह न माने तो आज ही उसका त्याग कर दें। जन्म के समय से ही उसका त्याग कर दिया होता तो आज यह अवसर न आता। लेकिन अभी भी त्याग किया जा सकता है। धृतराष्ट्र ! आप जानते हैं कि महाराज शान्तनु और माता सत्यवती को अपनी वंश-बेलि को हरी-भरी रखने की कितनी ममता थी ? क्या आप नहीं समझते कि आप उसी कौरव-वंश को विनाश के पथ पर ले जा रहे हैं ?

“दुर्योधन ! युद्ध करके पाण्डवों को जीतने की तू आशा करता है; किन्तु याद रख, युद्ध में तुझे कुछ भी हाथ नहीं लगने वाला है। किसी की भी मां ने अभी तक ऐसा पुत्र नहीं जना है, जो युद्ध में अर्जुन को परास्त कर सके। इसलिए अब भी समझ जा, और लड़कपन छोड़ दे। पाण्डवों को उनकी मांग के अनुसार उनका भाग दे दे, और युद्ध के रक्तपात से अपने वंश को ही नहीं, प्रत्युत सारे मानव-समाज की रक्षा कर। दुर्योधन !

गांधारी के पुत्र ! मेरी बात मानकर पाण्डवों के साथ सन्धि करके और तुम एक सौ और पांच मिलकर समस्त संसार को शांति का पाठ पढ़ाओ ।”

: ७ :

सेनापति के पद पर

“महाराज ! आपने मेरी सब आशाओं को धूल में मिला दिया है । आपके और द्रोणाचार्य के बल पर ही तो मैंने यह युद्ध छेड़ा है ।” दुर्योधन ने निराश होते हुए कहा ।

“तू युद्ध क्यों न छोड़े ? पर मैंने तो श्रीकृष्ण के आने पर जो सभा हुई थी उसी में साफ तौर पर सुनाकर कह दिया था तू अनेक स्याह-सफेद करके लड़ाइयां मोल लेता फिर और फिर मुझे उनमें तेरी ओर से लड़ना पड़े यह भी कोई न्याय है ? ऐसे अधर्म युद्ध में मैं अब भाग लेने वाला नहीं ” भीष्म ने आवेश में कहा ।

“पितामह ! आज अब मैं समझ रहा हूं । शकुनि और कर्ण वर्षों से मुझसे कहते आ रहे थे कि यह पितामह ऊपर-ऊपर से तो तेरे दिखाई देते हैं, किन्तु अन्दर से वे पाण्डवों के हैं, और ठीक समय पर तुझे धोखा देने वाले हैं । अभी तक मैं उनकी बात नहीं मान रहा था, लेकिन आज मेरी आंखें खुली हैं । अब मैं समझ रहा हूं कि आज तक भी मैंने जो आपका पोषण किया वह केवल पाण्डवों का हित करने के लिए ही था ।” दुर्योधन ने निश्वास छोड़ते हुए कहा ।

“दुर्योधन । ऐसा न कह ।” भीष्म ने कहा “आज तक तो मैंने पाण्डवों का हित कभी किया नहीं । जब-तब मैं तेरे लिए ही तड़ा हूं, और अनेक अवसरों पर तूने पाण्डवों को परेशान किया अब भी मैंने तेरा पक्ष नहीं छोड़ा ।”

“यह आपकी मुझ पर कृपा हुई । किन्तु आज आन-बान के

मौके पर आप पाण्डवों के पक्ष में जा रहे हैं इसलिए मुझे ऐसा लगा ।” दुर्योधन ने कहा ।

“मैं उनके पक्ष में भी जाने वाला नहीं हूँ । मैं तो जीवन के किनारे पर खड़ा-खड़ा तुम्हारा युद्ध देखूंगा, और ईश्वर मृत्यु को भेजेंगे तब उसका स्वागत करूंगा । मन में तो यह आता है कि कुल का विनाश देखने के लिए जान की अपेक्षा आत्म-घात करके मर जाऊँ तो अच्छा; किन्तु यह पाप करने के लिए हृदय साथ नहीं देता । आज तक मैंने सारे परिवार के प्रति ममता चाहता हूँ कि बढ़ाई इसलिए ईश्वर मुझे उसका विनाश न दिखाये ! तू जा, और यह निश्चय रख कि मैं पाण्डवों की ओर नहीं जाऊंगा ।” भीष्म ने कहा ।

“नहीं, नहीं, इसकी अपेक्षा तो यह अच्छा है कि आप पाण्डवों की ओर से युद्ध करें, जिससे कि दुनिया भी देख ले” दुर्योधन बोला ।

“दुर्योधन ! यदि मैं पाण्डवों की ओर से लड़ा तो तेरा एक भी योद्धा जीवित न रह पायगा ।” भीष्म ने कुछ आवेश से कहा ।

दुर्योधन ने भीष्म की बात पकड़ ली और बोला—“योद्धा की बात जाने दीजिए, मैं तो समझता हूँ कि एक भी कौरव जीवित न रहेगा । किन्तु पितामह ! आपके हाथों मौत कहां मिलने वाली है । आपके हाथों युद्ध-क्षेत्र में सोने को मिले तब तो जीवन सफल हो जाय । ऐसे सद्भाग्य कहां से आये ? किन्तु पितामह ! अब तो युद्ध तक पहुँचने की ही कुछ आवश्यकता नहीं । यह रही मेरी तलवार । अपने ही पवित्र हाथों में यह तलवार मेरी गरदन पर चलाइये जिससे कि सब काम पूरा हो जाय । इसके बाद आप प्रसन्नता पूर्वक पाण्डवों के साथ समझौता कर लें । समझौते के मार्ग में अकेला मैं ही तो बाधक हूँ, उसे दूर कर

बीजिए, इससे अपना वंश भी बच जायगा और क्षत्रियों का संहार भी रुक जायगा। यह तलवार लीजिए और मुझे मारकर मेरे ही रक्त से आप महाराज युधिष्ठिर का राजतिलक कर सकते हैं और उनके सिर पर मुकुट धारण करा सकते हैं।”

“चिरञ्जीव ! मैं और अपने हाथों से इस प्रकार तेरी अकाल मृत्यु का साधन बनूँ !” सजल नेत्रों से भीष्म ने कहा।

“इसमें अकाल मृत्यु कहां हुई ? आपने खुद ने ही तो सभा में कहा था कि मेरा काल मुझे बुला रहा है। मेरे जाने के बाद आप कहेंगे कि पाण्डव मेरे भाइयों को जीवित मार डालें अथवा वन में हांक दें; पाञ्चाली के बाल पकड़े जाते आपने देखा है इसलिए उसके प्रायश्चित्त स्वरूप युधिष्ठिर को भानुमति की चोटी पकड़कर खींचने की सलाह दें, तो मेरे जी को शान्ति मिलेगी।” दुर्योधन ने कहा।

दुर्योधन के इन व्यंग-बाणों से भीष्म घबरा-से गये और कहने लगे “बेटा दुर्योधन ! ऐसी बातें कहकर व्यर्थ ही मुझे क्यों दुःखी करता है ?”

“इसीलिए तो आपको दुःखी करने वाला इस संसार से विदा होने की इजाजत चाहता है, और आपको सुखी करने वाले युधिष्ठिर के लिए जगह खाली करना चाहता है।” दुर्योधन ने कहा।

“दुर्योधन ! इस तरह के वाक्-बाण चला-चलाकर मुझ बूढ़े के हृदय में घाव क्यों कर रहा है ? जरा तो खयाल कर !” भीष्म ने और भी अधिक दुःखित हृदय से कहा।

दुर्योधन आंसू टपकाता हुआ बोला “पितामह ! खयाल क्या करूँ ? सच बात तो यह है कि इस युद्ध में आपके लड़े बिना काम चल नहीं सकता। सौ बात की एक बात यह है कि आपको पसन्द हो तो और न हो तो भी आपको लड़ना है। आप ही के

विश्वास पर तो ग्यारह अक्षौहिण सेना मृत्यु का आलिङ्गन करने के लिए सजी हुई है। क्या यह सेना मुझे देखकर आई है? ये लोग तो कौरव-कुल के वृद्ध पितामह के सफेद बाल देखकर आये हैं, और आपके साथ जानते हैं धनुर्धर द्रोण को! कुछ भी हो आपको लड़ना ही पड़ेगा।”

“मेरी इच्छा के बिना मुझसे लड़ा कैसे जायगा? मुझे तो इसमें स्पष्ट रूप से तेरा अधर्म प्रतीत होता है।” भीष्म ने कहा।

“इस धर्माधर्म का निर्णय तो युद्ध समाप्त होने के बाद हम दोनों मिलकर कर लेंगे। आज तो धनुष हाथ में लेकर टंकार कीजिये जिससे शत्रुओं के हृदय दहल उठें।” दुर्योधन ने जरा मुस्कराते हुए कहा।

“दुर्योधन! मैंने पहले ही तुझसे कहा था कि यह युद्ध मोल लेना ठीक नहीं। किन्तु तू माना नहीं।” भीष्म ने फिर कहा।

“पितामह! मैं जानता हूँ कि उस सभा में मैंने आपका कहना नहीं माना इससे आपको रोष हुआ है और उस रोष के कारण ही आप युद्ध से अलग रहना चाहते हैं।” दुर्योधन ने जरा आवेशमें आकर कहा—“किन्तु पितामह! इस तरह आप और मैं जुदा किस तरह हो सकते हैं? चाहे जैसा भी होगा, मैं हूँ तो आपका ही बालक। मैं शरारत करूँ, आपकी मूर्ख पकड़कर खींचूँ, जो मन में आवे कह उठूँ, आपको सब सहन करना ही होगा। आपका आदेश न मानूँ तो आप मेरे चपत लगाकर मुझे नीचे बिठा सकते हैं; लेकिन आप मेरा त्याग नहीं कर सकते। मैं छोटा हूँ इसलिए बछड़ा बनकर भी छूट जाऊँगा, लेकिन आप छोड़ नहीं सकेंगे। लोग भी यही कहेंगे कि दुर्योधन को तो अकल नहीं थो, लेकिन उस बूढ़े को शरम न आई! इसलिए आप तैयार हों और सारो कौरव-सेना का नेतृत्व हाथ में लें।”

“दुर्योधन! मैं बूढ़ा आदमी, इतनी बड़ी सेना को किस तरह

संभाल सकूंगा ?” भीष्म ने जवाब दिया ।

“पितामह ! यह सोचने का काम आप मुझ पर छोड़ दें ।”
दुर्योधन ने कहा । “इतने वर्षों तक मैं गद्दीपर बैठ चुका हूँ इसलिए
किसको बूढ़ा और किसे जवान समझा जाय, कम-से-कम इतना
तो सीख ही गया हूँ । आप तो केवल मुझे अपनी स्वीकृति
दीजिए ।”

“दुर्योधन ! मन तो अभी भी यही कहता है कि मुझे इम
युद्ध में भाग नहीं लेना चाहिए” भीष्म ने धीमे स्वर में कहा ।

“आपका मन आज जरा कुछ ऐसा ही हो गया है । मैं अब
आपसे आज्ञा लेता हूँ । अपने को आज शाम को कूच करना है;
मैं गुरु द्रोणाचार्य के पास जाकर उन्हें भी आपका नाम लेकर
तयार करता हूँ ।” यह कहता हुआ दुर्योधन उठने लगा ।

“इसमें मेरा नाम लेने का क्या प्रश्न ? राजा तो तू है ।
दुर्योधन ! अन्त में मैं तुझसे हारा !” भीष्म ने कहा ।

“दादा पोते से हारे तो क्या इसमें दादा की शोभा नहीं है ?”
दुर्योधन ने हंसते हुए कहा और बिदा हुआ । और अकेले बैठे हुए
भीष्म पितामह के मन में कुरुक्षेत्र की व्यूह-रचना मिर
उठाने लगी ।

: ८ :

युधिष्ठिर को आशीर्वाद

कुरुक्षेत्र के मैदान पर सेनाएं एकात्रित थीं । पाण्डवों और
कौरवों के पड़ावों में मनुष्य, हाथी, घोड़े, रथ, और गाड़ियों आदि
का जमघट लगा हुआ था । भारतवर्ष के राजा महाराजा, मानो
प्रातः होते ही जीवन सार्थक होने वाला हो, इस प्रकार सूर्योदय
की प्रतीक्षा कर रहे थे ।

इतने में ही सन्ध्या-काल आया । भगवान् भुवन भास्कर दोनों

छावणियों के मैदान पर एक लम्बी नजर डालते हुए दूसरी दुनिया की तरफ सिधार गये। सारी कौरव-सेना युद्ध के लिए उतावली हो रही थी। कौरव सेना के ठीक मध्य में भीष्म पितामह का बड़ा आलीशान तम्बू (खेमा) खड़ा किया गया था। तम्बू के बीच के कमरे में आठ-नौ बजे के लगभग पितामह ज़रा पैर फैलाकर लेटे हुए थे। उसी समय एक नौकर ने आकर कहा “पितामह ! महाराज युधिष्ठिर आये और बाहर खड़े हैं। वे आपसे मिलने की आज्ञा चाहते हैं।”

भीष्म खड़े होगये और बोले—“युधिष्ठिर को भी मिलने की आज्ञा मांगने की आवश्यकता है ?”

“भला इतनी रात गये आने का क्या कारण हो सकता है ?” पितामह इसी विचार में पड़े थे कि इतने ही में युधिष्ठिर ने पहुंच कर उनके चरणों में सिर नवाया।

“युधिष्ठिर, युधिष्ठिर ! यह क्या करता है भीष्म ने युधिष्ठिर की ओर झुकते हुए कहा।

“पितामह के चरणों में बालक युधिष्ठिर शीश नवाता है।” युधिष्ठिर ने नम्रता पूर्वक उत्तर दिया।

भीष्म ने युधिष्ठिर का मस्तक चूमा और बोले “उठ बेटा युधिष्ठिर ! इतनी रात गये कैसे आये ?”

“पितामह ! प्रातः काल से युद्ध आरम्भ होने वाला है अतः आपको अभिवादन करने और आपका आशीर्वाद लेने आया हूं।” एक ओर बैठते हुए युधिष्ठिर ने जवाब दिया।

“मेरा आशीर्वाद ?” भीष्म ने जरा शरीर को स्वस्थ करते हुए कहा। “भीष्म के आशीर्वाद तो आजकल निस्तेज हो गये हैं। वैसे भी तुम्हें तो ईश्वर का आशीर्वाद है ही। फिर भी तू आया यह अच्छा ही किया। सच्ची बात तो यह है कि यदि तू न आता तो मुझे बुरा लगता।”

युधिष्ठिर ने जवाब दिया—“मेरे मन में हुआ कि कल का किसे पता है; कौन जाने इस प्राणघाती युद्ध में मैं समाप्त हो जाऊँ अतः उससे पहले ही पितामह को प्रणाम कर आना अच्छा है। यहां से मैं गुरु द्रोणाचार्य के पास भी जाने वाला हूँ। प्रातः-काल से तो आप संहार-कार्य में लग जायेंगे, उस दशा में कौन बाकी बचने वाला है।”

“युधिष्ठिर ! ऐसा न कह।” भीष्म ने कहा।

“यह न कहूँ तो क्या कहूँ ? इतने वर्ष जंगलों में भटक कर बिताये; अब कल पांचों भाई कुरुक्षेत्र के मैदान में लम्बी तान-कर सोयेंगे, और बस काम समाप्त।” युधिष्ठिर ने कहा।

“बेटा ! इतना दीन क्यों होता है ?” भीष्म बोले।

“भीष्म के सामने तो संसार-भर का चात्र तेज क्षीण होजाता है, उसमें मेरी तो बिसात ही क्या है ? हम पांचों भाई तो अपने मिर आपको सौंपकर मैदान में सोने के लिए आये हैं।” युधिष्ठिर ने कहा।

“युधिष्ठिर ! यह तेरी भूल है।” भीष्म पितामह बोले। “यदि कोई मनुष्य यह मानता हो कि युद्ध के अन्त में दुर्योधन विजयी होगा तो वह भूल करता है। युद्ध के अन्त में विजय तो युधिष्ठिर तेरी ही है।”

“पितामह ! मुझे बालक समझकर बहका तो नहीं रहे हैं ?”

“युधिष्ठिर ! आज मैं तुम्हें बहका सकता हूँ, किन्तु विश्व की नियामक सत्ता को तो कोई बहका नहीं सकता। आज दुर्योधन मेरे और द्रोण के बल पर कितना हो कूदता हो, किन्तु उसे पता नहीं है कि अर्जुन के सपाटे में हमारी कोई गिनती न होगी।” भीष्म ने जोर देते हुए कहा।

“पितामह ! आप ऐसी बात कहते हैं, वह मानी कैसे जा सकती है ?” हाथ जोड़ते हुए युधिष्ठिर ने कहा।

“कैसे मानी जा सकती है ? तो क्या मैं झूठ बोलता हूँ ?” भीष्म ने मानो आवेश के-से स्वर में कहा—“अर्जुन के रथ पर कौन बैठने वाला है इसका भी कुछ खयाल है ? यह तो अर्जुन का रथ है; वैसे किसी साधारण व्यक्ति का रथ होने पर भी यदि उसके घोड़ों की बागडोर श्रीकृष्ण के हाथ में हो तो इस संसार में उसे पराजित करने वाला मुझे तो कोई दिखाई नहीं देता । मैं कितना ही बलवान होऊँ और द्रोण भी कितने ही शक्तिशाली हों, किन्तु यह सारा बल एक क्षण में क्षीण हो जाने वाला है, जबकि अर्जुन का बल युद्ध के अन्त तक कायम रहने वाला है । युधिष्ठिर ! तुमसे क्या कहूँ ? मैं तो इस युद्ध में आना ही नहीं चाहता था; किन्तु दुर्योधन बहुत पीछे पड़ा इसलिए आना पड़ा है ।”

“इसीलिए तो मुझे भय है ।” युधिष्ठिर ने जवाब देते हुए कहा । “आप मन में निश्चय कर ले तो आप अकेले ही आधे दिन में हम सबका कचूमर निकाल देने में समर्थ हैं ।”

“कोई दिन ऐसा रहा होगा, किन्तु आज वह बात नहीं है ।” भीष्म ने जवाब में कहा । “आज तो धनुष-बाण हाथ में लेने का अवसर आने पर भी यह खयाल कि मैं ‘अधर्म के पक्ष में हूँ’ मेरा पीछा छोड़ने वाला नहीं है, इसलिए शक्ति-भर बल लगाने पर भी धनुष की प्रत्यञ्चा ढीली ही रहेगी । युधिष्ठिर ! चिन्ता की ज़रा भी आवश्यकता नहीं है । विजय तुम लोगों की ही है ।”

युधिष्ठिर बोले—“पितामह ! अर्जुन तो आज सुबह से ही ढीला पड़ गया है । आपके और आचार्य द्रोण के मुक्तावले में कैसे लड़ा जा सकेगा, इसकी कल्पना ने ही उसे मूढ़ बना दिया है ।”

भीष्म ने कहा—“युधिष्ठिर ! अपने अर्जुन से कहना कि मुझपर बाण चलाने में ज़रा भी सङ्कोच न करे ।

युधिष्ठिर ! तू समझदार है इसलिए तुझसे कहता हूँ। मैं और द्रोण आज खोखले हो गये हैं। समय की गति को देखकर मुझे प्रतीत होता है कि हमारे अब संसार से विदा होने का समय आ पहुँचा और अर्जुन नवीन तेज का वाहक है अतः उसके हाथ से मेरी मृत्यु हो तो इसे मैं अपना अहोभाग्य समझूँगा।”

युधिष्ठिर ने कहा—“आप यह क्या कहते हैं ? आपका एक ही बाण हम सबको छेद डालने में समर्थ है।”

भीष्म—“युधिष्ठिर ! ऐसा न समझो। हमारे दिन अब अस्त की ओर हैं। मैं तो कभी का जान गया हूँ कि इस युद्ध में हमारी मृत्यु है। तू जरा भी चिन्ता न कर। श्रोकृष्ण और अर्जुन संसार में नया प्रकाश और नया युग लाने वाले हैं; उनके मुकाबले में हम कोई भी टिकने वाले नहीं हैं इसका तू निश्चय रख अच्छा अब तू जा, तुझे कल की व्यवस्था करना होगी। हाँ, एक बात का ध्यान रखना। वह यह कि सब कुछ श्रीकृष्ण और अर्जुन को सौंप देना। इनके हाथों हम सब की पराजय है और इनके हाथों ही नवीन युग का जन्म होगा। जा, चिरञ्जीव, जा। ईश्वर तेरा कल्याण करे।”

भीष्म के इतना कहने पर युधिष्ठिर ने फिर उनके चरणों में सिर रखा और बिदा लो।

: ६ :

कुरुक्षेत्र का दसवां दिन

कुरुक्षेत्र के मैदान पर आज पाण्डव-कौरवों की वैराग्नि फूट निकली थी। कहते हैं कि पृथ्वी पर जब कोई ज्वालामुखी फटता है तो उससे पहले पृथ्वी के गर्भ में अनेक वर्षों से गर्म उबलते हुए रस इकट्ठे होते रहते हैं, और अन्त में यह उबलते हुए रस पृथ्वी के पेट को चीरते हुए अपने निकलने का मार्ग ढूँढ़ निकालते

हैं। पृथ्वी के गर्भ का हाल जानने वाले विशेषज्ञ इस प्रकार ज्वालामुखी के फटने का अवसर आने पर पहले से ही उसके चिह्न पहचान जाते हैं और आसपास के लोगों को उसकी चेतावनी भी दे देते हैं। आर्यावर्त में वर्षों से इस प्रकार ज्वालामुखी के फटने की तैयारियां हो रही थीं, और मानव-समाज के अन्तर्गत को पहचानने वाले व्यास जैसे क्रान्तिदर्शी गर्म उबलते हुए रसों को कभी का देख चुके थे।

युद्ध को आरम्भ हुए आज दसवां दिन था। पिछले नौ दिनों में कितने ही वार वालकों को पितृ-विहीन करके चलते बने; पिछली नौ रातों में कितनी ही अबलाओं ने अपने निरे आंसुओं से पृथ्वी को भिगो दिया; इन नौ दिनों के बीच मानवों के आर्तनाद से पृथ्वी आर आकाश में कितनी ही दरारें पड़ीं, और आर्यावर्त का आधा क्षत्रिय समाज लगभग समाप्त होगया।

और इन नौ दिनों के घोर युद्ध के बाद भी जय-पराजय का पलड़ा किसी भी ओर झुकने का नाम नहीं लेता; 'दुर्योधन अथवा युधिष्ठिर' इसका निर्णय अभी अधर में ही लटका हुआ है; दोनों ओर ऐसी रस्साकशी हो रहा है कि परिणाम स्थिर होकर खड़ा ताक रहा है।

इतने ही में दसवां दिन निकल आया। दसवें दिन का यह प्रभात क्या सन्देश लेकर आया है ?

दुर्योधन घबरा उठा। उसने हिसाब लगा रखा था कि भीष्म पितामह सङ्कल्प करें तो आधे दिन में ही सारी पाण्डव-सेना का सहार कर डालेंगे; वही पितामह आरम्भ से ही मन लगाकर लड़ नहीं रहे हैं, यह शंका उसे होगई थी; उन्होंने पाण्डव-सेना में महानाश का दृश्य खड़ा कर दिया और श्रीकृष्ण जैसों को प्रतिज्ञा के विरुद्ध हाथ में चक्र लेने के लिए विवश कर दिया, इतने पर भी दुर्योधन की शंका दूर नहीं हुई और इसलिए पिता-

मह मेरे पक्ष में रहते हुए भी पाण्डवों के हित का ध्यान रखते हैं, इस प्रकार के मर्म भेदी वाक्य कह-कहकर उसने भीष्म के हृदय में घाव किये; और आज इस प्रकार के घावों से आहत भीष्म फिर से कौरव-सेना के मोरचे पर आकर खड़े हो गये।

भीष्म ठहरे गंगामाता के पुत्र। गंगा मैया की गोद में खेलते-खेलते उन्होंने धनुर्विद्या सीखी; परशुराम जैसे गुरु से उन्होंने दीक्षा प्राप्त की। घर-गृहस्थी की भंभटों से मुक्त रहने के कारण छोटी-छोटी बातों में उन्होंने अपनी शक्ति बरबाद नहीं कर डाली थी; कौरव-वंश की बेल को कायम रखने के मनोरथ से बुढ़ापे की अवस्था में भी आज उन्होंने शस्त्र धारण किया था; सारी पाण्डव-सेना में अकेले एक अर्जुन को छोड़कर दूसरा एक भी ऐसा योद्धा मिलना कठिन था, जो उनके मुक्ताबिले में टिक सकता। इन्हीं भीष्म ने सेना के आगे आकर ललकारते हुए कहा—“अर्जुन ! आ जा सामने और संभाल ले अपना धनुष-बाण !”

भीष्म की ललकार सुनते ही कुन्ती-सुत अर्जुन उछल पड़ा। वर्षा-काल के बादलों की गर्जना सुनते ही बांसों उछाल मारने वाले सिंह-शावक के समान अर्जुन का हृदय उछलने लगा और उसके हाथ एकदम गाण्डीव पर जा पहुंचे। उसका सारा शरीर उतावला हो गया; उसकी आंखें अकेले भीष्म को ही दूँढने लगीं और वह बोल उठा “सखा श्रीकृष्ण ! भीष्म कहां है ? मेरा रथ उन्हीं के पास ले चलो।”

रथ के घोड़ों की लगाम सम्भालते हुए श्रीकृष्ण ने कहा—“अर्जुन ! देखा पितामह को ? आज के भीष्म कुछ और ही दिखाई देते हैं नित्य प्रति तो पहले सामने आते थे, फिर तेरे बाणों के चरण छूने पर उन्हें सिरपर रख तुझे आशोर्वाद देते थे और फिर युद्ध आरम्भ होता था; किन्तु आज इन्होंने इन विधि-विधानों को छोड़कर युद्ध के लिए सीधा आह्वान ही किया, इसलिए आज का

रंग-ढंग कुछ और ही प्रतीत होता है ।

श्रीकृष्ण रथ को आगे बढ़ाते हुए यह कह ही रहे थे कि इतने में तो पाण्डव-सेना के योद्धा, हाथी, रथ, घोड़े और सारथि सब धड़ाधड़ धराशायी होने लगे । भीष्म के प्रखर ताप में किसी जंगल में लोग भारी दावानल से जलकर नष्ट होते हुए वृक्षों के समान पाण्डव-योद्धा नष्ट होने लगे । इससे युधिष्ठिर को यह प्रतीत होने लगा कि यदि संहार-कार्य इसी तरह चलता रहा तो शाम होते-होते पाण्डवों का अस्तित्व मिट जायगा ।

इतने में ही भीष्म ने फिर ललकारा—“अर्जुन ! इस ओर, इस ओर । मुझ पर चारों ओर से बाणों की वर्षा हो रही है, किन्तु तेरे बाणों से बिंधने का आनन्द मुझे अभी नहीं मिल रहा है ।”

इसी बीच श्रीकृष्ण ने अर्जुन का रथ ठीक भीष्म के सामने ले जाकर खड़ा कर दिया और अर्जुन ने गाण्डीव की टंकार कर बाण छोड़ना शुरू कर दिया । इसके जवाब में भीष्म ने प्रलय-काल के सूर्य के समान इस तेजी के साथ अर्जुन पर बाणों की झड़ी लगाई कि अर्जुन इस सोच में पड़ गया कि ये भीष्म हैं अथवा साक्षात् काल; और गाण्डीव से ऐसे तीक्ष्ण बाण छोड़ने शुरू किये कि भीष्म का सारा शरीर चलनी होने लगा ।

इतने पर भी अर्जुन का हाथ ढीला पड़ता देखकर श्रीकृष्ण से न रहा गया और कहने लगे—“अर्जुन, ऐसे ढीले-ढाले हाथों से हस्तिनापुर का शासन किस तरह चलेगा ? तेरे इन पितामह ने दो बार तो मेरी प्रतिज्ञा तुड़वाई और मुझे सुदर्शन चक्र सम्भालना पड़ा । आज सावधान हो जाओ, नहीं तो यह सारी सेना मारी जायगी ।”

अर्जुन ने उत्तर देते हुए कहा—“सखा ! प्रयत्न तो बहुत करता हूँ, किन्तु पता नहीं क्यों, भीष्म को देखते ही हाथ ढीला पड़ जाता है !”

श्रीकृष्ण ने जरा जोर से कहा—“अर्जुन ! इस तरह काम नहीं चलने का । यह शिखण्डी जो मौजूद है । एक ओर यह अपना रथ लाकर भीष्म पर बाण चलावे और दूसरी ओर से तू चला । और दोनों मिलकर भीष्म को अच्छी तरह से दिखा दो कि पाण्डव भी लड़ना जानते हैं ।”

अर्जुन और शिखण्डी दोनों ने मिलकर भीष्म पर बाणों की वर्षा शुरू की । इससे भीष्म घबरा गये और कहने लगे — “अर्जुन ! यह अच्छी तरह समझ रख कि कौनसा बाण शिखण्डी के धनुष पर चढ़कर आता है, और कौनसा अर्जुन के गाण्डीव में से निकलकर आता है, यह मैं खूब पहचान सकता हूँ । अर्जुन ! जरा सोच तो सही कि यह बिचारा शिखण्डी क्या देख कर मुझ पर बाण चलाता होगा ! गाड़ी के नीचे चलने वाला कुत्ता अपने मन में यही समझता है कि गाड़ी मैं ही चला रहा हूँ । लेकिन यह तो शिखण्डी है ! आज यह पुरुष है, लेकिन किसी समय यह स्त्री था । उसके मुकाबले में प्रहार न करने का मेरा सङ्कल्प है; किन्तु अर्जुन, इसके पीछे से तेरे जो बाण छूटते हैं वे मुझे छेदते हैं, उनका मिठास मैं अनुभव करता हूँ । अतः तू संकोच न कर और अपने बाण चलाये जा । आज मेरा अन्तिम दिन है । मेरी आत्मा इस चोले को छोड़ने के लिए तड़फड़ा रही है ।”

यह कहते-कहते भीष्म हाथ से शस्त्र छोड़कर बैठ गये और अर्जुन के बाणों की मार सहने लगे । अर्जुन ने बौछार जारी रखी । सूर्यास्त होने तक भीष्म का सारा शरीर चलनी होगया । और वह रथ से नीचे आ गिरे ।

भीष्म के धराशायी होने का समाचार दोनों सेनाओं में बिजली की तरह फैल गया और युद्ध अपने-आप बन्द होगया । अर्जुन, श्रीकृष्ण, युधिष्ठिर, द्रोण, दुर्योधन, भीष्म तथा कृपाचार्य

आदि सब उन्हें घेरकर खड़े हो गये। अर्जुन खिन्न चित्त से एक ओर खड़ा था। अतः भीष्म ने अपना सिर उठाकर उसकी ओर देखते हुए कहा—“बेटा अर्जुन ! खिन्न होने की आवश्यकता नहीं है। नवयुवकों के हाथ मृत्यु पाने का सौभाग्य बहुत कम बूढ़ों को मिल पाता है। मेरा जीवन आज सफल हो गया है।”

“पितामह ! जिनकी गोद में मैं बड़ा हुआ हूँ, उन्हीं को आज मैंने अपने हाथों से मारा !” अर्जुन ने दीन स्वर में कहा।

“बेटा अर्जुन ! तू भूलता है,” भीष्म ने शान्ति के साथ जवाब देते हुए कहा। “हम बूढ़े लोग गोद खिलाने के बहाने सदा ही नौजवानों के मार्ग में आड़े आते रहें तो हमें धक्के देकर आगे बढ़ने का तुम नौजवानों को पूरा अधिकार है। आज तेरे जैसे नौजवान को मेरे प्रति दया दर्शाने के बजाय मुझे मारकर समाज रूपी खेत में मेरे शरीर का खाद बनाकर डाल देना चाहिए। कल तू बूढ़ा होगा तब नौजवान पीढ़ी नव संस्कृति की खेती में तेरा भी खाद के रूप में उपयोग करेगा। मानव-समाज के कल्याण का यही मार्ग है। मेरे जैसे बूढ़े अन्तिम घड़ी तक दूर न खिसकें तो अन्त में उन्हें दूर करके ही छुटकारा मिल सकता है।”

“किन्तु पितामह ! आप तो हमारे वंश के स्तम्भ हैं।” अर्जुन ने आंसू टपकाते हुए कहा।

“इसीलिए तो, जब स्तंभ गलकर सड़ जाता है तो उसे बदल कर वहाँ नया स्तंभ लगा देना चाहिए।” भीष्म ने कहा। “अर्जुन ! आज मैं तेरे जैसे नवयुवक के प्रहार प्रसन्नता-पूर्वक सह कर धराशायी हुआ हूँ। इसलिए मुझ-जैसा कोई भाग्यवान नहीं है। अब मेरी पीढ़ी बढ़ रही है। तुम जरा हट जाओ। दुर्योधन कहाँ है ?”

“पितामह ! यह रहा ।” कहता हुआ, दुर्योधन सामने आया और बोला, “पितामह ! आपको छावनी में ले चलकर सारे बाण निकलवाने की व्यवस्था करता हूँ ।”

“दुर्योधन ! ये सब व्यर्थ के झगड़े हैं । अब भीष्म की आशा छोड़ दे । मैं आज नहीं मरने वाला हूँ । प्रत्युत जबतक सूर्य की दिशा बदल नहीं जाती, इसी बाण-शैया पर ही रहूंगा ।” भीष्म ने कहा ।

“बाण-शैया पर !” दुर्योधन ने आश्चर्य-चकित हो कहा ।

“हां, बाण-शैया पर ।” भीष्म ने कहा । “कुरुक्षेत्र के एक कोने में पड़ा-पड़ा मैं सारे कुल का विनाश अपनी आंखों देखता रहूंगा, तभी मेरे मोह का प्रायश्चित्त होगा ।

“किन्तु इन बाणों की पीड़ा कितनी असह्य होगी ?” दुर्योधन ने कहा ।

भीष्म ने आंखें ऊंची करके दुर्योधन के सामने नजर गड़ाते हुए कहा—“मनुष्य तो अपने जन्म समय से ही बाण-शैया पर सोता आया है । क्या तू समझता है कि अभी तक जीवन में भोगी हुई बाण-शैया की अपेक्षा यह बाण-शैया अधिक कष्टकर है ? यदि ऐसा है तो तेरी भूल है । यदि मनुष्य नित्यप्रति हृदय में चुभोये जाने वाले बाणों का हिसाब लगाये तो ये बाण तो उसके मुकाबले में किसी गिनती में नहीं हैं । किन्तु बेचारा मनुष्य भुलक्कड़ है । इसलिए सारे दुःख भूल जाता है और जरा सुख मिलते ही फिर से आशा कर जीने लगता है । दुर्योधन ! युधिष्ठिर कहां है ?”

“यह रहा, पितामह !” युधिष्ठिर ने जवाब दिया ।

“तुम लड़ चुको तो उसके बाद मेरे पास आना । गंगा माता ने मुझ में आर्य संस्कृति के जो कुछ संस्कार भरे हैं वह तुम्हें सौंपे बिना मेरी देह छूटने वाली नहीं है । अब तुम सब जाओ और लड़कर अपने बल की परीक्षा कर लो । पीछे जो बाकी बचो, मेरे पास आ जाना ।”

यह कहकर भोष्म ने बोलना बन्द किया और सब अपने-अपने काम में लग गये ।

: १० :

पितामह बाण-शैया पर

महाभारत का युद्ध समाप्त हुआ । भरी सभा में पांचाली का चीर ग्रीचने वाले दुःशासन को अन्त में मृत्यु-शैया पर सोना पड़ा । सूत-पुत्र कर्ण पृथ्वी में धंसे हुए पहिये को निकालने का प्रयत्न करता हुआ काल-कवलित हुआ; आर्यावर्त की कितनी ही संस्कृतियों को अपने उदर में समा जाने वाले पितामह बाण-शैया पर सोये; अश्वत्थामा के समर्थ पिता द्रोण शस्त्र छोड़ बैठे और शत्रु की तलवार के सामने सिर झुका दिया; सिंधुराज जयद्रथ का सिर उनके पिता की गोद में जाकर गिरा; वीर अभिमन्यु सारी कौरव-सेना के छक्के छुड़ाकर भी अन्त में छः महारथियों के एक साथ प्रहार कर देने के कारण मृत्यु को प्राप्त हुआ; शल्य, शकुनि, विकर्ण आदि अपनी-अपनी गति से मृत्यु के पथिक बने, आने वाले कल के लिए अनेक मनोरथों की रचना करके सोने वाले धृष्ट-द्युम्न का आगामी कल उदित ही नहीं हुआ; और इस समूचे युद्ध को रचने वाला दुर्योधन समंतपंचक में अन्तिम श्वास लेकर ईश्वर के दरबारमें पहुँच गया । पीछे रहे पांचों पांडव और श्रीकृष्ण; अश्वत्थामा और कृपाचार्य; कुन्ती और गांधारी; और इस समूचे नाटक का छिपा हुआ सूत्रधार अंधे धृतराष्ट्र ।

अठारह अज्ञौहिणी सेना के शवों पर अपना रथ हाँककर महाराज युधिष्ठिर हस्तिनापुर के अधीश्वर हुए । हस्तिनापुर पहुँचकर युधिष्ठिर ने गांधारी के आंसू पोंछे, कौरव-स्त्रियों और

अन्य अनेक वीरांगनाओं के आंसू पोंछे और अन्त में अपने भी आंसू पोंछे ।

एक दिन युधिष्ठिर चारों भाइयों और द्रौपदी के साथ पितामह के पास गये । पितामह बाण-शैया पर पड़े हुए थे । सबने उन्हें प्रणाम किया और उनके पास जाकर बैठ गये ।

पितामह ने युधिष्ठिर को सामने देखकर कहा—

“चिरंजीव युधिष्ठिर ! सब कुशल से तो हो ? हस्तिनापुर की गद्दी में कांटे तो नहीं रहे होंगे !”

युधिष्ठिर ने जवाब दिया—“महाराज ! आपसे क्या कहूं ? राजाओं की गदियां ऊपर से ऐसी मुलायम लगती हैं कि सब लोग सहज ही कह उठते हैं कि अहा, यह कैसी मुलायम है । लेकिन इस गादी पर बैठने वाला ही जानता है कि इस मखमल के भीतर कैसे कांटे गुथे हुए हैं ।”

“इतने दिनों में ही यह अनुभव हो गया ?” पितामह ने पूछा ।

“पहले दिन ही ।” युधिष्ठिर ने कहा । “पितामह ! क्षमा करिये, मुझे तो अब ऐसा लगने लगा है कि यह राज-पाट छोड़कर कहीं भाग जाऊं !”

भीष्म जरा शरीर तान कर बोले—“युधिष्ठिर ! सावधान ! भागकर कहां जायगा ? इस अठारह अक्षौहिणी सेना का विनाश क्या अन्त में भाग जानेके ही लिए किया था ? तेरे मुंह से भाग जाने की बात निकलती ही कैसे है ? जो कुछ भोगने की लालसा से यह संहार रचा था, अब अच्छी तरह भोग, हस्तिनापुर की प्रजा पर अब तू राज्य कर ।”

युधिष्ठिर ने कहा—“महाराज ! आज ऐसा प्रतीत होता है, मानो समूचे समाज के हृदय पर कोई भार आ पड़ा हो ।”

“तू जो कहता है वह ठीक है ।” पितामह ने कहा । “सारे युद्ध-

काल में जनता में एक प्रकार का उन्माद छा गया था, उसके परिणाम-स्वरूप आज मूढ़ताका प्रकट होना स्वाभाविक ही है। तुम सबने जनता को धर्म-युद्ध की मदिरा पिलाकर उसमें उन्माद उत्पन्न किया था। अतः आज इस मूढ़ता को भी तुम्ही लोग सहन करो।”

“किन्तु, पितामह ! मुझे तो आज समाजमें सर्वत्र इतनी अधिक मात्रा में दीनता, व्यग्रता और अज्ञान आदि दिखाई देते हैं कि जितने पहले कभी नहीं देखे गये थे; और जितनी दूर तक नजर डालता हूं, वहां-वहां एक ऊजड़ वीरान के सिवा और कुछ दिखाई ही नहीं देता।” युधिष्ठिर ने दीनता के साथ कहा।

“सुनो युधिष्ठिर ! तुम पाण्डवों ने आज तक भिन्न-भिन्न अवसरों पर दुर्योधन की निन्दा करने में कोई कसर बाकी नहीं छोड़ी।” पितामह ने तत्काल ही कहा।

“पितामह ! मैंने ?” युधिष्ठिर ने कुछ आश्चर्य से पूछा।

“तूने नहीं तो तेरे भाइयों ने।” पितामह ने जवाब देते हुए कहा। “आज अब हस्तिनापुर का राज्य तुम्हारे हाथ में आया है। अतः दुर्योधन में तुम लोग जो-जो दोष निकालते थे, वे तुम्हारे में नहीं हैं, यह तुम्हें सिद्ध कर दिखाना चाहिए।”

“पितामह, यह तो बहुत बड़ी कसौटी आपने हमारे सामने रखी है।” युधिष्ठिर ने कहा।

पितामह ने जवाब दिया—“बड़ी न रखूं ? यही तो मनुष्य की सच्ची कसौटी है। मेरा अनुभव यह है कि जो लोग दूसरे के दोषों को बड़ा बताकर उसकी निन्दा करते हैं, वे स्वयं उसी स्थिति में आते हैं तो उससे कहीं अधिक निकम्मे एवं गन्दे साबित होते हैं। इसलिए युधिष्ठिर ! यह कसौटी कितनी ही कड़ी होने पर भी तुम्हें उस पर खरा उतरना ही चाहिए। यदि ऐसा न हुआ तो जनता को तुम्हें पर श्रद्धा न होगी। जब तक लोगों को दुर्योधन के

अधर्म राज्य और तुम्हारे धर्म राज्य में साफ अन्तर न दिखाई देगा, तब तक सब कुछ निरर्थक है।”

“पितामह, आपकी यह बात तो यथार्थ है,” युधिष्ठिर ने कहा। “जिस तरह भी हो, मुझे जनता को इतनी प्रतीति करानी ही चाहिए; किन्तु पितामह, आज जब मैं समाज पर दृष्टि डालता हूँ तो मुझे समूचा आर्य-समाज वीरान-सा प्रतीत होता है और मुझे अपनी दिशा सुझाई नहीं पड़ती।”

पितामह ने कुछ क्षण शान्त रहकर कहा—“वीरान-सा प्रतीत ही नहीं होता, प्रत्युत वीरान है ही। तू यह न समझ बैठना कि कुरुक्षेत्र के मैदान में अकेला भीष्म ही बाण-शैया पर पड़ा है। न मुझे यहाँ समझना चाहिए कि कुरुक्षेत्र की युद्ध-भूमि में केवल अठारह अक्षौहिणी के शरीर मात्र ही पड़े हैं। वास्तविकता यह है कि समाज की सारी संस्कृति ही आज बाण-शैया पर पड़ी है; इस अठारह अक्षौहिणी सेना के साथ आर्य संस्कृति भी पैर फैलाकर सो रही है और तेरे हाथों समाज में नव भारत का जन्म होने को है। तुम पाण्डवों ने अभी अपना आधा काम पूरा किया है। तुम लोगों ने मुझे परास्त किया, द्रोण को हराया और कौरवों को धराशायी किया। यह तो हुआ तुम्हारा विध्वंस-कार्य। किन्तु जब तक तुम संसार में नवीन सृजन नहीं करते तब तक तुम विध्वंस-कार्य करके समाज के द्रोही बने रहोगे। इसलिए नव भारत का सृजन करना तुम्हारा परम कर्त्तव्य हो गया है।”

“यह महान् कार्य मैं किस तरह कर सकूंगा?” युधिष्ठिर ने पूछा।

भीष्म ने शान्ति एवं दृढ़ता से जवाब देते हुए कहा—“यह काम तुम्हें ही करना है। मुझे तो अब गया हुआ ही समझ। मैं अपनी सारी विद्या अभी तुम्हें सौंपे देता हूँ। तेरे पास यह जो तेरा भाई अर्जुन है, यह समझ रख कि वह नये युग का

सृष्टा—प्रजापति—है। इस पर श्रीकृष्ण का हाथ है। और यह युग पुरुष—श्रीकृष्ण—नवीन भारत का सृजन करने के लिए ही अवतरित हुआ है। इसलिए तुझे जरा भी घबराने की आवश्यकता नहीं। जहां आज तुझे रूखा और वीरान दिखाई देता है वहां कल ही हरे अंकुर दिखाई देने लगेंगे और परसों हरियाली खड़ी दीखेगी। देने लगेगी आज जहां-जहां तुझे अन्धाधुन्दी और अव्यवस्था दिखाई पड़ती है वहां नया प्रकाश पड़ते ही व्यवस्था पैदा हो जायगी। तेरा काम यह प्रकाश देने का है। युधिष्ठिर ! तुझे यह नहीं भुला देना चाहिए कि पुराने जीर्ण-शीर्ण समाज को भ्रू-भोरने वाले के लिए नये समाज के सृजन का कर्त्तव्य अनिवार्य होगया है।”

“पितामह ! आप जो कहते हैं वह मैं अच्छी तरह जानता हूँ। लेकिन प्रश्न यह है कि मैं अकेला हो यह सब किम तरह कर सकूंगा ?” युधिष्ठिर ने पूछा।

भीष्म ने कहा—“अकेला ही क्यों ? तेरे भाई तो हैं हां, और यह पाञ्चाली भी है। देवी पाञ्चाली !”

“आज्ञा पितामह ?” द्रौपदी ने आगे आकर कहा।

भीष्म ने उसकी ओर देखते हुए कहा—“इन पाण्डवों ने एक महाभारत तो पूरा किया। किन्तु समाज में नवीन प्राण-प्रतिष्ठा का इससे भी महा कठिन महाभारत अभी पूरा करना बाकी है और इसमें महाराज युधिष्ठिर को तुम्हारी आवश्यकता होगी।”

“पितामह ! हम अबलाएं क्या कर सकेंगी ?” द्रौपदी ने पूछा।

“अबला !” भीष्मने जरा तीव्र स्वरसे कहा। “द्रौपदी और और अबला ! पाञ्चाली, क्या तू समझती है कि यह युद्ध पाण्डवों ने अकेले जीता है ?”

“अवश्य, ऐसा ही प्रतीत होता है, पितामह !” द्रौपदी ने कहा ।

“यह तेरी भारी भूल है,” पितामह ने जवाब देते हुए कहा । “पाञ्चाली ! तू यह कैसे भूल जाती है कि अर्जुन के बाणों को तीव्र और भीम की गदा को चपल बनाने वाली तो तू ही थी । द्रुपद-सुता, पीछे रहकर पाण्डवों की क्रोधाग्नि में घृत होमने वाली तू न होती तो यह अग्नि कभी की बुझ गई होती । भला तुझे अबला कौन कहेगा ?”

“सारा समाज कहता है ।” द्रौपदी ने तत्काल उत्तर दिया ।

“इस समाज को सुधि ही कहां है ?” “भीष्म ने पलट कर जवाब दिया । “पाञ्चाली ! यह निश्चय रख कि नये युग को तुम्हारी शक्ति का परिचय हुए बिना रह नहीं सकता । जिस नवीन युग की भाग्य रचना कभी की हो चुकी है उसमें तुम्हारा महिला-वर्ग भारी हिस्सा अदा करने वाला है । नवीन भारत में स्त्री-पुरुषों के वर्तमान व्यवहार में भारी उथल-पुथल होगी और मानव के सारे जीवन की नई रचना होगी । इसलिए इस नवीन रचना में तू महाराज युधिष्ठिर की सहायता करना और यह सिद्ध करना कि ईश्वर की सृष्टि में स्त्री-जीवन पुरुष-जीवन जितना ही नहीं, प्रत्युत उससे भी अधिक आदर योग्य है ।”

द्रौपदी ने सिर नवाकर कहा—“जैसी आपकी आज्ञा । अब आप को सांस चढ़ आया है । इसलिए बोलना बन्द करें तो अच्छा हो ।”

“अभी एक बात शेष रह जाती है” सांस खींचते हुए भीष्म ने कहा । “अर्जुन !”

“आज्ञा पितामह ?” अर्जुन ने पूछा ।

“जीवन की अन्तिम सर्दों पर से आज्ञा क्या हो सकती है ?” भीष्म ने श्वास भरते हुए कहा, “चिरंजीव अर्जुन !

प्रातःकाल नया सूर्य उदित होगा । इस नये सूर्य के तेज को भेलने वाला तो तू है। इसलिए मैं अब प्रस्थान करता हूँ । नये प्रकाश के आने पर भी मैं पड़ा रहूँ, यह कैसे हो सकता है ? पुत्र ! बड़े भाई की मदद करना और आज जिस तरह नवीन प्रकाश देख कर मैं चलता बनता हूँ, उसी तरह तुम सब नये प्रकाश की किरणों के दिखाई पड़ने पर अपना-अपना रास्ता पकड़ लेना ।”

“पितामह ! क्या आप जायेंगे ही ? अपना सम्बन्ध क्या अब समाप्त हो गया ?” युधिष्ठिर ने पूछा ।

भीष्म ने शान्ति से उत्तर दिया—“युधिष्ठिर ! यह क्या कहता है ? क्या मानव के सभी सम्बन्ध ऐसे ही नहीं हैं। अठारह अक्षौहिणी सेना के जाने पर अकेले मेरे की क्या बिसात है ? जाओ, सुखसे राज्य करो और धर्म के दीपक निरन्तर प्रदीप्त रखो ।”

यह कहते-कहते भीष्म ने आंखें बन्द कर लीं ।

गंगा देवी के पुत्र, आर्य संस्कृति के प्रतिनिधि, कुरु-कुल के आधार स्तम्भ, पिता की खातिर सुख-वैभव को लात मारने वाले, अद्वितीय धनुर्धारी देवव्रत, उग्र प्रतिज्ञाधारी भीष्म बाण-शैया पर सो गये और कुछ ही देर बाद पूर्व दिशा में नवीन दिवस के नव प्रकाश का सन्चार हुआ ।

धृतराष्ट्र

: १ :

जीवन का निचोड़

हिमालय की तलहटी में शतयूप ऋषि का आश्रम । थोड़ी दूर पर ऊँची टेकड़ियों के बीच से होकर गंगा बह रही है । एक तरफ बड़ी दूर तक शाल और देवदार के वृक्षों की कतारें ऐसी प्रतीत होती हैं, जैसे किसी चक्रवर्ती राजा ने यज्ञ के लिए सैकड़ों स्तंभों का मंडप बनाया हो । पर्णकुटी के निकट रोज शाम को हिरण बैठे हुए जुगाली करते और पेड़ों पर पक्षी कलरव करते थे । दूर, अति दूर बर्फ से ढके पर्वत-शिखर थे और इन शिखरों पर सुन्दर दीखता हुआ योगिराज शंकर का कैलास था ।

ऋषि के इस आश्रम में धृतराष्ट्र ने निवास किया । संजय, गांधारी और कुंती उनके साथ थे ।

एक दिन आधीरात को महाराज धृतराष्ट्र बिस्तर में एकदम उठ बैठे और बोले, “संजय ! संजय ! जरा देवी को बुलाओ ।”

“महाराज”, संजय बोला, “आप रोज इस तरह करेंगे तो किस प्रकार रहा जाएगा ? आप सो जाइए । अभी तो बड़ी रात बाकी है ।”

धृतराष्ट्र बोले, “संजय ! तुम्हें ब्यास भगवान ने अनेक बार

दिव्य दृष्टि प्रदान की, फिर भी व्यथितके हृदय की वेदना की थाह लेने का बल तुममें बिल्कुल न आया। जाओ, देवी को बुलाओ।”

धृतराष्ट्र के बोलते-बोलते गांधारी और कुंती पास के खंड में से आ पहुंचीं। उनकी पग-ध्वनि सुनकर धृतराष्ट्र फिर बोले, “देवी कुंती ! तुम आगईं ? बैठो।”

संजय बोला—“गांधारी। इतनी सेवा करने पर भी महाराज निश्चित होकर सोते नहीं। इनके शरीर में इनी-गिनी हड्डियाँ और चमड़ी शेष रह गई हैं। जब से इस आश्रम में पैर रखा है, तब से एक रात भी इन्हें अच्छी तरह नींद आई हो, ऐसा मुझे तो स्मरण नहीं आता।”

धृतराष्ट्र बोले—“देवी ! बेचारा संजय क्या समझे ? नींद ऐसे कैसे आ सकती है। नींद तो मुझ से भागती फिरती है। अनेक बार मेरे सामने आकर खड़ी होती है, परन्तु फिर तुरन्त ही ताली पीट कर दूर खिसक जाती है और दूर खड़ी-खड़ी मुझ पर हंसती है।

“संजय ! मेरी नींद तो ले गया मेरा दुर्योधन। मेरी नींद ले गया मेरा दुःशासन। मेरी नींद ले गए भीमसेन और श्रीकृष्ण। अपनी नींद को तो मैं हस्तिनापुर के महलों में छोड़कर आया हूं। तेरह-तेरह वर्षों तक इस कुन्ती की आंखें ज़रा भपकी तक नहीं थीं। तेरह-तेरह वर्ष, ऊपर आकाश, नीचे पृथ्वी और घूमते हुए स्यार, इस प्रकार द्रौपदी ने बिताये थे; और वे तेरह वर्ष भी मैं, छत्र-पलंग पर सोकर और बन्दी-जनों के स्तवन से जाग कर बिताता रहा। कुन्ती ! कुन्ती ! मुझे क्षमा करना। यह नींद आज मेरी बैरिन न हो तो कब हो ?”

कुन्ती ने शान्ति-पूर्वक जवाब दिया—“महाराज ! यह सब आप भूल जाइए और जीवन के शेष दिन शान्ति से तपश्चर्या में बिताइए।”

संजय बोला—“महाराज ! अब तो शरीर भी जवाब दे रहा है ।”

धृतराष्ट्र ने कहा—“संजय ! तुम भूलते हो । यह शरीर क्या इस प्रकार जवाब देने वाला है ? मृत्यु तो मानव-जीवन की अमूल्य वस्तु है । जगत् में मृत्यु न हो तो मनुष्य कितना दुखी होता है, यह देखने के लिए मेरे पास आओ । मुझे मृत्यु आजाए तो मैं अपने को भाग्यशाली समझूँ; परन्तु नहीं, सारे भारतवर्ष को उजाड़ने वाला मैं मर जाऊँ तो फिर इस समग्र विनाश को देखने वाला कौन रहे ? अपना किया हुआ मैं ही देखूँ, यही दैव का न्याय है । मौत तो अलग रही, नींद भी दैव कहां देता है ? नींद भी छोटी-सी मृत्यु ही है न ? गांधारी ! अब तो मैंने मृत्यु की भी आशा छोड़ दी है ।”

गांधारी बोली—“महाराज ! कुन्ती ठीक कहती है । आप अब यह सब भूल जाइए ।”

धृतराष्ट्र गांधारी की ओर घूम कर बोले—“गांधारी ! मैं तो बहुत भूलना चाहता हूँ, पर यह सब भुलाये नहीं भूलता । अभी तुम्हें भूल सकता हूँ, भीष्म-द्रोण को भूल सकता हूँ, दुर्योधन को भूल सकता हूँ; परन्तु गांधारी ! मेरे ये कृत्य, मेरे ये विचार, भूलने से भी नहीं भूलते । देवी ! सच कहूँ ? आज तक तो मैंने इन सब पर मानों एक बड़ी शिला रख दी थी, पर अब ये सब बिच्छू के बच्चों की तरह शिला के नीचे से मुझे दंश कर रहे हैं और क्षण भर भी चैन नहीं लेने दे रहे ।”

“तो फिर आप इस शिला को उठा लीजिए ।” संजय बोला ।

तुरन्त ही धृतराष्ट्र ने कहा—“संजय ! यह तुम ठीक कर रहे हो ।”

गांधारी बोली, “शिला उठ जाय तब तो हृदय का भार भी हलका होजाय ।”

धृतराष्ट्र क्षणभर चुप रहे। बड़े गहरे विचार में डूब गये हों, इस प्रकार बैठे रहे और क्षणभर बाद, मानो जाग कर बोल रहे हों, बोलने लगे—

“देवी गांधारी ! कुन्ती कहां है ?”

“यहां मेरे पास ही बैठी है।” गांधारी ने बताया।

“महाराज !” कुन्ती ने जवाब दिया—“मैं यहीं बैठी हूं। आज्ञा।”

धृतराष्ट्र कुन्ती की ओर घूमकर बोले—“कुन्ती, कुन्ती !” फिर तुरन्त हां घुटने टेक कर नमस्कार करते हां, इस प्रकार करके बोलने लगे—“कुन्ती ! यह दुष्ट धृतराष्ट्र तुम्हें प्रणाम करता है और तुम पर तथा तुम्हारे पुत्रों पर किये हुए अत्याचारों के लिए क्षमा मांगता है।”

कुन्ती बोल उठी—“महाराज ! यह क्या करने लगे हैं ? मेरे वनवास को लजाना चाहते हैं ? मैं तो आपकी पुत्री-समान हूं। क्षमा देनेवाली कौन ! क्षमा तो मुझे, आपको और सारे संसार को देने वाला एक परमात्मा है। आप उससे दया की याचना करिये। मैं भी उससे दया की भाख मांगता हूं।”

धृतराष्ट्र स्वस्थ होकर कहने लगे, “बेटी कुन्ती ! तुमने सच कहा। दया तो परमात्मा की ही चाहिए। वह तो आठों पहर दया बरसाता ही रहता है, पर मैं पामर उसे ग्रहण नहीं कर सकता। कुन्ती ! तुम्हारा मैंने महान् अपराध किया है, यह स्वीकार करते हुए परमात्मा की दया का प्रवाह मैं अपने हृदय की ओर आता अनुभव कर सकूँ, इसीलिए तुमसे क्षमा मांगता हूं।”

कुन्ती फिर बोली—“आप हम सबके छत्र थे, इसलिए आपको जो उचित मालूम हुआ, वही आपने किया।”

धृतराष्ट्र ने कहा—“संजय ! हम एक बार गंगा-स्नान करके लौट रहे थे तब तुमने मुझे एक खेत के अदृश्य कुएँ की बात

बताई थी जो ऊपर से खेत की तरह मालूम होता है, जिस पर खूब घास भी उगा हुआ दीखता है; परन्तु वास्तव में गहरा अंधेरा कुआ होता है। अनेक अनजान लोग ऐसे अदृश्य कूप में गिरकर प्राण गँवाते हैं। कुन्ती, यह धृतराष्ट्र भी ऐसा ही अदृश्य कुआ है। मैं विचित्रवीर्य का पुत्र, पांडु का भाई, युधिष्ठिर का ताया और हितैषी, तुम्हारा ज्येष्ठ और तुम लोगों की ठंठ और धूप से रक्षा करने वाला छत्र हूँ। पर यह सब तो ऊपर से हरे-भरे दीखने और हवा में भूलने वाले उसी घास की तरह हैं। वास्तव में तो मैं दुर्योधन का पिता और पाण्डवों का कट्टर शत्रु हूँ। ऊपर से ताया होने का दिखावा करके मैंने तुम्हारे पुत्रों को तंग करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। यह बात आज मुझे दग्ध कर रही है।”

कुन्ती बोली—“महाराज ! आखिर हम सब मनुष्य ही तो हैं। परमात्मा आपको शान्ति दे।”

तत्काल ही धृतराष्ट्र बोल पड़े—“अब तो मुझे शिला पूरी तरह से उठा लेने दो। इसे दूर किये बिना मुझे चैन नहीं मिलेगा। कुन्ती ! बाहर से अच्छे-अच्छे शब्द बोलकर भले बनने और अन्दर से दुष्टता को पूरी तरह से पोषण करने का काम ही मैंने जीवन-भर किया है। कुन्ती ! तुम्हारे पुत्रों का नाश करने के प्रयत्नों को मैंने एक जिब्हा से उत्तेजन दिया और उसी क्षण दूसरी जिब्हा से उनको मीठे शब्दों में, शास्त्र की भाषा में, आशीर्वाद भी दिया। ‘दुरंगी जिब्हा, दुरंगी आंख और दुरंगा जीवन।’ यह धृतराष्ट्र के जीवन का सार है।”

कुन्ती ने फिर कहा—“महाराज ! इस प्रकार तो हम सभी परमात्मा के अपराधी हैं।”

धृतराष्ट्र तुरन्त बोले—“परन्तु, गांधारी नहीं। इसके सारे जीवन में ऐसी कोई चीज खोजने पर भी नहीं मिलेगी

कुन्ती बीच में ही बोली—“इस प्रकार के तपोवन अपने पावत्र वातावरण से ही मनुष्य को शान्ति दे देते हैं।”

धृतराष्ट्र बोल उठे—“कुन्ती, तुम भूलती हो। यहां आकर तो मैं अधिक दुःखी हो गया हूं। इस आश्रम की शान्ति में तो मेरे पिछले सारे कर्मों ने मुझ पर एकदम धावा बोल दिया है और मेरी वेदना बढ़ गई है। इस आश्रम की शान्ति तुम सबको अच्छी लगती होगी, पर मैं तो इससे त्रस्त ही हुआ हूँ। यहां आने के दूसरे ही दिन मुझे लगा था कि इससे तो हस्तिनापुर ही अच्छा है। यहां आने के बाद मेरा मन बेकार हो गया, इसलिए वह मुझे ही खाने को दौड़ता है। ऐसी शान्ति में ऋषि-मुनि न जाने कैसे रहते होंगे ! गान्धारी ! सच कहता हूँ। सारे जीवन में मैंने जो-जो कृत्य और जो-जो विचार किये हैं, वे ताजे होकर स्मरण आते ही हैं, पर जिन कृत्यों और विचारों का मुझे जरा भी स्मरण नहीं है, वे भी हजारों की संख्या में जब मेरे आगे आकर खड़े होते हैं और मुझे पिता के रूप में परिचित कराते हैं तब तो मुझे बहुत ही घबराहट होती है। देवी ! कभी-कभी तो मेरी इच्छा होती है कि कहीं भाग जाऊं या गंगा में डूब मरूँ तो इन सबसे छुटकारा हो; परन्तु अन्दर से कोई मना करता है।

“कुन्ती ! तुम्हारे सामने अपना हृदय खाली करने से कदाचिन् यह वेदना शान्त होजाय, इस आशा से तुम्हें दो बातें कहना चाहता हूँ। कुन्ती ! मुझे पापी न कहना। मुझे धूर्त समझकर मेरी अवगणना न करना। मुझे पामर और स्वार्थी कहकर मेरी निन्दा न करना। मैं इस प्रकार का हूँ, फिर भी आज तुम्हारी दया का भूखा हूँ। मेरा त्याग न करना। कुन्ती ! मैं हस्तिनापुर की प्रजा का स्वामी आज तुम्हारी गोद में सिर रखकर रोने का अभिलाषी हूँ।

“बेटी कुन्ती ! मेरे जीवनकी अनेक घटनाएं मेरे सामने एकत्र

होगई हैं और वे इस प्रकार बाहर आना चाहती हैं, मानो एक के बाद एक अपने चित्र उपस्थित करती हों ।

“संजय! सुनो। भाई पांडु उस समय वन में रहता था। एक दिन प्रातःकाल कुछ वनवासी हस्तिनापुर में आये। कुन्ती और पाण्डव उनके साथ थे। तपस्विनों ने आकर भीष्म पितामह से पाण्डु की मृत्यु की बात कही। पांचो बच्चों को भीष्म की गोद में सौंपा और विदा हो गये। कुन्ती ! उस दिन मैं कितने ऊंचे स्वर में रोया था—तुम्हें याद आता है ? तुम तो दुःख में डूबी हुई थीं। इसलिए तुम्हें याद न होगा। मैंने बड़े ऊंचे स्वर में रुदन किया, जैसे मेरे सिर पर आकाश टूट पड़ा हो; परन्तु कुन्ती ! सच बात कहूं ? मेरी आंखों में आंसू होंगे, पर मेरे हृदय में दीपक जल उठे थे। पांडु के मरने पर मैं हस्तिनापुर का स्वामी बना और हस्तिनापुर की गद्दी पर दुर्योधन के लिए स्थान हो गया। गान्धारी ! वह मेरा भाई पांडु मेरे सामने खड़ा मुझ पर हँस रहा है। देवी ! पांडु चला गया। प्रतिष्ठा देने वाले वे लोग चले गए। जिस राज्य के लिए रोया था, वह राज्य भी चला गया, जिस पुत्र की लालसा से रोया था, वह पुत्र भी चला गया, जो आंसू गिरे थे, वे भी सूख गए; परन्तु इन सबके पीछे मेरा जो ढोंग था, वह मेरी जीवन-पुस्तक में अंकित होगया और मिटाने से भी नहीं मिटता। इतने दिनों से गंगा-स्नान करता हूँ, इतने दिनों से तप करता हूँ; पर न तो गंगा-स्नान मेरे हृदय को धो सका है और न तप उसे निर्मल कर सका है। जिस दिन भूठे रुदन से मैंने लोगों को ठगने का प्रयत्न किया था, उस दिन मुझे पता न था कि दूसरों को ठगने का विचार रखने वाले लोग दूसरों को तो ठगते ही होंगे, पर उससे पहले अपने आपको ठगते हैं। कुन्ती ! धृतराष्ट्र के जीवन का श्रीगणेश उस दिन हुआ।

“कुन्ती ! तुम और पाण्डव हस्तिनापुर में रहने लगे। पाण्डु

और यदि कभी इसका कोई आभास हुआ होगा तो वह मेरी ही संगति से। यह मैं मानता हूँ कि मनुष्य-मात्र थोड़े बहुत अंश में ऐसा दुर्गम जीवन ही बिताता है। पर बेचारा मनुष्य ! उसे इस दुर्गम जीवन का भान भी नहीं है। वह जो बोलता है, उसका उसके कार्यों के साथ मेल है या नहीं, जो करता है, उसका हृदय के साथ मेल है या नहीं, जो सोचता है, उसका वाणी के साथ मेल है या नहीं, यह सब देखना मुझे तो साधारण मनुष्य की शक्ति से बाहर की बात मालूम होती है, और इसी से मनुष्य मात्र दुखी है। पर कुंती ! मेरी बात जरा भिन्न है। मैं हस्तिनापुर का महाराजा ठहरा, साधारण मनुष्य न करने योग्य काम करे तो उसका समाज में बड़ा परिणाम नहीं होता। परन्तु मैं समाज के शिखर पर बैठा हुआ हूँ, इसलिए मेरे कृत्यों का परिणाम समाज में बड़े-बड़े उलटफेर कर सकता है और बहुतों को उसका फल भोगना पड़ सकता है। फिर यदि मनुष्य अज्ञान में ऐसा जीवन बिताये तो वह क्षान्त्य माना जा सकता है। पर इस अन्धे ने तो खुली आँखों से यह व्यापार किया है और ऐसे जीवन का नया शास्त्र भी गढ़ डाला है। कुंती ! हम राजपुरुषों को ऐसे दुर्गम जीवन की यथारीति शिक्षा दी जाती है। आज के राजपुरुष, अर्थात् दुर्गम जीवन, गरीबों को चूसना और चूसते-चूसते उनके शरीर पर मीठे शब्दों का जल छिड़कना। दूसरों का सर्वस्व लूट लेना और लूटते-लूटते मनुष्य-जाति के कल्याण के आदर्श उपस्थित करना, हृदय में मार डालने की भावना रखते हुए मुख से स्वागत के भाषण करना यह सब राजपुरुषों की शिक्षा मानी जाती है। और इन विषयों में जो कुशल हो, राजसभा में उसका सिंहासन प्रथम होता है। कुंती ! देवी गांधारी ! मैं इस प्रकार का राजपुरुष बना, इसीसे आज इस बिस्तर पर पड़े-पड़े पसलियाँ

रगड़ रहा हूँ। आज तो हम समाज से दूर, बहुत दूर इस आश्रम में हैं। यहां से यदि मेरी आवाज पहुँच सकती हो तो संजय, मैं सारी दुनिया को सुना देना चाहता हूँ कि राजपुरुष होने का अर्थ मनुष्यताको भी खो देना है। राजपुरुष अर्थात् दिन-दहाड़े लूट मचाने वाला लुटेरा। राजपुरुष हृदय से परमात्मा को निकालकर वहां मजबूत ताला लगा देता है, जिससे वह कहीं फिर वहां घुस न पड़े ! राजपुरुष बनना अर्थात् मुट्ठी जितने हृदय की बलि देकर सारी पृथ्वी के ऐश्वर्य से समृद्ध होना। राजपुरुष बनना अर्थात् शरीर का विस्तार इतना अधिक बढ़ाना कि हृदय की धड़कन भी वहां न पहुँच सके और अन्त में हृदय-रोग से सहसा मर जाना। कुंती ! इस धृतराष्ट्र ने सारा जीवन ऐसे व्यापार में बिताया है, यह आज मैं तुम्हारे सामने स्पष्ट बता रहा हूँ और यह बताते हुए अपने हृदय का भार मैं कुछ हलका होता अनुभव कर रहा हूँ।”

कुंती बोली—“महाराज ! मैं तो यही कामना करती हूँ कि आपके हृदय का भार हलका हो।”

गांधारी ने कहा—“महाराज ! आज यह ठीक बात सूझी है। आज आपने निरालो शुद्धता धारण की है। कर लीजिये हृदय को जीभर कर खाला।”

धृतराष्ट्र बोले—“देवी ! संजय ! बातें तो अभी बहुत करनी हैं, पर की नहीं जातीं, जैसे कोई मुझे रोक रहा है। कुंती ! मेरी बात मानोगी ? तुम समझ नहीं सकती कि जब तुम्हारे पुत्र कुरुक्षेत्र से वापस आये और युधिष्ठिर मेरे पैरों पर गिरा था तब मुझे कितनी वेदना हुई थी। उसके बाद का सारा समय मैंने उन महलों में किस प्रकार बिताया, यह मेरा मन ही जानता है। हस्तिनापुर का ताप मुझसे सहन न हुआ। इसीलिए मेरी इच्छा हुई कि अब जंगल की खुली हवा में जाऊँ और मैं यहां आगया।”

मुझसे उन्होंने यह विनती की कि पाण्डवों को वारणावत में विहार करने के लिए भेजा जाय । कुन्ती ! सच-सच कहता हूँ । इस विनती की आड़ में जो कुछ छिपा था, उसका मुझे पता था । परन्तु ऐसी योजनाएं तो हम राजपुरुषों की ओट में बनती ही रहती हैं और आवश्यकता पड़ने पर न्याय-सभा में हम शपथ-पूर्वक यह घोषणा कर सकते हैं कि हमें ऐसी किसी बात का जरा भी पता नहीं है । पाण्डव तैयार होगए । तुम सब मेरे पास आजा लेने आये । मैं तुम लोगों के वियोग के दुःख से आंखों में आंसू भर लाया और तुम विदा हुए । विदुर, विदुर ! मेरी डूबती हुई आत्मा को बचाने के लिए तुमने कितना प्रयत्न किया है, यह जब मैं स्मरण करता हूँ तो मेरी इच्छा होती है कि किसी जन्म में तुम्हारा सम्बन्धो बनकर सारा जीवन तुम्हारी सेवा में बिताऊँ । विदुर ! हम तीनों भाई थे । पांडु स्वर्ग चला गया; तुमने मेरे वैभव में जरा भी हिस्सा न बटाया, परन्तु मेरी डूबती नौका को स्थिर दीपक दिखलाया । कुन्ती ! जब तुम लोगों को भेज रहा था तब विदुर ने मुझे रोका था । मेरे पुत्रों की नीयत विदुर परख गया था; पर मैंने उन्हें भेज दिया । कुछ दिनों बाद समाचार मिला कि वारणावत का नया महल जल गया और उसमें तुम छहों भस्म होगए । खबर सुनकर मैं रोया, मेरे पुत्र रोये, शकुनी रोया, गांधारी रोई और हस्तिनापुर की सारी प्रजा रोई । परन्तु मैं तो लोक-लज्जा से रोया था । मेरी समझ में वह मेरा अन्तिम भूठा रुदन था । हस्तिनापुर के लोगों को हम पर शंका हुई; पर बहुत दूर वारणावत में घटना हुई थी, इसलिए उन की शंका को उत्तेजन न मिला और धंरे-धंरे लोग सब कुछ भूल गए । पाण्डवों से छुट्टी पाकर मेरे पुत्र बिलकुल स्वतन्त्र होगए । मुझे भी ऐसा विचार आया कि अब भूठ-सच बनाने की जरूरत खतम होगई । इसलिए बाकी जीवन शान्ति से बीतेगा । कुन्ती !

थोड़े दिन बड़ी ही शान्ति और आनन्द से बीते। ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे हृदय का भार हलका हो गया है।

“पर तभी समाचार मिला कि ‘राजा द्रुपद की सभा में अर्जुन ने द्रौपदी को प्राप्त किया और वहां एकत्र हुए समस्त राजाओं का दर्प पाण्डवों ने चूर्ण किया।’

“इस समाचार से मुझे गहरा धक्का लगा। अपने पुत्रों के लिए रचे गए सारे स्वप्न भंग हो गए। मैं यह कामना करने लगा कि यह खबर झूठी निकले। क्षणभर मुझे ऐसा जान पड़ा कि मेरे हृदय में घोर अन्धकार छाता जा रहा है और मैं एकदम मूढ़ बन गया। पर कुंती! फिर मैं तुरन्त ही सावधान हुआ और मैंने यह दिखलाने में कोई कसर नहीं रखी कि इस खबर से मुझे अपूर्व हर्ष हुआ है। इस खबर के मिलते ही मैंने सारे हस्तिनापुर में मिठाई बटवाई, राजमहल में बाजे बजवाये, ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन करवाया, कुमारी कन्याओं का शृंगार करवाया और उस दिन रातभर सारे नगर में रोशनी करवाई। परन्तु कुंती! सच कहता हूं, मुझे क्षमा करना, मेरे हृदय में केवल अन्धकार था। पाण्डव जीवित होंगे तो मेरे पुत्रों को जीने नहीं देंगे, इस विचार ने मुझे गहरी चिन्ता में डाल दिया था।

“कुंती! हारा हुआ तिकड़मी और क्या करता! मेरा पुत्र गांधारी के भाई का सलाह लेने लगा। संजय! याद है? एक दिन गंगा-स्नान करके लौट रहे थे तब रास्ता भूलकर हम एक दलदल में गिर पड़े। उसमें पैर पड़ते हैं। हम गहराई को ओर जानें लगे। मैंने बाहर निकलने को बड़ी चेष्टा की, पर ज्यों-ज्यों प्रयत्न करता था त्यों-त्यों पैर अधिक गहराई में चले जा रहे थे। अन्त में जब तुमने मुझे अपनी तरह साधा लिटा दिया तब हम दोनों बचे और तपस्वियों के बाहर निकलने पर घर आये। मैं अभी तक वह दिन भूला नहीं हूं। मेरे और मेरे पुत्रों के इस पाप को भां ऐसा ही समझो। कुंती! मैं

के पुत्र और मेरे पुत्र पितामह की छत्रछाया में बड़े होने लगें। पितामह ने पहले कृपाचार्य को और फिर द्रोणाचार्य को रखकर उनसे राजकुमारों को शिक्षा दिलाने का प्रबंध किया। पाण्डव और कौरव सब मुझे अपना हितैषी समझने लगे; परन्तु मेरे मन में तो बहुत पहले से ही पांडवों और कौरवों के लिए भेदभाव उत्पन्न हो चुका था। मेरा प्रयत्न सदा यही रहता था कि आहार-विहार में मेरा दुर्योधन सदा आगे रहे। द्रोणाचार्य से मैं सदा आग्रह करता रहता था कि वह दुर्योधन की ओर अधिक ध्यान दें। जब सब राजकुमार नदी-तट पर खेलने जाते थे तब मेरे कान यही सुनने के लिए उत्सुक रहते थे कि दुर्योधन ने औरों को हराया। यह सब इस समय मैं दीपक की तरह स्पष्ट देख रहा हूँ। इसमें कोई सन्देह नहीं कि मैं ऐसा ही करता था, पर उस समय यह सब मुझे स्पष्ट दिखाई नहीं देता था। गांधारी! तुम्हें याद होगा, दुर्योधन की दुष्टता देखकर तुमने मुझे अनेक बार उसका त्याग करने के लिए कहा था, पर मैं उसका त्याग किस प्रकार करता? सच्चा दुष्ट तो मैं था। दुर्योधन की दुष्टता तो केवल मेरी दुष्टता का प्रतिबिम्ब था। मैंने बड़ी कुशलता से अपने दोषों को ढक रखा था, परन्तु ऐसी कुशलता बरतने वाले मां-बाप भूलते हैं। उनको पता नहीं कि उनके दोष उनके रोम-रोम से बाहर भाँकते हैं और छूत की बीमारी के कीटाणुओं की तरह उड़कर उनके बच्चों को लग जाते हैं। दुर्योधन! तू चाहे जितना दुष्ट था, पर गान्धारी की गोद में खेला था, इसलिए तेरी दुष्टता प्रकट थी। तेरी दुष्टता में एक प्रकार की उच्चता थी। तेरी दुष्टता में गांधारी की निडरता थी; पर मैं तो छिपा दुष्ट था। मुझे दुष्टता प्यारी थी; पर दुष्टता करने की हिम्मत मुझमें नहीं थी। गांधारी! मेरी दुष्टता को कोई देख न ले, इस भय से मैं उसे बार-बार हृदय की गहराई में धकेलता रहा। संभवतः इसी

से आज भी वह बाहर आते डरती है।”

“महाराज ! हम सब तो यह समझते थे कि आप पुत्र-स्नेह के वश होकर दुर्योधन को कुछ नहीं कहते थे।” संजय बोला।

धृतराष्ट्र ने कहा—“केवल यही नहीं। जब भीमसेन को दुर्योधन ने लड्डू में विष खिला दिया था तब मुझे बहुत बुरा लगा था। इस बात का पता लगने पर मैंने एकान्त में अपने पुत्र को खूब धमकाया था। परन्तु अपनी धमकी की पोल को मैं उतनी अच्छी तरह नहीं समझता था, जितनी अच्छी तरह मेरे पुत्र उसे परख गए थे। मुझे उस समय अच्छे काम अच्छे और बुरे काम बुरे लगते थे सही; परन्तु अच्छे काम अच्छे ही हैं, इस पर मुझे विश्वास नहीं था। इसलिए मैंने इसके लिए कभी कोई आग्रह नहीं रखा। परिणाम-स्वरूप मैं दुष्टता में अधिक-से-अधिक लिप्त होता गया। कुन्ती! दूसरी बात क्यों कहूँ? यह तो अभी कल की ही बात है। दुर्योधन को युद्ध से रोकने की सबने मुझे सलाह दी थी। मैं चाहता तो उसे रोक सकता था; परन्तु मैं तो किसी भी चोज में विश्वास रखना छोड़ बैठा था और अपना सारा जीवन एक जुआरी की तरह मैंने दैव को सौंप दिया था। जीवन का यह जुआ मनुष्य को किस तरह नष्ट कर देता है, यह किसी को देखना हो तो धृतराष्ट्र के पास आये और उसका हृदय खाल-कर देखे।

“परन्तु कुन्ती, मैं दूसरी ओर चला गया। पुरोचन ! खड़ा रह। बाहर आने के लिए क्यों उतावला हो रहा है? मैं कुन्ती से तेरी बात कहने लगा हूँ। पर दुष्ट ! फिर तू मेरा पीछा छोड़ देना। कुन्ती ! उस समय की बात है, जब तुम्हें वारणावत के महल में भेजा था। द्रोणाचार्य की विद्या में पाण्डव मेरे पुत्रों से अधिक कुशल हो गये, यह मुझसे सहन न हुआ। मेरे पुत्रों ने पाण्डवों को किसी प्रकार समाप्त करने की योजना बनाई और

आगे बढ़ने में दुर्योधन की कोई हीनता नहीं थी, परन्तु हम दुनिया के मनुष्य अपनी हीनता और उच्चता का विचार दूसरों की दृष्टि से करते हैं, यही भूल है। मेरा सारा जीवन ऐसी ही भूल में बीता है। पाण्डवों की कीर्ति को बढ़ते हुए सुनकर मैं अधीर हो गया। मेरे पुत्र भी वही विचार करते रहते थे कि पाण्डवों का किस प्रकार नाश किया जावे।

“इतने में युधिष्ठिर ने राज-सूय यज्ञ किया। श्रोकृष्ण, अर्जुन और भीम ने मिलकर जरासंध का वध किया और बंदी बने राजाओं को छुड़ा दिया। जब मुझे यह समाचार मिला तब मैं चकित हो गया। मैं ऐसी कल्पना भी नहीं कर सकता था कि जरासंध को और उसके साम्राज्य को भी कोई मिट्टी में मिला सकता है। भीम ने जब जरासंध का वध किया तब मेरी आँखें खुल गईं और क्षण भर मुझे ऐसा जान पड़ा कि पाण्डवों के सामने आना मेरे पुत्रों के लिए सिंह के जबड़े में हाथ डालने के समान है।

“परन्तु यह विचार आते थे और फिर छिप जाते थे। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में भीष्म, द्रोण, दुर्योधन और अन्य कई लोग गए। विदुर भी गए थे; परन्तु मेरे तो आँखें ही नहीं हैं, मैं क्या जाता? जब दुर्योधन इन्द्रप्रस्थ से वापस आया और उसने मुझ से पाण्डवों के ऐश्वर्य का वर्णन किया तब मेरी नोंद उड़ गई। द्वारकाधिपति श्रोकृष्ण का मनुज-श्रेष्ठ के रूप में पूजन हुआ और उस पूजन का विरोध करने वाले शिशुपाल का सिर धड़ से अलग कर दिया गया। उन्हीं महानुभाव श्रोकृष्ण ने यज्ञ में राजाओं के पैर धोने का काम संभाला। भारतवर्ष के दूर-दूर के राजाओं-महाराजाओं ने महाराज युधिष्ठिर के चरणों में मस्तक टेके और अनेक मूल्यवान भेंटों से उनका सार्वभौम पद स्वीकार किया। यह सब मैंने जब विस्तार से सुना तब मेरे मन की क्या दशा हुई होगी, इसकी कल्पना भी तुममें से

कोई नहीं कर सकता। अपने पुत्रों को सदा पाण्डवों से आगे देखने के इच्छुक धृतराष्ट्र को यह सब किस प्रकार अच्छा लगा होगा ? यह सब वर्णन सुनकर मेरे कान थक जाते थे; परन्तु मैंने धारज रखा और दुर्योधन को भी धीरज बंधाया। कुन्ती ! सच कहूँ, मैं अंधा हूँ, यह सभी जानते हैं। मुझे यदि कोई अंधा कहे तो यह एक सच्चा बात होगी, यह भा मैं जानता हूँ; परन्तु फिर भी जब द्रौपदी ने दुर्योधन को ताना दिया कि 'अंधे के बेटे अंधे ही होते हैं,' तब मुझे बड़ा दुःख हुआ और द्रौपदी का और तुम सब का हितैषी होने पर भी उसकी चोटी खींचने की मेरी इच्छा हो आई। बाद की बात तो तुम सब को पता है ही। यह द्रौपदी आ गई ! द्रौपदी ! अब तो अपने बालों का जूड़ा बांधले। द्रौपदी ! जगदम्बे ! तेरी चोटी ने मेरे दुःशासन की बलि ले ली। अब तो क्षमा कर। आ जा, मेरी गोद में बैठना चाहती है ? नहीं, नहीं मैं जल जाऊँगा। पवित्र स्त्रियों का स्पर्श होने योग्य मेरी गोद नहीं।”

संजय बोला—“महाराज ! हम तो इस समय शतयूप के आश्रम में हैं।”

धृतराष्ट्र ने कहा—“ओह ! मैं भूल गया था। फिर मैंने अपने जीवन का सबसे अधिक कलंक-पूर्ण कार्य किया। जुआ कितनी खराब वस्तु है, यह मैं जानता था। दुर्योधन ने जब अपना विचार मेरे सामने रखा तब मैंने उसे बहुत रोका; परन्तु दुर्योधन बिलकुल न टला। अन्त में मैंने थक कर विदुर को आज्ञा दी कि पाण्डवों को जुआ खेलने के लिए बुला लाओ। विदुर ! विदुर ! तुम्हें कितना याद करूँ ? तुम्हारा एक वचन लाखों के मूल्य का था; परन्तु मैं अन्धा था। इसलिए मुझे अपना विनाश कैसे देख सकता था ? कुन्ती ! तुम्हें भी न सूझा कि तुम युधिष्ठिर को रोकती। कैसे सूझ सकता था ! दैव को यही

हृदय खोलकर बात कर रहा हूँ। मैं प्रत्येक बार ऐसा सोचता था कि यह अंतिम प्रयत्न और कर लिया जाय, जिससे आगे और अधिक कुछ न करना पड़े। परन्तु वह सोचा हुआ अंतिम पाप तो अन्त में केवल अन्य अनेक पापों की पहली सीढ़ी बनकर रह जाता था।

“कुन्ती ! द्रौपदी को लेकर तुम सब जब हस्तिनापुर आये तब से मेरी अस्वस्थता बढ़ गई। हाँ, कभी-कभी मेरा विदुर जब मेरे पास आकर धर्म-शास्त्र की बातें करता था तब क्षण भर के लिए मैं बदल जाता था। क्षण भर तुम सब के लिए मुझे ममता हो आती थी और अन्दर से मुझे बार-बार कोई कहने लगता था कि मैं जो करता हूँ, वह ठीक नहीं है। पर यह स्थिति विदुर के सामने ही रहती थी। विदुर के न होने पर जब दुर्योधन मेरे समीप आता था तब मैं दूसरा ही धृतराष्ट्र बन जाता था। गांधारी ! महान् तुम्हारी पवित्रता; तुम्हारी पवित्रता से तो मैं समझता हूँ कि यह पतितपावनी गंगा भी पवित्र होती है। तुम्हारी वह पवित्रता मेरे साथ थी, फिर यह क्या बात थी जो मैं दुर्योधन को ही देखता और उसी की बात मानता था ? गांधारी ! आज वह बेचारा स्वर्ग में है और मैं पृथ्वी पर पड़ा हूँ। परन्तु देवी ! तुम्हें अपनी पवित्रता में जितना विश्वास है, उससे कहीं अधिक विश्वास मेरे दुर्योधन को अपने पाप में था। कदाचित् इसीलिए उसने मुझे जोत लिया था। मुझे तो तुम आरम्भ से ही पहचानती हो। आजतक अपने आपको मैं धर्मिष्ठ समझता था। आजतक मैं यही मानता था कि प्रतिदिन धर्म की शास्त्रोक्त क्रियाएँ करते रहना और शेष समय में व्यवहार तथा समाज को गहरा धक्का न लगे, इस प्रकार अपना स्वार्थ सिद्ध करते रहना ही अच्छे मनुष्य का लक्षण है। आज इस तपोवन की शान्ति में आकर मुझे अपनी भूलें समझ आती हैं।

देवी ! वे धर्म-क्रियाएँ अपने-अपने स्थान पर रह गई, वे स्वार्थ के प्रयत्न भी अपनी-अपनी जगह पर पड़े रहे ! परन्तु उन सब से डोलायमान हुआ मेरा यह नन्हा-सा मन मुझे नहीं छोड़ता और छोड़ेगा भी नहीं । गांधारी ! मेरे जैसे सारी दुनिया के साम्राज्य के पीछे दौड़ने वाले बेचारे अनेक मृगों को यह क्या पता है कि यह सब व्यर्थ के प्रयत्न हैं ?

“कुन्ती ! सुनती हो ? बीच-बीच में मैं दूसरी तरफ चला जाता हूँ ! संजय ! तुम मुझे रोकते भी नहीं हो ? जब द्रौपदी को लेकर तुम सब हस्तिनापुर में आये तब मैं प्रसन्न हुआ और पाण्डवों को इन्द्रप्रस्थ नगर तथा राज्य का आधा भाग दे दिया । तुम लोग इन्द्रप्रस्थ चले गए । परन्तु कुन्ती ! मैं सच कह रहा हूँ, मेरे मन को जरा भी चैन न मिली । हर रोज़ दिन डूबने भी न पाता था कि तुम्हारे पुत्रों के किसी न किसी राजा को परास्त करने और एक नया देश विजित करने का समाचार आ जाता था । इससे मेरे हृदय की जलन बढ़ती थी । कुन्ती ! आज जिस प्रकार सब समझ में आ रहा है, उस प्रकार उस समय नहीं आया था । पाण्डवों का राज्य और सत्ता बढ़ने से मेरा कुछ बिगड़ नहीं रहा था; मेरे दुर्योधन के एक ग्राम में भी इससे कमी नहीं आ रही थी; तुम्हारे पुत्र मेरे दुर्योधन के प्रताप को जरा भी हानि नहीं पहुँचा रहे थे; परन्तु मेरे मन में यही विचार आता था कि पाण्डवों का तेज बढ़ने से दुर्योधन का तेज घट रहा है । पाण्डवों को दुर्योधन से सदा नीचे रहना चाहिए, यही मेरी अभिलाषा थी, और इस अभिलाषा का पोषण करते हुए मुझे ऐसा मालूम होता था कि मैं केवल अपने पुत्रों के प्रति कर्त्तव्य पालन कर रहा हूँ । आज स्पष्ट जान पड़ रहा है कि इस प्रकार का विचार करने में मेरे मन में पाण्डवों के तेजोद्वेप के सिवा दूसरी कोई भावना नहीं थी । पाण्डवों के अपने मार्ग पर

को आंखें होती भी कहां हैं ! दुर्योधन से मुझे स्नेह था, इससे उसकी सारी करतूतों को मैं आगे बढ़ने देता था। मैं सोचता था कि इस प्रकार मेरे लोभ को संतोष मिलेगा; परन्तु आज अब रोने से भी शान्ति नहीं मिल रही है।

“कुन्ती! एक बात और रह गई। जब सभा में भारी हाहाकार मच गया और दुःशासन जैसा बलवीर भी द्रौपदी का चीर खेंचते-खेंचते थक गया, तब मुझे विचार आया कि कहीं द्रौपदी मेरे पुत्रों को शाप देकर भस्म न कर डाले। इसलिए मैं सभा के बीच दौड़कर आया। यह संजय बैठा है। सभा में जाकर मैंने द्रौपदी को अपनी गोद में बिठाया और उसे प्रसन्न करने के लिए उसे और पांडवों को दासता से मुक्त कर दिया। कुन्ती! सच बात कह दूँ? सभा में लोग मेरी बड़ी स्तुति करने लगे; जैसे मुझे अपने पुत्रों का काम अच्छा न लगा हो और मैं द्रौपदी तथा पांडवों के साथ न्याय करने आया होऊँ। परन्तु बात ऐसी नहीं थी। मेरी इस उदारता में भी स्वार्थ था। गान्धारी! हम राजा लोग शत्रु को तड़पा-तड़पा कर मारने में अपनी कुशलता समझते हैं। चोट करने के साथ-साथ चोट की जगह पर ठंडे पानी के छींटे देने की भी हम व्यवस्था किये रखते हैं। ऐसा करने से लोगों की दृष्टि हमारी की हुई चोट की ओर न जाकर पानी के छींटों की ओर ही चली जाती है। लोगों का बड़ा समूह उस दुःख को भूल जाता है और हमें दूसरी बार फिर कभी चोट करने का अवसर मिल जाता है! मैंने विचार किया कि द्रौपदी योगमाया का अवतार है, कहीं मेरे पुत्रों को शाप न दे डाले, इसलिए भयभीत होकर मैंने उसे वरदान दे दिया और जब वह प्रसन्न हो गई तभी मेरे मन को शांति मिली।

“फिर भी मेरे पुत्रों को यह कब सहन हो सकता था कि पांडव इस प्रकार बचकर निकल जाय? और पुत्रों के संकेत पर नाचने

वाले मुझको भी यह कैसे सहन हो सकता था ? इसलिए पांडवों को फिर से जुआ खिलाया और बारह वर्षों के लिए बनवास दे दिया । गांधारी ! यह सब दुर्योधन ने किया, पर मन में मुझे भी यह अच्छा लग रहा था, इसमें कोई सन्देह नहीं । मुझे अच्छा न लगा होता तब तो उस दिन मैं उन्हें कदापि सम्मति न देता, बल्कि विरोध करता । विदुर ! गांधारी ! तुमने मुझे कई बार चेतावनी दी, पर मैं अन्धा सावधान न हुआ । आज जब मेरी दुष्टता और पामरता के परदे एक-एक करके उठ रहे हैं तब मैं सब कुछ समझ रहा हूँ । परन्तु आज इस समझ का लाभ क्या है ? मेरे पापो ! आओ, तुम एक-एक करके क्यों आ रहे हो ? सब इकट्ठे होकर आओ और मेरे हृदय को जितना दंश कर रहे हो, उससे अनेक गुना अधिक करो; दुनिया के सब सांप और बिच्छू तुम्हें अपना विष प्रदान करें । दुनिया की समस्त अग्नि तुम्हें अपनी ज्वालाएँ सौंपें; और हे पापो ! तुम मुझे दंश करो, मुझे जलाओ । यह धृतराष्ट्र इसी योग्य है । संजय ! मुझे हिमालय पर ले चलोगे ? कुन्ती ! मैं हिमालय की चोटी पर बैठकर गारे भारतवर्ष से कुछ कहना चाहता हूँ ।

“यह जयद्रथ क्यों आया है ? बेटा ! मेरे लिए तो तू भी पुत्र-समान है । मेरे पाप के छींटे तुझपर भी जा पड़े, अन्यथा सिंधु-राज जयद्रथ मेरी दुःशला को छोड़कर द्रौपदी पर क्यों दृष्टि डालता ! जयद्रथ ! तू शंकर का भक्त था । तेरा इतना तप था कि तू माँगता तो शंकर से तुझे मोक्ष भी मिल जाता । परन्तु तूने छोटी-सी शक्ति मांगी और अर्जुन के हाथ से मृत्यु को प्राप्त हुआ । जयद्रथ ! मेरी ओर क्या देख रहा है ?

“कुन्ती ! क्षमा करना । मैं फिर दूसरी तरफ चला गया । तुम्हारे पुत्रों को वन में भेजकर भी मुझे शान्ति न मिली । मेरे पत्र सदा इस प्रयत्न में रहते थे कि वन में भी पांडव किस प्रकार

पसन्द था। फिर तुम सब आये और हम सबने बड़े आडम्बर के साथ तुम्हारा स्वागत किया। गान्धारी ! तुम्हारा शकुनी तो उस दिन फूला नहीं समा रहा था।

“फिर—फिर—फिर दूसरा दिन हुआ। जुआ खेला गया। मेरा पुत्र दुर्योधन जुए में जीत गया। ऐं ? नहीं, नहीं, हार गया। कुन्ती ! तुम्हारे पुत्र जुए में हार गए ? नहीं, नहीं, जीत गए। जगत् में कई बार जीत हार से भी अधिक बुरी होती है और हार जीत से अधिक मूल्यवान होती है। मेरे पुत्र दुर्योधन ने युधिष्ठिर की लक्ष्मी को, उसके राज्य को, उसके दास-दासियों को, उसके भाइयों को और सती द्रौपदी को भी जीत लिया; परन्तु इन सब को जीत कर वह स्वयं अपनी मनुष्यता को भी खो बैठा। गांधारी ! मेरे पुत्र को शकुनी ने नष्ट किया। पर शकुनी को क्यों दोष दूँ ? यह दोष तो मेरा ही था। संजय ! द्यूत सभा में पासे किस प्रकार पड़ रहे हैं, यह मैंने तुमसे कितनी आतुरता से पूछा था, तुम्हें याद है ? मुझे यह अच्छी तरह याद है। सफेद आसन पर पड़ते हुए उन हाथी दांत के पासों का जब तुम वर्णन कर रहे थे तब मेरे आनन्द की सीमा नहीं थी। एक भी शस्त्र की भंकार किये बिना मेरे पुत्र ने जब पांडवों और द्रौपदी तक को दास बना लिया तब मुझे शकुनी के बुद्धि-वैभव पर सोने का कलश चढ़ता जान पड़ा। परन्तु यह आज समझ आ रहा है कि वह सोने का कलश भुलावा मात्र था। कुन्ती ! कुन्ती ! जब मैं यह याद करता हूँ कि सारे कुरुकुल के मुखिया, सारे कुरुकुल की लाज के प्रतिनिधि, सारे कुरुकुल की पवित्रता के संरक्षक मैंने स्वयं अपनी पुत्री समान द्रौपदी की लाज भरी सभा में लुट जाने दी तब मुझे अपने प्रति घोर तिरस्कार उत्पन्न होता है। और इस महापाप से मैं किञ्च जन्म में छूटूँगा, यह सोचते हुए मेरा मस्तिष्क थक जाता है। दुर्योधन ने यह जुआ न खेला

होता तो आज समस्त कौरव जीवित होते और हस्तिनापुर में आनन्द मना रहे होते। जुआ खेलने पर भी शर्त न रखी होती तो वे सौ भाई युधिष्ठिर के पार्श्व में शोभा दे रहे होते। शर्त रखने पर भी द्रौपदी को बाजी पर न रखा होता तो आज कौरव और पाण्डव इकट्ठे मिलकर समस्त भारतवर्ष को हिला देते, और द्रौपदी की बाजी लग चुकने पर भी मेरे दुःशासन ने उसका चीर-हरण न किया होता तो आज मेरी पुत्र-वधुओं के जीवन वीरान न बने होते और ऊजड़ अरण्य में डालियों और पत्तों से हीन टूँठ की तरह जल-जल कर मरने की अपेक्षा मैं अपने एक सौ पाँच पुत्रों के बाँच सुख की नींद सो जाता। परन्तु संजय ! जब मैं स्वयं ही बुरा हूँ तब और किसे दोष दूँ ? अपनी करनी का फल मैं न माँगूँ तो और कौन भोगे ? कुन्ती ! जब मेरे पुत्रों ने द्रौपदी की यह दशा की तब तुम्हारे हृदय के तो टुकड़े-टुकड़े हो गए होंगे। पर मैंने यह सब बड़े मजे से सुना और मन में प्रसन्न भी हुआ। मुझे यह भी विचार आया कि मुझे अन्धा कहने का अच्छा बदला लिया गया। मुझे उस दिन समझ न पड़ा कि पवित्र आर्याओं को जुए में जीतने वाले लोग अपने जीवन की ही समाप्ति करने वाले हैं। मैं उस दिन न जान सका कि पवित्र आर्याओं के बालों की फरफराहट सैंकड़ों वर्षों से जड़ें जमाये हुए वृक्षों को निमिष मात्र में भस्म कर डालती है। मुझे उस दिन पता न लग सका कि जो लोग भरी सभा में, खुली आंखों से और अपने ही हाथों से पवित्र आर्याओं का अपमान करके अपने-आपको गर्वित समझते हैं, वे काल के गाल में समाने जा रहे हैं।

“कुन्ती ! गांधारी ! इस घटना को आज भी जब मैं स्मरण करता हूँ तो जैसे मेरे चारों ओर भूतों का जमघट खड़ा होजाता है और मुझसे इसका जवाब मांगता है। और तो मेरे पास कोई जवाब है नहीं, केवल यही है कि मैं अन्धा था, लोभी था। लोभ

दुःखी हों और बारह वर्षों का अन्त होने पर भी किस प्रकार उनके वनवास का अन्त न हो। मैं तो सदा ही उनके पीछे रहा करता था। बारह वर्ष देखते-देखते बीत गए और तेरहवाँ भी खतम होने आया। पांडवों का कहीं भी पता नहीं था। तभी अचानक निरभ्र वज्रपात की तरह पाण्डव विराट में चमक उठे और हम सब चौंक पड़े। तेरह वर्षों के बाद भी पांडव कुशल-पूर्वक होंगे, इसकी मुझे तो कल्पना तक नहीं थी। पश्चात् जब अर्जुन ने विराट-राज्य की सीमा में कौरव-सेना को कुचला और अनेकों के वस्त्र उतार लिये तब तो मैंने अपने पुत्रों को काल के मुंह में समाते देखा। कुन्ती ! सच तो यह है कि उस दिन से मैंने अपनी नींद गंवा दी है और अब कब उसे फिर प्राप्त कर सकूंगा, यह नहीं कह सकता।

“गांधारी ! इसके बाद के दिन तेजी से बीतने लगे। सारे हस्तिनापुर के वातावरण में चंचलता और गर्मी आ गई। प्रतिदिन पांडवों से युद्ध करने की चर्चा छिड़ने लगी; प्रतिदिन दूत और प्रतिदूत आने-जाने लगे; प्रतिदिन विषभरे बाणों से भी अधिक दुष्पट्टाई संदेश विराट और हस्तिनापुर के बीच घूमने लगे; प्रतिदिन पुराने दवे हुए बैर का विष नई सज-धज से प्रकट होने लगा, और इन सबका साक्षी मैं धृतराष्ट्र, लोभ और विनाश-भय के बीच गोते खाने लगा। गांधारी ! पितामह और द्रोण ने जब मेरे पुत्रों और पांडवों के युद्ध का चित्र मेरे सामने खींचा और पांडवों को सन्तुष्ट करने का मुझसे आग्रह किया तब मैं पिघल गया। अपने पुत्रों का विनाश मैंने निकट देखा और संधि करने के लिए तैयार हो गया; पर मैं था धृतराष्ट्र ! मेरी आदत शुरू से ही ऐसी थी कि क्षणभर के लिए मैं दृढ़ हो जाता था, पर जैसे ही दुर्योधन आकर मुझे धमकाता था, वैसे ही मैं ढीला पड़ जाता था और उसके कहने पर आंखें बन्द करके चलता था।

बेटा दुर्योधन ! मैं तुझे रोक न सका । तुझे बुरा लगे ऐसा कुछ करने की शक्ति मुझमें नहीं थी । सम्भवतः तेरी योजनाएं मुझे मन में भाती होंगी और मैं तेरा छिपा संगी हूंगा; परन्तु बात केवल यही थी कि प्रकट होने का साहस मुझमें नहीं था ।

“संजय ! वह देखो, श्रीकृष्ण के रथ की आवाज सुनाई दे रही है । वह दिन तो मुझसे कभी भी नहीं भूला जायगा, जब श्रीकृष्ण संधि-पत्र लेकर आये थे । उस दिन सारे हस्तिनापुर में हलचल मच गई थी । मेरे पुत्रों की बेचैनी का तो पार हां नहीं था । भीष्म-द्रोण संधि की आशा रखकर बैठे थे । श्रीकृष्ण आकर क्या करेंगे और हमारी क्या दशा होगी, इसी विचार में मैं डूब गया था । शकुनी और दुर्योधन लगभग सारा दिन गुप्त विचार-विमर्श करते रहे । दुर्योधन बार-बार मेरे पास आकर एक यही बात कह जाता था कि पिताजी ! आप इस दुष्ट की बातों में न फंस जाइएगा । गांधारी ! तुम्हें याद होगा, तुमने स्वयं आकर उस दिन मुझे उलहना दिया था और दुर्योधन का त्याग करने का आग्रह किया था, परन्तु मुझसे यह न हो सका । मेरे मन की गहराई में ऐसा विचार उठ रहा था कि कदाचित् दुर्योधन अपने प्रयत्न में सफल हो जायगा और पांडव नष्ट हो जायेंगे ।

“संजय ! जब श्रीकृष्ण ने राज-सभा में आकर पांडवों की स्थिति हमारे सामने रखा तब थोड़ी देर के लिए मुझे ऐसा लगा कि पाण्डवों के साथ युद्ध करने में कोई सार नहीं है । परन्तु दुर्योधन को अपने निश्चय से हटाने की शक्ति मुझमें कहां थी ? मैंने उसे बहुत समझाया, पाण्डवों की शक्ति की बात कही, युद्ध के अनिष्ट उसके सामने उपस्थित किये, पर वह था दुर्योधन ! उसे मृत्यु का जरा भी भय नहीं था । हस्तिनापुर की राजगद्दी के लिए उसका हठ शूरवीर का हठ बन गया था । शत्रु के साथ सन्धि करके अपनी नाक कटाने की अपेक्षा मर जाने में उसे

वीरता मालूम हुई और मैं तो उसके शब्दों के आगे परास्त था। दुर्योधन की दुष्टता में भी वीरता और तेजस्विता थी। मेरी दुष्टता तो बीमारों की तरह दुर्बल थी। गान्धारी ! मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि तुम्हारी पवित्रता में जो तेज है, वैसा ही तेज दुर्योधन की दुष्टता में था और इसके विपरीत मैं बलहीन दुष्टता का दास था। दुर्योधन के जैसी सबल दुष्टता मुझमें होती तब तो मेरे पापों का कभी अन्त आ चुका होता और मैं ईश्वर की सृष्टि में कहीं-से-कहीं पहुंच गया होता। परन्तु आज मैं यहां पड़ा-पड़ा तड़प रहा हूं और मेरे अपने कर्म जो कि एक-एक करके मेरे सामने खड़े हो रहे हैं, उन्हें कुन्ती के सामने उपस्थित करके सुख प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहा हूं !

“कुन्ती ! श्रीकृष्ण आये और चले गये। उनके एक हाथ में सन्धि और दूसरे में युद्ध था। उन्होंने सन्धिवाला हाथ मेरे आगे किया; परन्तु मैं अन्धा उसे पकड़ न सका। श्रीकृष्ण का बड़प्पन और उनकी समझदारी, मेरे पापी हृदय से टकराकर वापस चले गये। मेरे पुत्रों का मृत्यु-लेख लिख लिया गया। श्रीकृष्ण ! तुम्हारे वचन सच्चे सिद्ध हुए। अन्धा धृतराष्ट्र कुरुकुल के आने वाले नाश को देख न सका। आज जब तुम सब अपने-अपने रास्ते पर लग चुके हो तब मैं अकेला अपने ही हाथों खड़ी की हुई इस वीरान सृष्टि का द्रष्टा बनकर जी रहा हूं। श्रीकृष्ण ! मैं तुम्हें भी पहचान न सका। तुम इस युग के महान् पुरुष हो, इसे मैं जान न सका। मैं तुम्हें पाण्डवों का सम्बन्धी और अर्जुन का मित्र ही समझता रहा। तुम्हारे कथन में पाण्डवों का, मेरे पुत्रों का, समग्र क्षत्रिय जनता का और सारे भारतवर्ष का कल्याण है, यह मुझे उस समय न दीख सका। मुझे उस समय यही प्रतीत होता था कि मेरे पुत्रों का स्वार्थ, अर्थात् पाण्डवों का अहित और पाण्डवों का स्वार्थ अर्थात् मेरे

पुत्रों का अहित । गान्धारी ! अभी कल तक मैं ऐसा ही समझता था । तुम्हारे प्रताप से आज और ही कुछ समझ पाया हूँ । आज मुझे दिखाई दे रहा है कि व्यक्ति का हित, समाज का हित और समस्त मानव जाति का हित, ये सब एक-दूसरे के विरोधी नहीं हैं । जब ये विरोधी जान पड़ते हैं तब या तो दृष्टि में दोष होता है या हिताहित के विचार में दोष होता है । श्रीकृष्ण ने कौरव-सभा में सिंहनाद करके घोषणा की; परन्तु मैं कान बन्द किये बैठा उसे कैसे सुनता ? श्रीकृष्ण ! आज तुम बहुत याद आ रहे हो !

‘कुन्ती ! मुझे गुप्तचरों ने बताया था कि श्रीकृष्ण तुमसे भी मिले थे । तुम्हारे हृदय में तो उस समय होली सुलग रही होगी ? तेरह वर्षों के अन्त में सिंह-समान पुत्र वनवास काटकर बाहर आये और मेरे जैसा हितैषी ताया उन्हें राज्य का अर्ध-भाग देने से इन्कार कर दे तब एक क्षत्राणी के हृदय की क्या दशा हो सकती है, इसकी कल्पना मैं कर सकता हूँ । कुन्ती ! मैं अभी तक नहीं समझ सका कि मुझमें ऐसा कौन-सा लोभ उत्पन्न होगया था कि पांडवों को पांच ग्राम देने से भी हमने इनकार कर दिया था ? मेरा वही दुर्योधन सारे हस्तिनापुर का राज्य छोड़कर आज पृथ्वी के एक कोने पर सोया हुआ है ! जब श्रीकृष्ण ने पूछा था तब उसने कहा था—“सुई की नोक के बराबर भूमि भी मैं पांडवों को नहीं दूंगा ।” आज मैं विपत्ति का मारा शतयूप के इस आश्रम में आया हूँ और मृत्यु को बार-बार आमन्त्रण दे रहा हूँ; पर उस दिन मुझे भी राज्य का अर्धभाग पांडवों को देने की सूझ न हुई । कुन्ती ! यह लोभ क्या वस्तु है ? मेरे पुत्र राज्य भोगते या पांडव, इसमें मुझे भेदभाव क्यों मालूम होता था ? गान्धारी ! यह पहली अभी तक हल नहीं हो रही है । कौरव जीतते तो मैं प्रसन्न होता पांडव जीतते, तो दुखी होता;

‘एक मेरे थे और दूसरे पराये थे; यह सब किसने समझाया था ?

पर नहीं, नहीं। सत्ता स्वयं ही बुरी चीज़ है। एक बार सत्ता प्राप्त हुई कि उसका मद चढ़ने लगता है। मनुष्य को शक्ति मिलने के साथ ही उसे पचाने का बल नहीं मिलता, यही दुर्भाग्य है। द्रव्य-शक्ति का मद, राज्य-शक्ति का मद, तप-शक्ति का मद, विद्या-शक्ति का मद, शरीर-शक्ति का मद—ये सब चढ़ने पर बड़े-बड़े लोग भी पागल हो जाते हैं। मुझे राज्य मिलते ही मेरे पुत्रों का मस्तिष्क फिर गया। राज्य प्राप्त करने के लिए शक्ति की आवश्यकता है, परन्तु उससे भी अधिक शक्ति चाहिए आवश्यकता पड़ने पर प्रसन्नता से राज्य त्याग देने के लिए। जो इस प्रकार राज्य प्राप्त कर सकता और इच्छानुसार गँवा सकता है, वही राज्य का स्वामी बनने के योग्य है; अन्य तो राज्य के दास हैं। इस प्रकार मैं और मेरे पुत्र राज्य के स्वामी नहीं, दास बने रहे। पाण्डव राज्य को गँवाना भी जानते थे और प्राप्त करना भी। इसलिए वे हस्तिनापुर के सच्चे स्वामी थे।

“कुन्ती ! गांधारी ! मेरी बात का रुख फिर दूसरी तरफ चला गया; परन्तु एक बात सच है। हस्तिनापुर के राज्य का मैं केवल अभिभावक था। उस राज्य को प्राप्त करने में मेरा ज़रा भी पसीना नहीं बहा था। मेरे हिस्से में उस राज्य के भोग-विलास आये, उसके कष्ट नहीं। ऐसा ही मेरे पुत्रों के साथ भी हुआ। जन्म लेते ही वे राजकुमार बने और राजकुमारों के सुख भोगने लगे। ऐसी अवस्था में बड़े अधिकारियों के उत्तराधिकारियों में जो निर्बलता, लोभ, ईर्ष्या, अभिमान, दंभ आदि अवगुण आ जाते हैं, वे मेरे पुत्रों में भी आगए और उसके परिणाम भी उन्हें भोगने पड़े। मेरे पुत्रों ने पाण्डवों को कष्ट दिये और वनवास के लिए भेज दिया। वे कष्ट और वनवास पाण्डवों के लिए तेज-स्विता का शिक्कालय बन गये और वहीं पाण्डवों को क्षत्रियत्व

की शुद्ध दीक्षा मिली। इसलिए वास्तव में मेरे पुत्रों ने ही पाण्डवों को तेजस्वी बनने में सहायता की। पर यह तो आज समझ में आ रहा है। उस समय तो पाण्डवों से वैर निकालने में मुझे भी गुप्त आनन्द मिलता था और ऐसा करने से ही हम कृतार्थ होंगे, ऐसा हमें परम विश्वास रहता था। आज जब जीवन के अंत पर आ गया हूँ, मुझे ऐसा अनुभव हो पाया है कि वैर निकालने की इच्छा रखने वाले को अन्त में हाथ मलते रह जाना पड़ता है। उस समय यह बात किसी ने कही होती तो भी मैं न मानता; क्योंकि हस्तिनापुर के राज-सिंहासन पर बैठा था।

“यह सब जाने दो। कुन्ती ! श्रीकृष्ण वापस चले गये और युद्ध का शंखनाद होगया।”

“बाद की बात तो तुम लोगों को भी विदित है। अठारह दिन युद्ध होता रहा और उन अठारहों दिनों का इतिहास संजय ने मुझे सुनाया। युद्ध के दिनों में किसी-किसी समय मुझे विचार आता था कि कदाचित् भीष्म सारे पाण्डवों को मार डालें और मेरे पुत्रों को विजय प्राप्त हो जाय ! कदाचित् द्रोण या कर्ण अर्जुन को मार डालें और फिर अन्य पाण्डव युद्ध छोड़कर भाग जाय ! परन्तु मेरे मन में निरंतर कोई यही कहता रहता था कि जहां श्रीकृष्ण और अर्जुन हैं, वहीं विजय है। यह गांधारी यही है। कुन्ती ! तुम्हें पता है ? मेरा दुर्योधन संग्राम में जाने से पहले इसका आशीर्वाद लेने गया था। परन्तु गांधारी इस प्रकार आशीर्वाद कैसे दे सकती थी ? यह तो सत्य की प्रतिमा है। मैं इसका पति अवश्य हूँ; परन्तु इसकी पवित्रता से भय खाता हूँ। कहीं मैं इससे जल न जाऊँ ! गांधारी ने दुर्योधन को आशीर्वाद नहीं दिया। केवल यही कहा कि जिस पक्ष में धर्म होगा, उसी पक्ष की विजय होगी। तभी मैंने दुर्योधन की विजय की आशा छोड़

दी थी। गांधारी के वचन में इतनी शक्ति है।

“और हुआ भी वही। संजय ! अठारह दिनों में मुझे बीच-बीच में आशा के स्वप्न आ जाते थे। मैंने जब यह सुना कि भीष्म पितामह ने पाण्डवों का संहार करने का दुर्योधन को वचन दिया है तब क्षण भर मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि दुर्योधन विजयी होगा; भगवान् द्रोणाचार्य ने जब चक्रव्यूह में सुभद्रा के पुत्र अभिमन्यु को भूमिशायी बना दिया और अर्जुन ने जयद्रथ को मारने या स्वयं मरने की प्रतिज्ञा की तब मुझे ऐसा लगने लगा कि अब अर्जुन जरूर जल मरेगा और मेरे पुत्रों की विजय होगी ! कुन्ती ! जब कर्ण ने युधिष्ठिर महाराज को घायल किया और पाण्डवों की छावनी में अर्जुन युधिष्ठिर को वध करने के लिए तैयार हुआ तब यह सुनकर मेरा हृदय गद्-गद् हो गया और मुझे अपने पुत्रों के लिए नई आशा उत्पन्न हुई। संजय ! गुरुपुत्र अश्वत्थामा ने जब पाण्डवों की छावनी में रात्रि को प्रवेश करके महा संहार किया तब मुझे प्रतीत हुआ कि सारे पाण्डव हताश होकर प्राण त्याग कर देंगे और कदाचित् दुर्योधन मृत्यु-शय्या पर भी शत्रु के विनाश का संतोष लेकर जायगा। परन्तु यह सारी आशा धुएँ के बादल की तरह सिद्ध हुई। मैंने तो यह आशा की थी कि दुर्योधन कुरुक्षेत्र से लौट आकर मेरे पैरों पर गिरेगा और गांधारी की गोद में सिर रखेगा; परन्तु उसने पृथ्वी माता की गोद में सदा के लिए सिर रख लिया और युद्ध के अंत में श्रीकृष्ण मेरे पास आये।

“गांधारी ! श्रीकृष्ण ने आकर मेरा हृदय तोड़ डाला। झूठी आशा पर जो रहा धृतराष्ट्र आशा-हीन हो गया और हृदय वज्र के समान बन गया। कुन्ती ! मानोगी नहीं, परन्तु उस दिन दुर्योधन जैसे पुत्र को खोकर भी मैं रो न सका। मेरी आँखों में

आँसु की एक बूँद भी उस दिन न आई। मैं मूक बन गया। संजय वैद्य को बुलाकर लाये और वैद्य ने मुझे रुलाने के लिए कई उपचार किये, परन्तु रुलाई कैसे आती? पत्थर के हृदय में से पानी की एक बूँद भी निकले, तभी तो !

“और फिर कुन्ती ! एक सौ पुत्रों कोरण में सुला देने पर भी मुझे अपने पापों के प्रति तिरस्कार उत्पन्न न हुआ। गांधारी को श्राकृष्ण की सुनाई खबरों से दुःख तो हुआ; परन्तु यह तो योगमाया है। इसका सारा जीवन तपे हुए सोने की तरह है, जिसमें किसी तरह की मिलावट या अशुद्धि नहीं होती। इसीलिए दुर्योधन का समाचार सुन कर भी इसका धैर्य नहीं छूटा। इसे तो ऐसे ही परिणाम की आशा थी।

“कुन्ती ! लोभी धृतराष्ट्र को तुमने नहीं पहचाना। मेरे सारे स्वप्न भंग हो गए, मेरी आशाएँ धूल में मिल गईं, मेरे मनोरथ मन में ही रह गए। फिर भा जब पाण्डव हस्तिनापुर में आये और युधिष्ठिर मेरे चरण-स्पर्श करने आया तब मैंने उसे और उसके भाइयों को शाप ही दिया। उनका सर्वनाश हो जाय, ऐसी मैंने कामना की। परन्तु यह तो धृतराष्ट्र का शाप था ! मेरे शाप में शक्ति कहाँ से होती ? मेरा शाप गांधारी के शाप की तरह थोड़े ही था, जिसके आगे श्राकृष्ण को भी सिर झुकाना पड़ता। मेरा शाप तो मेरे ही साथ आकर टकराता था। कुन्ती ! बन्दर बूढ़ा होने पर भी उछल-कूद नहीं भूलता, ऐसा कहा जाता है। मेरे पुत्र जब सदा के लिए सो गए तब मेरा संसार सूना होगया; जीवन में रस नहीं रहा; भाग्य में जो थोड़े दिन बदे थे, वे बिताने रह गए। परन्तु मैं धृतराष्ट्र था; दुर्योधन चला गया, पर मेरी दुष्टता थोड़े ही ले गया ! मेरे पुत्र चले गये और यह मैं जानता था कि अब उनमें से एक भी पुत्र हस्तिनापुर का राज्य भोगने के लिए जीवित नहीं होगा; फिर भी मैंने जब भीम को

दिखावटी स्नेह से बाहु-पाश में लिया तब उसे दबा कर मार डालने का प्रयत्न किया। पर सफलता न मिली। भोम के स्थान पर भीम की लोहे की प्रतिमा मेरे हाथ लगी और मैं मूर्ख, मनुष्य की चमड़ी के स्पर्श और लोहे के स्पर्श के भेद को परख न सका। यह मेरा अन्तिम दाँव था।

“इसके पश्चात् कुन्ती ! तुम्हें पता ही है। जीवन भर किये हुए ये सारे कर्म—जीवन भर पुत्र के समान वात्सल्य से पोसे हुए ये विचार मेरे सम्मुख आने लगे और मुझे काटने लगे। उस समय मैं क्या जानता था कि आगे चल कर ये मुझे कुतर-कुतर कर खायेंगे ! हस्तिनापुर का सारा महल इस भूत-माला से घिर गया और मुझसे इसका उत्तर मांगने लगा। उसके वे महल, उसके वे कमरे, उसके वे शीशे और पलंग, उसके वे मिहामन, उसके वे सारे सुख-साधन, मुझे खाने को दौड़ने लगे और जिन महलों में इतना जीवन व्यतीत किया था, उनमें एक रात भी एक युग के समान लम्बी मालूम होने लगी। कुन्ती ! पाण्डवों ने मेरी सेवा करने में कोई कमी न रखी; दुर्योधन ने मुझे जो सुख दिया, उसकी अपेक्षा अधिक सुख मुझे मिले, इसके लिए युधिष्ठिर की चिन्ता और चेष्टा मैंने स्पष्ट देखी ; मेरे सुख-साधन बढ़ गए ; परन्तु मुझे ये सब अधिक असह्य हो गए, इसीलिए मैंने वनवास ले लिया।

“कुन्ती ! जब मैं चला था तब मेरे मन में था कि हस्तिनापुर छोड़ कर यह सब भूल जाऊँगा और तपश्चर्या में मन को लगा-ऊँगा ; परन्तु यह मेरा भूल था। जीवन भर पाल-पोसकर बड़े किये हुए मेरे ये वच्चे मुझे इस प्रकार कैसे छोड़ देते ? मेरे कृत्य मेरे मस्तिष्क में घूमते रहते हैं और विचित्र प्रकार की उल-झन में मुझे डाले रहते हैं।

“कुन्ती ! आ—ह ! अब हृदय कुछ हलका हुआ। अब यह

धृतराष्ट्र असली रूप में तुम्हारे सामने खड़ा है। यदि मैं तुमसे यह सब कहे बिना मर गया होता तो जब तुम लोग मुझे जलाते तब सारा शरीर भस्म होने पर भी यह नन्हा-सा हृदय किसी तरह भस्म न होता। आज अब मैं मरूँगा तो मुझे इस बात का सन्तोष होगा कि अन्त में मैंने कुन्ती के आगे हृदय खोल कर बातें कीं।”

कुन्ती धीरज के साथ बोली—“आप बहुत देर से बोल रहे हैं, इस कारण थक गए हैं। अब क्षण भर शय्या पर सो जाइये और कुछ कहना हो तो कल प्रातःकाल कहियेगा।”

“नहीं, नहीं, मेरी बातों का इस प्रकार अंत नहीं हो सकता। अभी तो अन्दर से ऐसी-ऐसी बातें उठ रही हैं, जिनको मैं जानता तक नहीं। फिर तुम्हें क्या कहूँ? बस, अब बस हो गया। तुम तीनों सुख से सो जाओ।”

संजय बोला—“महाराज ! पहले आप सो जाइए, फिर हम जाकर सो जायेंगे।”

संजय के कहने पर धृतराष्ट्र ने शय्या पर लेटकर करवट बदल ली।

एकाएक आश्रम में चिल्लाहट सुनाई दो—“भागो - भागो, चारों ओर दावानल लग गया है। भागो भागो !”

चिल्लाहट सुनकर संजय चौंक पड़ा, “देवि ! दावानल लगने की पुकार सुनाई दे रही है। अब हम क्या करेंगे ?”

गांधारी के उत्तर देने से पहले ही धृतराष्ट्र करवट बदलते हुए बोले, “देवि से क्या पूछ रहे हो ? पूछो इस धृतराष्ट्र से। पगले संजय ! यह दावानल तो ईश्वर का भेजा हुआ मालूम हो रहा है। कुन्ती ! मेरे हर्ष का पार नहीं है। परमात्मा ने मुझ पर दया की ! अग्निदेव ! आओ, दौड़ कर आ जाओ ! ईश्वर तुम्हारे पंखों में पवन-वेग भर दें। गांधारी ! तुम और कुन्ती

संजय के साथ चली जाओ। मैं तो प्रभु की कृपा का स्वागत करके कृतार्थ हो रहा हूँ। संजय ! जल्दी करो।”

“महाराज !” गांधारी ने कहा—“आपने आयु साथ बीतने पर भी गांधार-पुत्री को नहीं परख पाया ! मैं तो वही हूँ, जहाँ महाराज हैं। जीवन में आपके साथ बँधी हुई हूँ और मृत्यु में भी अपने ही साथ समझिये। गांधार की लड़कियों को जीना भी आता है और मरना भी।”

“महाराज !” कुन्ती बोली, “मुझे संजय के साथ जाना होता, या दूसरा स्थान खोजना होता तो मैं अपने पुत्रों को छोड़ कर आपके साथ ही क्यों आती ? मैं वृष्णि-कुल की कन्या हूँ; मेरे भाई श्रीकृष्ण सारे संसार का संहार कराके वृत्त की छाया में एक भील के बाण से मर गए। मैं पाण्डु की वधू हूँ। अपने युधिष्ठिर को राज-गद्दी पर छोड़ कर आई हूँ। अतएव मुझे कोई कामना नहीं रही। आज मृत्यु स्वयं मिलने आरही है और महाराज तथा गांधारी उसके स्वागत के लिए खड़े हैं, फिर मैं पीछे कैसे हटूँ ? जगत की सारी धूप-छाँह देखली है, अब किसी तरह की भूख नहीं रही। जिस प्रकार आप के साथ हस्तिनापुर छोड़ा है, उसी प्रकार आप के साथ संसार छोड़ कर अपने को भाग्य-शालिनी समझूँगी। संजय ! तुम सुख से जाओ।”

इस प्रकार बातें करते-करते ही गरम पवन वेग से चलने लगा और दावानल की लपटों की आवाज सुनाई देने लगी। धृतराष्ट्र बोले, “संजय ! जल्दी करो। तुम चले जाओ। हस्तिनापुर में जाकर महाराज युधिष्ठिर से कहना कि ‘पापी धृतराष्ट्र पर अन्त में प्रभु ने दया कर ही दी।’ जाओ, विलम्ब न करो।”

“महाराज ! यह अग्नि आ पहुँची !”

“अग्निदेव ! पधारिये, पधारिये। आज मेरे अहोभाग्य हैं। कुन्ती ! गांधारी ! अग्निदेव से प्रार्थना करो कि मुझे छूकर वे

ठंडे न हो जायं। अग्निदेव ! मेरे जैसे पापी को जलाते हुए आप सकुचाइयेगा नहीं। गंगा और आप संसार को पवित्र करनेवाले हैं। गंगा से यह हृदय न धुल सका, अब आप भी मुझे छोड़ देंगे तो मैं कहां जाऊंगा ? गांधारी ! कुन्ती !”

“महाराज ! मुझे अग्नि लग गई है। गान्धारी का आपको अन्तिम प्रणाम ! कुन्ती—”

“कुन्ती ! कुन्ती !”

“महाराज ! मैं भी जल उठी हूं। महाराज ! आपको कुन्ती का अन्तिम प्रणाम !”

“दोनों चली गईं ! गान्धारी से तो अग्निदेव ! आप स्वयं भी पवित्र हुए होंगे, परन्तु मैं तो आपको तब सच्चा जानूंगा जब आप इस धृतराष्ट्र को पकड़ेंगे। आगये, आगये ! धीरे-धीरे क्यों आ रहे हैं ? मुझे जलाने में तो देव ! आपकी पूरी परीक्षा होनी है। आगये, आगये ! स्वागत !—बेटा दुर्योधन ! तू खड़ा है ? मैं आया... यह... आ... पहुंचा !”

×

×

×

गांधारी, कुन्ती और धृतराष्ट्र के शरीर दावानल में जलकर भस्म हो गए।

श्रीकृष्ण

: १ :

पाण्डवों के सलाहकार

पाण्डवों के द्रौपदी से विवाह करने के बाद धृतराष्ट्र ने उन्हें फिर से हस्तिनापुर में बुला लिया और राज्य का आधा भाग उन्हें दे दिया। पाण्डवों ने इन्द्रप्रस्थ में अपना राज्य स्थापित किया।

पाण्डव वीर-पुत्र थे, हिमालय के अरण्यों में उनका जन्म हुआ था, तपोवन के वातावरण में उन्हें जीवन के आदि संस्कार प्राप्त हुए थे, कुंती जैसी क्षत्राणी का दूध पीकर वे बड़े हुए थे, कृपाचार्य और द्रोणाचार्य जैसे समर्थ गुरुओं ने उन्हें विद्या प्रदान की थी।

फिर भी आज तक वे बिना राजपाट के भटकते रहे थे। दुर्योधन और उसकी ईर्ष्या पाण्डवों के पीछे पड़ी हुई थी। हस्तिनापुर की राजगद्दी को सुशोभित करने योग्य पाण्डव गुप्तवेश में मारे-मारे फिर रहे थे और जैसे-तैसे जीवन बिता रहे थे। अपने क्षात्रतेज को सिंहासन पर से दीप्त करने का उन्हें अवसर ही नहीं मिला था।

आज प्रथम बार उन्हें वह अवसर मिला। इन्द्रप्रस्थ के सिंहासन पर महाराज युधिष्ठिर राज्य की बागडोर किस प्रकार थामते हैं, इस ओर केवल प्रजा की ही नहीं, अपितु सारे

भारतवर्ष के राजा-महाराजाओं की दृष्टि लगी थी। दुर्योधन की अभिलाषा थी कि पांडव राज्यकर्ता के रूप में असफल सिद्ध हों और प्रजा का हृदय उसकी ही ओर बना रहे। पाण्डवों की यह अभिलाषा थी कि महाराज युधिष्ठिर की धर्म-मर्यादा प्रजा के हृदय-तल तक पहुँच जाय और रक्त के मद तथा राज्य के मद में चूर दुर्योधन का गर्व गलित हो।

ऐसी परिस्थिति में इन्द्रप्रस्थ की राजसभा सबका ध्यान खींचे, यह स्वाभाविक था। इस राजसभा की रचना मय नाम के एक दानव ने की थी। युधिष्ठिर का यह सभा-भवन, इन्द्र, वरुण, कुबेर आदि सबके सभाभवनों से श्रेष्ठ था। स्थापत्य और कला की जितनी भी कुशलता दानवों में थी, वह मारी मय दानव ने इस सभा-निर्माण में खर्च कर दी थी। देश-विदेश के अनेक लोग इसे देखने के लिए आते थे और आश्चर्य-चकित होकर लौटते थे।

युधिष्ठिर की यह राजसभा केवल ईंट-चूने की रचना नहीं थी, बल्कि वह देश-विदेश के महापुरुषों का संगम-स्थान था। युधिष्ठिर की सभा में व्यास और जैमिनि जैसे द्रष्टा आते और अपनी आर्ष दृष्टि का प्रकाश डालते थे; नारद मुनि जैसे विश्व परिव्राजक आते और विश्व के महा प्रश्न उपस्थित करते थे; द्रुपद और विराट जैसे महाराजा आते और भारतवर्ष के नरेन्द्र-मंडल के मंतव्य सामने रखते थे; श्रीकृष्ण जैसे युगपुरुष आते और मानव-जीवन के अनेक गूढ़ प्रश्नों पर युगदृष्टि का प्रकाश डालते थे।

इसके सिवा भीम, अर्जुन आदि सदा दिग्विजय करने के लिए जब निकलते थे तब चारों दिशाओं में से नये परिचय, नये विचार, नई दृष्टि, नई बातें और बहुत कुछ लेकर आते और सभा के जल को गंदा न होने देकर निर्मल रखते थे। इन्द्रप्रस्थ

की दीवारों पर नित्यप्रति नये विचार टक्कर लगाते और पुरानी धूल को धोकर लौट जाते थे। पाण्डवों की बुद्धि नित्य नये परिचयों से सुसंस्कृत और तीक्ष्ण हो रही थी। अपने समान पद के दौरे अपने से उच्च लोगों से नित्य मिलते रहने से महाराज युधिष्ठिर को राज्य-मद चढ़ता ही नहीं था और चढ़ता भी तो तुरन्त धुल जाता था।

×

×

×

एक बार नारदजी घूमते-फिरते इन्द्रप्रस्थ में आ पहुँचे। उनके हाथ में समग्र विश्व की शांति साधने की शक्ति रखने वाली वीणा थी, उनके मुख में समग्र विश्व की शान्ति का मंत्रोच्चारण था। नारदजी के आने का समाचार सुनकर युधिष्ठिर एकदम उठ खड़े हुए और अर्घ्य लेकर सामने उपस्थित हुए। उन्होंने नारद मुनि का पूजन किया, उनके चरणों में शीश नवाया और फिर उन्हें एक उच्च आसन पर बिठाकर हाथ जोड़कर खड़े हो गए।

“पाण्डु-पुत्र युधिष्ठिर ! सकुशल हो न ?” नारदजी ने पूछा।

युधिष्ठिर ने उत्तर दिया, “महामुनि ! जहां आपकी कृपा हो, वहां कुशल तो होनी ही हुई। मेरे अहोभाग्य कि आज यहां आपके चरण पड़े। कहिए, आज्ञा ?”

“राजन् !” नारद बोले, “आज्ञा तो कुछ भी नहीं है; परन्तु तुम जैसे राजा को आज्ञा न दी जाय तो फिर दी भी किसे जाय ?”

युधिष्ठिर ने कहा—“महाराज ! आज्ञा कीजिये। आपकी आज्ञा तो मेरे जैसों के लिए जीवन का एक आनन्द है।”

“राजन् !” नारद बोले, “आज यदि सारे भारतवर्ष में कोई बात समाज को पीड़ित कर रही है तो वह राजा-महा-

राजाओं का मद है। अपने ही एक भाई दुर्योधन को देखो। तुम्हारे भीम को विष खिलाते उसका हृदय जरा भी न कांपा; तुम्हें जीवित जला देने का विचार करते उसे जरा भी लज्जा न आई। वह वही समझता है कि धृतराष्ट्र का रुधिर ही रुधिर है, पांडु का रुधिर तो सफेद-पीला पानी है। आज तुम्हें राज्य का अर्ध भाग मिला है, इससे खुश न होना। इस समय वह हस्तिनापुर में बैठे-बैठे इन्द्रप्रस्थ के तुम्हारे शयनागार में निकलने वाली सुरंगें खुदवा रहा होगा। फिर भी दुर्योधन अच्छा है। उसमें ईर्ष्या है, पर मद कम है। इसकी अपेक्षा बहुत अधिक मदमत्त राजा पड़े हुए हैं और पृथ्वी को पीड़ित कर रहे हैं।”

युधिष्ठिर ने नम्र भाव से पूछा, “महाराज ! मैं इस विषय में कुछ कर सकता हूँ ?”

नारदजी ने तुरन्त उत्तर दिया, “अवश्य ! तुम इन सब राजाओं का दर्प चूर्ण कर सकते हो। तुम धर्मपुत्र हो। सारे देश के ऋषि-मुनि तुमसे धर्म-राज्य की स्थापना की आशा कर रहे हैं। ये सारे मदमत्त राजागण मत्ता के मद में अंधे बने हुए हैं और प्रजा को पीड़ित करने में कोई कमी नहीं रख रहे हैं। लोगों से बड़े-बड़े कर वसूल करके, मनमाने ढंग से उड़ाते हैं; छोटे-छोटे राजाओं को अपने सेना-बल से डराकर, उनके स्वामी बन जाते हैं। इन समस्त राजाओं को तुम अपना प्रताप दिखाओ। एक राजसूय यज्ञ करके तुम सावभौम बनो और धर्म-राज्य कैसा हो सकता है, इसका आदर्श भारतवर्ष में फिर से उपस्थित करो। युधिष्ठिर ! महाराज पांडु स्वर्ग में बैठे-बैठे तुम्हारे इस कार्य के लिए तुम्हें आशीर्वाद देगे।”

युधिष्ठिर बोले, “आप महात्मा हैं। अभी तो कल ही मैं राजगद्दी पर बैठा हूँ। मुझे ऐसा नहीं प्रतीत होता कि इतने ही समय में मैं राजसूय यज्ञ का अधिकारी बन गया हूँ। महाराज !

मैं तो आपसे यही मांगता हूँ कि यह पद मुझे अंधा न बनाए, इस सिंहासन पर बैठकर मैं उड़ने वाला न बन जाऊँ, अपनी प्रजा का तिरस्कार करने वाला न बन जाऊँ; इस सिंहासन पर बैठे रहने पर भी मुझे अपनी स्तुति चुभे; अपनी निंदा मैं सुन सकूँ, और उससे सार निकाल सकूँ; किसी पर अत्याचार न करूँ। गरीबों की आवाज सुनने के लिए मेरे हृदय के द्वार सदा खुले रहें, मेरा खजाना प्रजा के हित के लिए सदा खुला रहे, मैं प्रजा के सुख में सुखी और दुख में दुखी रहूँ। मैं अपने आपको प्रजा का संरक्षक मानूँ। इतना सब यदि मैं आपके आशीर्वाद से कर सका तो मैं यही समझूँगा कि मैंने राजसूय यज्ञ कर लिया।”

नारदजी ने विचार करते हुए कहा—“युधिष्ठिर ! तुम्हारी बात सच है। तुम इस प्रकार राज्य करोगे तभी माना जायगा कि तुमने धर्मराज्य की स्थापना की है। परन्तु इतना करके ही तुम बैठ गहो, यह ठीक नहीं है। यह सब तो तुम कर ही रहे हो और सदा करते रहो; परन्तु यदि तुम्हारे आस-पास सारे मदन-मत्त राजा आनन्द मनाते रहेंगे तो तुम अपने धर्म-राज्य को संकट में समझना। तुम राजसूय यज्ञ करके सार्वभौम पद प्राप्त करो। तुम धर्मराज्य के सुन्दर स्वप्न देखते हो, इसीसे इस यज्ञ के लिए तुम्हारा अधिकार सिद्ध होता है। तुम्हारी शक्ति केवल इन्द्रप्रस्थ के चारों कोनों में सीमित रहे, यह उचित नहीं है। तुम जैसे अधिकारी पुरुषों को तो अन्य अनेक राजाओं को अपने साथ लेकर सारे युग को बदल देना चाहिए। बोलो, ठीक है न ?”

युधिष्ठिर बोले—“आपका आग्रह है तो मैं निश्चिन्त होकर विचार करूँगा। अपने भाइयों की सलाह लूँगा और अपने कुशल सम्मतिदाता श्रीकृष्ण से पूछकर जो उचित जान पड़ेगा, अवश्य करूँगा।”

नारदजी उठते-उठते बोले—“जो उचित जान पड़े, वही करो। मैं तो तुम्हें राजसूय यज्ञ का अधिकारी समझता हूँ। हम ऋषि-मुनियों को बहुत समय से इसके चिह्न दिखाई दे रहे हैं कि तुम्हारे हाथ से ही इन सब मदोन्मत्त राजाओं का गर्व गलित होनेवाला है। मैं विश्व के कल्याण के लिए तुम्हारे सामने यह बात रख रहा हूँ। मुझे विश्वास है कि हमारे युग की गति को ठीक-ठीक पहचानने वाले श्रीकृष्ण भी मेरे ही मत की पुष्टि करेंगे। तुम जैसे पांडु के एक पुत्र को राजगद्दी मिली है, इसकी हमारे लिए विशेष कीमत नहीं है। हम चाहते हैं मदोन्मत्त राजाओं के भार से पीड़ित पृथ्वी को तुम्हारे द्वारा बचाना। आज जहाँ लोक-जीवन वीरान पड़ा है, वहाँ तुम हरी-भरी फुलवाड़ी खड़ी कर दो, यही तुम्हारी और इन्द्रप्रस्थ की राजगद्दी का मूल्य है। वैसे तो करोड़ों राजा हुए हैं और उनके कलेवर पृथ्वी माता के गर्भ में समा गए हैं। समय की पुस्तिका में उनका नाम-निशान भी नहीं है! अच्छा राजन्! अब बिदा लूंगा।”

“महाराज!” युधिष्ठिर ने कहा, “इतनी जल्दी? थोड़ा विश्राम तो कर लीजिए।”

नारद हंसते हुए बोले, “मुझे ही नहीं, अपितु सारे देश को विश्राम देने का तुम्हें अधिकार है, इसीलिए तो मैंने आकर तुम्हें कहा है। मुझे तो यह वीणा विश्राम दे देती है और आवश्यकता पड़ने पर मानवों से निर्दोष विनोद करके हंस लेता हूँ, जिससे थकावट उतर जाती है।”

इतना कहकर नारद जी चल दिये।

x

x

x

“महाराज श्रीकृष्ण!” युधिष्ठिर बोले—“मेरा और मेरे भाइयों का यह निश्चय है कि आपकी सम्मति के बिना एक पग भी आगे न बढ़ाना। नारदजी का आग्रह मैंने आपको सुना

दिया। मेरे भाई, मेरी प्रजा और यह द्रौपदी भी मुझसे आग्रह कर रही है।”

“द्रौपदी भी सहमत है ?” श्रीकृष्ण ने पूछा।

सहदेव बोले—“द्रौपदी तो अवभृथ स्नान* करने के लिए आतुर हो रही है।”

युधिष्ठिर ने कहा—“यह सच है कि ये सब मुझसे आग्रह कर रहे हैं, परन्तु श्रीकृष्ण ! यदि मैं तराजू के एक पलड़े पर इन सबका आग्रह और दूसरे पर आपके एक सामान्य शब्द को रखूँ तो मेरे लिए तो आपके शब्द का ही भार अधिक होगा। द्रूपद की सभा में जब हमें कोई भी नहीं जानता था तब आपने हमें अपनाया और बड़े-बड़े राजाओं की आंखें थका देने वाली वस्तुएं आपने हमें भात में दीं। अभी कल की बात है। खाण्डव वन में नागों का संहार करने में अर्जुन के पीछे आपकी ही शक्ति थी। श्रीकृष्ण ! सत्य कहता हूँ, आप केवल हमारे मामा के पुत्र नहीं हैं, आपने हमारे जीवन में वह स्थान ले लिया है, जो कभी मिट नहीं सकता। मेरा और मेरे भाइयों का यदि उत्कर्ष होगा तो आपके ही द्वारा होगा। इसलिए श्रीकृष्ण ! इस राजसूय के विषय में मैं आपकी स्पष्ट सम्मति के अनुसार ही चलना चाहता हूँ।”

श्रीकृष्ण बोले—“यदि तुम सब की इच्छा है, नारद का आग्रह है और स्वयं महाराज युधिष्ठिर को कोई दुविधा नहीं है तो राजसूय यज्ञ कर लेना चाहिए।”

युधिष्ठिर आगे बढ़कर कहने लगे—“महाराज ! यह बात नहीं है। हमारी इच्छा मन में रह सकती है, नारदजी का आग्रह एक ओर रखा जा सकता है। आज की परिस्थिति में राजसूय

*यज्ञ के अन्त में राजा और रानी के अनेक पवित्र जलों से करने वाला स्नान।

यज्ञ करना उचित जान पड़े तो आप 'हां' कह दीजिए। आप निश्चय जानिये 'हां' या 'ना' का निर्णय आप ही पर अवलंबित है।”

श्रीकृष्ण शान्ति-पूर्वक बोले— “तब मुझे तो तुम्हारे इस यज्ञ में एक बड़ी बाधा दिखाई दे रही है।”

भीम ने आतुर होकर पूछा—“कौन-सी ?”

श्रीकृष्ण बोले—“तुम जरासंध को जानते हो ?”

भीम ने उपेक्षा से पूछा—“कौन, गिरिव्रज का जरासंध ?”

सहदेव बोला—“पांचाली के स्वयंवर में जिसने घुटने टेके थे, वह ?”

श्रीकृष्ण ने कहा—“हां, वही। परन्तु भीमसेन ! वह ऐसा व्यक्ति नहीं है कि तुम और सहदेव उसे हंसी में उड़ा दो। आज है तो वह अस्सी बरस का बुढ़ा; परन्तु याद रखना कि हमारे-तुम्हारे जैमों की अच्छी तरह खबर ले सकता है !”

युधिष्ठिर चिंतातुर होकर कहने लगे—“जरासंध के विषय में आप क्या कहना चाहते हैं ?”

“जबतक यह जरासंध है तबतक तुम्हारा राजसूय यज्ञ शान्ति-पूर्वक नहीं हो सकेगा।” श्रीकृष्ण बोले।

“इतना दुष्ट है जरासंध ?” नकुल ने कहा।

“दुष्ट तो है, साथ ही बलवान् भी।” श्रीकृष्ण बोले— उसके किये हुए मेरे घाव अभी तक भरे नहीं हैं। हम यादवों से मथुरा छुड़वाने वाला यही जरासंध है। आज इस ओर के राजाओं में जरासंध को सार्वभौम पद प्राप्त है। तुम्हारे राजसूय यज्ञ करने से उसका अचल सिंहासन डोल उठेगा। जब तक वह जीवित है तब तक तुम्हारा राजसूय यज्ञ नहीं हो सकता।”

अर्जुन बोला—“हमारे राजाओं ने उसका सार्वभौम पद स्वीकार किया है ?”

श्रीकृष्ण ने कहा—“भाई ! तुम क्यों भूलते हो ? सार्वभौम पद क्या सबके स्वीकार करने पर ही मनुष्य धारण करता है ? सार्वभौम होने वाला क्या सबके हृदय खोलकर देखने बैठा है ? वह अपनी बलवार के बल पर ही अपना पद स्थापित करता है । राजागण मन में भले ही बड़बड़ाते रहें, उनकी गर्दनें दबा देना ही सार्वभौम पद है । फिर किसी राजा ने जरा भी गर्दन को हिलाया-डुलाया तो उसे दबोच देना ही पर्याप्त है ।”

“यह तो बड़ा अत्याचार कहा जायगा,” युधिष्ठिर बोले ।

“यह तो स्पष्ट है” श्रीकृष्ण ने कहा—“इस प्रकार का सार्वभौम पद अत्याचार पर ही स्थापित होता है; परंतु इस पर लोक-कल्याण, विश्व-बन्धुत्व, प्रजा-सुख आदि की अनेक परतें चढ़ाई जाती हैं । इसलिए वह नग्न अत्याचार दीख नहीं पड़ता और सब उज्ज्वल ही नजर आता है । द्वियामी राजाओं को वह बन्दी बनाए और कोई चूं तक न करे, यह अत्याचार नहीं तो क्या है ?”

“द्वियामी राजाओं को बन्दी ?”

“हां ! जरासंध तो एक पुरुष-मेध यज्ञ करने का विचार कर रहा है । इस यज्ञ की आहुतियों के रूप में वह राजाओं का होम करेगा । द्वियामी राजा इकट्ठे हो गए हैं । चौदह और होते ही वह यज्ञ आरंभ करेगा” श्रीकृष्ण ने कहा—

“महाराज ! क्या कह रहे हैं ?” अर्जुन बोल उठा ।

श्रीकृष्ण ने शान्ति-पूर्वक कहा—“मैं सच कह रहा हूं ।”

अर्जुन बोला—“इस युग में पुरुष-मेध यज्ञ ! इतना सुसंस्कृत हो जाने पर भी मनुष्य मनुष्य का होम करते हुए हिचकिचाता नहीं ?”

श्रीकृष्ण ने हँसकर कहा—“भाई अर्जुन ! तुमने अभी

संसार को अच्छी तरह नहीं देखा। मनुष्य की पशुता आज भी मिटी नहीं है; तिस पर ऐसे सार्वभौम राजा तो महा-पशु हैं। पशु-बल पर ही उनका सार्वभौम-पद निर्भर है। उनकी सुशोभित राजधानियां, पृथ्वी को कंपाने वाली सेनाएं, बड़े-बड़े लोगों को चकित कर देने वाले उनके ठाट-बाट, निरपराध भी देखकर दब जाय, ऐसे प्रभावशाली न्यायासन, हृदय में घुसकर बात का पता लगाने वाले गुप्तचर, यह सब उनके पशु-बल के स्तंभ हैं। साधारण राजा तो यह सब देखकर ही जरामंध के पैरों में लोटने लगते हैं।”

अर्जुन बीच में बोल उठा—“फिर भी कोई क्षत्रिय-पुत्र आवेश में नहीं आता?”

श्रीकृष्ण ने कहा—“कोई माई का लाल ही आवेश में आ सकता है। तुम सब माई के लाल हो। तुम इतने बलवान् हो कि यदि चाहो तो भारतवर्ष को ऐसे जरामन्धों के त्रास से छुड़ा सकते हो। आज हमारी मातृ-भूमि ऐसे ही राजाओं के अत्याचारों से त्राहि त्राहि कर रहा है। अर्जुन! तुम चाहो तो जरामंध को मार सकते हो। जब तक जरामंध जीवित है तबतक युधिष्ठिर की सामर्थ्य नहीं कि वे राजसूय यज्ञ कर सकें।”

भीम तुरन्त बोल उठा—“तो अर्जुन! चलो, हम उसे समाप्त कर आये। हिडिम्ब और बक जैसों को ठिकाने लगा चुके तो इस जरामंध की क्या बिसात?”

अर्जुन ने कहा—“भीम! ऐसा न समझो। जिस जरामंध के काल-यवन, शिशुपाल और रुक्मी जैसे साथी हैं, जिसने यादवों से मथुरा खाली करा ली, जिसने इतने अधिक राजाओं को बन्दी बना लिया और उनके मुख बन्द कर दिये, उस जरामंध को तुम ऐसा-वैसा न समझो।”

“अर्जुन ठीक कहते हैं,” श्रीकृष्ण ने कहा—“जरामंध के शरीर में कोई विचित्र चेतना है। तुम उसके दो टुकड़े कर दो

तब भी फिर से जुड़ जाय, ऐसा उसका शरीर है। आज अब उसका पाप का घड़ा भर गया है; इसलिए मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि वह मर जायगा। इस प्रकार के अत्याचारी राजा जब बहुत बड़ी विजय प्राप्त करते हैं तब उस विजय में ही उनकी मृत्यु अंकित हो जाती है। जरासंध आज अपनी प्रतिष्ठा के शिखर पर पहुँच गया है, इसीलिए अब उसे मरना ही चाहिए। तुम उसे मारोगे तो भारतवर्ष की समस्त प्रजा को शान्ति मिलेगी।”

भीमसेन सीना तानकर बोला—“अर्जुन ! चलो, हम चल पड़ें। इन्द्रप्रस्थ में लिहामन स्थापित करके यदि राजमूय यज्ञ न किया तो माता कुन्ती का गोद लजायगी। बोलो, क्या विचार है ?”

अर्जुन ने गला साफ करते हुए कहा, “भीमसेन ! जो तुम्हारा विचार, सो मेरा। श्रीकृष्ण को भी अपने साथ लेंगे। इन्होंने भी ऐसे कितनों को यम-सदन पहुँचाया है। इनका मामा कंस, दानव केशी, मल्ल चारूर, ये सब जरासंध की भिन्न-भिन्न आवृत्तियाँ ही समझनी चाहिएं। ऐसे दुष्टों के अत्याचारों से भारतवर्ष को छुड़ाना ही कृष्ण के जीवन का उद्देश्य है। श्रीकृष्ण ! आप हमारे साथ आइए।”

श्रीकृष्ण मुस्कराते हुए बोले—“मेरी क्या आवश्यकता है ? तुम दोनों ही पर्याप्त हो।”

अर्जुन ने विनती करते हुए कहा—“आपकी छत्र-छाया में हम जरासंध-जैसे दम अत्याचारियों के लिए भी पर्याप्त होंगे; आपकी छत्र-छाया अवश्य चाहिए। वहाँ आपको जरासन्ध के साथ युद्ध करने की आवश्यकता नहीं होगी।”

“अच्छी बात है। जब जाना हो, मुझे पहले से कह देना।” श्रीकृष्ण ने कहा।

“जब जाने की क्या बात ?” भीम बोला—“हम अभी चल पड़ेंगे ।”

श्रीकृष्ण हँसते हुए बोले—“जरासन्ध को चौदह राजाओं की कमी है । उनकी अपेक्षा उसे भीम मिल जाय तो चौदहों आहुतियाँ पूरी होजायं ।”

“अथवा”—अर्जुन ने कहा—“सौ राजाओं की सौ आहुतियों के बदले अकेले जरासन्ध की एक ही आहुति पर्याप्त होगी ।”

श्रीकृष्ण युधिष्ठिर की ओर घूमकर बोले—“महाराज युधिष्ठिर ! हम तीनों जा रहे हैं । आप किसी प्रकार की चिन्ता न करेंगे । बन्दी बने हुए छियासी राजाओं की आवाज सारे देश में फैल गई है । आज जरासन्ध का काल उसे पुकार रहा है । महाराज युधिष्ठिर ! आप बड़े भाग्यशाली है कि आपको भीम और अर्जुन-जैसे भाई मिले हैं ।”

“परन्तु श्रीकृष्ण ! इससे भी अधिक भाग्यशाली तो मैं आपको पाकर हूँ ।” युधिष्ठिर बोले—“आप जैसे युग-पुरुष जिनके साथ हों, उन्हें चिन्ता किस बात की ? जाइये, श्रीकृष्ण ! तीनों शीघ्र वापस आइएगा ।”

अर्जुन, भीम और श्रीकृष्ण तीनों रथ में बैठकर गिरिव्रज की ओर रवाना होगए ।

: २ :

जरासन्ध-वध

“महाराज युधिष्ठिर !” रथ में से नीचे उतरते हुए श्रीकृष्ण बोले—“अपने भीमसेन को आशीर्वाद दीजिए । इसने जरासन्ध का वध किया है !”

“और भैया !” युधिष्ठिर के चरणों पर गिरते हुए भीम

बोला—“हमारे श्रीकृष्ण हमें कुशल-पूर्वक लौटा लाये हैं, इसके लिए आप कृतज्ञता प्रकट कीजिए।”

“परन्तु धर्मराज युधिष्ठिर !” अर्जुन ने हँसते हुए कहा—
“भीमसेन जरासन्ध के साथ युद्ध कर रहे थे और श्रीकृष्ण पीछे खड़े हुए इन्हें प्रेरणा दे रहे थे, यह सब मैंने शान्ति-पूर्वक देखा, अतः मेरे लिए न आशीर्वाद है, न कृतज्ञता।”

रथ से उतरकर तीनों युधिष्ठिर के पीछे-पीछे सभा-गृह के विशाल खण्ड में पहुँचे और बातें करने लगे।

युधिष्ठिर ने गम्भीर स्वर में कहा—“जरासन्ध के साथ प्रकट में चाहे भीम ने युद्ध किया होगा; परन्तु श्रीकृष्ण ! यदि आप न होते तो मैं जिस रूप में इन दोनों भाइयों को इस समय देख रहा हूँ, उसमें कदापि न देख पाता।”

“अवश्य महाराज !” अर्जुन बोला—“भीम तो घबरा गए थे।”

“ओह ! ईश्वर !” भीमसेन आँखें फाड़कर बोला—“कितना बड़ा था जरासन्ध ! अस्सी बरस का बूढ़ा, परन्तु कैसा उसका शरीर ! कितनी चौड़ी छाती ! मैंने बड़ा प्रयत्न किया; परन्तु वह मेरी भुजाओं में न दब सका। मैं युद्ध करते-करते थक गया, पर वह गिरा नहीं और इधर गिरा कि उधर तुरन्त उठ खड़ा हुआ।”

युधिष्ठिर ने कहा—“तब तो जान पड़ता है, भीमसेन पर अच्छी तरह बोती।”

“भैया !” भीमसेन बोला—“मुझे तो अन्त में ऐसा प्रतीत होने लगा था कि जरासन्ध मर न सकेगा।”

श्रीकृष्ण हँसते हुए बोले, “ऐसे जरासन्ध जब मरते हैं तब इसी प्रकार मरते हैं। मरने के अंतिम क्षण तक ऐसा ही मालूम होता है कि यह मरेगा नहीं; परन्तु जब मरते हैं तो क्षण-भर में

मर जाते हैं। संसार के सभी अत्याचारियों की यही दशा होती है। उनके जीवन की जड़ें तो खोखली हो गई होती हैं; परन्तु ऊपर से देखने वालों को यह नहीं दीख पड़ता। इसलिए उन्हें तो ऐसा ही लगता है कि यह अचानक गिरा है। वस्तुतः तो वह कभी का मर चुका होता है।”

“सच बात है।” अर्जुन बोला—“जरासन्ध के मरने की बात मानने को कोई तैयार नहीं था।”

“होता कैसे ?” श्रीकृष्ण ने कहा—“इतना बड़ा स्थूलकाय सहसा गिर जाय, यह कोई माने तो कैसे माने ? लोगों को यह कहाँ पता कि ऐसे स्थूलकाय की हृदय-गति तो सहसा ही रुक जाती है।”

“भैया !” अर्जुन बोला—“जरासन्ध को मारकर जब हम बन्दी राजाओं को छुड़ाने कारागार में गए तब बेचारे वे राजा-गण हाथ जोड़कर हमें कहने लगे कि क्यों हमें मरता रहे हो ? जरासन्ध कभी मर नहीं सकता।”

“अच्छा, ऐसी बात ? जरासन्ध का इतना प्रभाव ?” युधिष्ठिर बोले।

“जरासन्ध का प्रभाव नहीं, राजाओं का भय।” श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया—“जरासन्ध के राजाओं पर अत्याचार करने में उसके अपने बल की अपेक्षा राजाओं का भय अधिक बड़ी वस्तु थी।”

“परन्तु श्रीकृष्ण !” युधिष्ठिर बोले—“जिस जरासन्ध ने यादवों से मथुरा छुड़ाई, जिसने द्विजासी राजाओं को बन्दी बनाया और जिसकी मगध पर धाक जमी हुई थी, उसे आप किस प्रकार मार सके ? आपको मार डालना तो जरासन्ध के बाण हाथ का खेल था।”

“महाराज युधिष्ठिर !” श्रीकृष्ण बोले—“जरासन्ध को हमने किस प्रकार मारा, उसके नगर में किस प्रकार प्रवेश किया, वहाँ

कैसा वेश धारण किया और उसके साथ क्या-क्या बातें कीं, यह जानना हो तो अर्जुन आपको विस्तार से कहेंगे ।”

“यह सुनने की किसे इच्छा नहीं ? परन्तु इसे विस्तार से कहने में बड़ा समय लगेगा, इसलिए इस समय तो आप ही संक्षेप में सुना दें ।” युधिष्ठिर आतुर हो उठे ।

“मैं ही सुना देता हूँ ।” श्रीकृष्ण बोले—“जरासन्ध इतना बलवान् होने पर भी गरीबों की आहों से मर रहा था । महाराज युधिष्ठिर ! आपको अब ज्ञात होगा । जो सार्वभौम पद समस्त राजाओं की मैत्री और सहयोग के बदले, उनकी गर्दनो पर निर्मित होता है, उसे तो सुलगता हुआ ही समझना चाहिए । उस पद पर बैठा हुआ राज्य कब जलकर भस्म हो जायगा, इसका किसी का पता नहीं । ऐसे बलवान दीखने वाले राजा को एक कंकड़ भी गिरा देने में समर्थ हो जाता है । ईश्वर की सृष्टि में कौन-सी वस्तु बलवान और कौन-सी निर्बल है, इसका निश्चय करना सहज नहीं है । अन्यथा भीमसेन, जरासन्ध को मार सकता ? परन्तु भीमसेन के बल के पीछे लाखों मस्त लोगों के संकल्प का बल था, इसीसे भीमसेन की विजय हुई ।”

“हमें तो आपका बल प्रतीत होता है ।” युधिष्ठिर ने कहा ।

“आपको प्रतीत होता होगा ।” श्रीकृष्ण बोले—“महाराज ! स्मरण रखिए, ऐसे दुखी लोगों के आर्तनाद में एक प्रकार की ईश्वरीय शक्ति होती है । ऐसे आर्तनादों से बड़े-बड़े साम्राज्य मिट्टी में मिल गए हैं । इस जरासन्ध की क्या विसात ? जो साम्राज्य गरीबों को परत करता है और मदमत्त होकर अपने बाहुबल पर विश्वास रखता है, उस साम्राज्य के टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं । यदि जरासन्ध ने इस बात को समझा होता और हमारे साथ युद्ध करने की अपेक्षा वन्दी बनाये राजाओं को उसने मुक्त कर दिया होता तो वह बच जाता ।”

“यदि ऐसा करता तो वह जरासन्ध कैसे रहता ?” अर्जुन बोला—“श्रीकृष्ण ! जरासन्ध आपके मामा कंस का श्वसुर था। उसकी दोनों पुत्रियाँ रोज उसके कान भरती रहती थीं और हज़ारों चापलूस राजा हाँ-में-हाँ मिलाते रहते थे। ऐसी परिस्थिति में जरासन्ध ही क्या, हम भी हों, तो अन्धे बन जायं।”

“अस्तु !” युधिष्ठिर ने कहा—“अब जरासन्ध का विषय तो समाप्त हुआ। अब बताइये, क्या राजसूय यज्ञ करना उचित है ?”

“अवश्य !” श्रीकृष्ण बोले—“जरासन्ध चला गया तो एक बड़ी विपत्ति टल गई। अभी उसकी टोली के अन्य लोग पड़े हैं; परन्तु जरासन्ध के जाने से वे भी कुछ शिथिल हो गये होंगे।”

“तो फिर”, युधिष्ठिर ने कहा—“अर्जुन ! अब हम यज्ञ की तैयारी आरम्भ करें। श्रीकृष्ण ! इस कार्य की सफलता का भार आप पर है।”

“जिनके भीम और अर्जुन-जैसे भाई हैं, उन्हें सफलता देने वाला मैं कौन ?” श्रीकृष्ण बोले—“आपका शुभ संकल्प है, इसलिए सफलता अवश्य मिलेगी। अब आप तैयारी करें। मुझे अपनी मेवा में उपस्थित ही समझियेगा।”

“अर्जुन !” युधिष्ठिर ने कहा—“तुम चारों भाई मिलकर यज्ञ की पूर्व तैयारी करो। अब इस कार्य में विलम्ब नहीं होना चाहिए। महाराज श्रीकृष्ण ! आप सब थके हुए हैं। अतः विश्राम कर लें। मैं माता कुन्ती और द्रौपदी को जाकर ये बातें सुनाता हूँ।”

इतना कहकर चारों अलग-अलग होगए।

: ३ :

शिशुपाल-वध

महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में भगवान् व्यास स्वयं ब्रह्मा बने, सुसामा आंगिरस उद्गाता, याज्ञवल्क्य मुख्य अध्वर्यु और धौम्य ऋषि होता बने ।

समस्त भारतवर्ष के राजा-महाराजा, ब्राह्मण, प्रतिष्ठित वैश्य और शूद्र इस यज्ञ में उपस्थित थे । नकुल स्वयं जाकर हस्तिनापुर से भीष्म, धृतराष्ट्र आदि हितैषियों को बुला लाया था; दुर्योधन कर्ण, शकुनी जयद्रथ आदि भी सज-धजकर उपस्थित हुए थे । द्रोण, कृपाचार्य आदि भी अपने शिष्यों के पराक्रमों का आनन्द उठाने आये थे । द्रुपद, बलराम, सांब आदि पांडवों के उत्कर्ष से प्रसन्न होकर आये थे । इनके सिवा आंध्रक, द्रविड़, सिंहल बाल्हिक आदि से सारा इन्द्रप्रस्थ खचाखच भर गया था ।

महाराज युधिष्ठिर यज्ञ की दीक्षा लेने के पश्चात् आये हुए राजा-महाराजाओं को समारंभ के भिन्न-भिन्न कार्यों के पद पर नियुक्त करने लगे । भीष्म और द्रोण को उन्होंने समारंभ की सामान्य देख-भाल का काम सौंपा । ब्राह्मणों के स्वागत के लिए अश्वत्थामा को, राजाओं के स्वागत के लिए संजय को, रत्नों की परीक्षा के लिए कृपाचार्य को, भोजन की व्यवस्था के लिए दुःशासन को, राजाओं की ओर से आनेवाली भेंटें स्वीकार करने के लिए दुर्योधन को और सारे खर्च का हिसाब रखने के लिए विदुर को नियुक्त किया गया । यज्ञ में आये हुए ब्राह्मणों के पैर धोने का काम श्रीकृष्ण ने स्वयं ले लिया ।

यज्ञ आरम्भ हुआ । ब्राह्मणों के मंत्रोच्चार से सारा यज्ञ-मंडप गूंज उठा । घृत और अन्न की आहुतियों से तृप्त होते हुए अग्नि की ज्वालाएं भभकने लगी । महाराज युधिष्ठिर का निजी

मंत्रो सहदेव, अन्तर्वेदी में खड़ा, आये हुए समस्त राजा-महाराजाओं की ओर दृष्टि डाल रहा था। नारद मुनि एकत्र हुए मानव-समूह को देखकर गहरे विचार में डूब गए थे।

इसी समय पितामह भीष्म ने युधिष्ठिर से कहा—“बेटा युधिष्ठिर ! अब तुम इन राजाओं की पूजा करो। ये सब राजा-महाराजा आज बहुत वर्षों बाद हमारे आंगन में आए हैं। इसके अतिरिक्त जिन राजाओं ने तुम्हारा सार्वभौम पद स्वीकार किया है, उनका पूजन इसलिए भी आवश्यक है कि तुम्हें राजसूय-यज्ञ करने का अभिमान न हो सके। इसलिए तुम प्रत्येक राजा को एक-एक अर्घ्य दो।”

युधिष्ठिर बोले—“पितामह ! आप जो कहते हैं, वह यथार्थ है। यह राजसूय यज्ञ करके मैं अभिमानी होना नहीं चाहता। समस्त भारतवर्ष के राजा-महाराजाओं के हृदय में मेरा स्थान बना रहे, यही मेरी अभिलाषा है। पितामह ? आप बताइये, एकत्र हुए इस सारे समाज में मैं सबसे प्रथम अर्घ्य किसे दूँ ?”

भीष्म ने तुरन्त उत्तर दिया—“श्रीकृष्ण को। यहां एकत्र हुए समाज में ही नहीं, परन्तु सम्पूर्ण मानव-समाज में आज यदि कोई पुरुष प्रथम अर्घ्य का पात्र है तो वह श्रीकृष्ण हैं। इसलिए प्रथम अर्घ्य उन्हें ही दो।”

महाराज युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण के समीप जाकर उन्हें विधिपूर्वक अर्घ्य दिया और श्रीकृष्ण ने उसे स्वीकार किया।

परन्तु सभा में चेदिराज शिशुपाल बैठा था। वह इसे कैसे सहन करता ? श्रीकृष्ण को अर्घ्य मिलते न मिलते उसका क्रोध भभक उठा—“राजा युधिष्ठिर ! तुमने राजाओं की इस सभा में कृष्ण की प्रथम पूजा करके सारे समाज का अपमान किया है। कृष्ण इस प्रकार के राज-पूजन के योग्य नहीं हैं। भीष्म ने किस दृष्टि से कृष्ण के पूजन की सलाह दी, यह मेरी समझ में नहीं

आता। कृष्ण को तुम इन राजाओं में श्रेष्ठ समझते हो, परन्तु वह स्वयं राजा कहाँ है ? राजा बनने का सौभाग्य उसे प्राप्त ही नहीं हुआ और होनेवाला भी नहीं है। हां, समाज में वृद्ध-जन पूज्य माने जाते हैं, परन्तु इस सभा में कृष्ण के पिता वसुदेव बैठे हैं, फिर भी तुम कृष्ण को किस प्रकार अर्घ्य दे सकते हो ? मैं समझता हूँ कि आचार्य आयु में छोटे हों, फिर भी पूज्य होते हैं; परन्तु आचार्य द्रोण ये बैठे हुए हैं। महाराज युधिष्ठिर ! तुम्हें पूजन करना था ता व्याम भगवान् नहीं दीख पड़े ? भीष्म अच्छे न लगे ? अश्वत्थामा या दुर्योधन दृष्टिगोचर नहीं हुए ? तुम्हारे श्वसुर द्रुपद पर ध्यान न गया ? केवल इस कृष्ण का ही ध्यान आया ? मैं समझ रहा हूँ कि कृष्ण की पूजा करके तुमने इस सारे मानव-समाज का अपमान किया है और तुम्हें यह सलाह देने वाले भीष्म की बुद्धि का दिवाला निकल गया है। मैं यही कहूँगा कि कृष्ण का पूजन करके तुमने अपनी दीनता प्रदर्शित की है। कृष्ण ! कुपात्र को पूजा करने वाला तो निंद्य है ही, परन्तु बिना अधिकार के ऐसी पूजा स्वाकार करने वाला भी उतना ही निंद्य है। इस पवित्र यज्ञ का हविष्य खा जाने वाला कुत्ता जिस प्रकार दण्ड का पात्र है, उसी प्रकार इस प्रथम अर्घ्य को स्वीकार करने वाले तुम भी दण्ड के पात्र हो। कृष्ण ! युधिष्ठिर ने हम राजा-महाराजाओं का जितना अपमान किया है, उससे कहीं अधिक तुम्हारा अपमान किया है। नपुंसक का विवाह करना, जिस प्रकार उसके लिए बड़े अपमान की बात है, उसी प्रकार तुम जैसों को प्रथम अर्घ्य देना तुम्हारे अपमान की बात है। भारतवर्ष के राजा-महाराजा-गण ! युधिष्ठिर के द्वारा धर्म-राज्य की स्थापना होगी, इस आशा से हम सब यहां आये हैं। आज हमने देख लिया कि युधिष्ठिर कितने धर्मात्मा हैं। इनके जैसे दोन और डरपोक राजाओं से हम सब दर रहें, यही अच्छा

है। भीष्म वृद्ध होगए हैं, इसलिए उनकी बुद्धि भी उन्हें छोड़कर चली गई जान पड़ती है।” इस प्रकार बोलता हुआ शिशुपाल जब अपना आसन छोड़कर जाने लगा तब उसके साथ अन्य अनेक राजा भी उठ खड़े हुए।

शिशुपाल को जाते देखकर युधिष्ठिर घबराकर बोले—“शिशुपाल ! तुम जो बोल रहे हो, वह उचित नहीं है। भीष्म पितामह धर्म के रहस्य को अच्छी तरह जानते हैं और श्रीकृष्ण से भी भली-भाँति परिचित हैं। श्रीकृष्ण ही प्रथम अर्घ्य के योग्य हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं। व्यर्थ ही कठोर वाणी से तुम इस उत्सव में विक्षेप क्यों कर रहे हो ?”

युधिष्ठिर को इस प्रकार शिशुपाल को समझाते देखकर भीष्म ने कहा—“युधिष्ठिर ! शिशुपाल को तुम्हारे इस प्रकार दीनता से समझाने की आवश्यकता नहीं। मैं एक बार नहीं, दो बार नहीं, परन्तु हजार बार जोर देकर कहना चाहता हूँ कि सम्पूर्ण समाज में—समस्त मानव-समाज में—श्रीकृष्ण ही प्रथम अर्घ्य के योग्य हैं। हां, ये स्वयं अभिषिक्त राजा नहीं हैं, इन्होंने अपने मस्तक पर राज-मुकुट धारण नहीं किया है, फिर भी अनेक मुकुट-धारी राजाओं से बड़े हैं। इन्होंने अनेक राजाओं के मस्तकों पर मुकुट रखे हैं और इनके प्रताप से उनके मुकुट स्थिर रहते हैं। शिशुपाल ! तुम्हें यह पता है कि हमारे तुम्हारे जैसे सामान्य राजाओं के मुकुट प्रजा के हृदय में स्थान नहीं बना पाते, परन्तु श्रीकृष्ण बिना मुकुट के प्रजा के हृदय में स्थान बनाये बैठे हैं। कौन कहता है कि श्रीकृष्ण वृद्ध नहीं ? शिष्ट समाज में वृद्धत्व का माप कभी आयु से नहीं किया जाता। यदि ऐसा ही होता तो अनेक नीम और पीपल के वृक्षों को हमें सबसे वृद्ध समझना पड़ता। श्रीकृष्ण आयु में छोटे होने पर भी बुद्धि में बड़े हैं। जीवन के अनेक विकट प्रसंगों में भी इनकी बुद्धि स्थिर रह

सकती है, यह दुनिया ने देखा है। तुम चाहे जो समझो, मैं तो यही समझता हूँ कि श्रीकृष्ण को प्रथम अर्घ्य दिल्वाकर मैंने इन समस्त राजाओं का मान बढ़ाया है। चेदिराज ! श्रीकृष्ण का पूजन करके युधिष्ठिर ने उचित ही किया है। यदि तुम्हें और अन्य राजा महाराजाओं को यह बात पसन्द न हों तो तुम, जो उचित लगे, सो कर सकते हो।”

भीष्म जब इस प्रकार बोल रहे थे तब सहदेव आतुर हो रहा था। भीष्म के चुप होते ही वह तुरन्त बोल उठा—“श्रीकृष्ण का पूजन जिन लोगों को अच्छा न लगा हो, उनके माथों पर मैं अपना पैर रखता हूँ। ऐसे लोग यदि युद्ध की मांग करते हों तो उनके लिए भी सहदेव तैयार है। महाराज युधिष्ठिर तो श्रीकृष्ण का ही प्रथम पूजन करेंगे।”

इसी बीच शिशुपाल ने अन्य राजाओं के साथ मिलकर यज्ञ को भंग करने का संकेत किया और परिणाम-स्वरूप सारी सभा में कोलाहल प्रारंभ हो गया। सभा में बढ़ता हुआ शोर देखकर युधिष्ठिर अधिक घबराए और भीष्म से कहने लगे—“पितामह ! यज्ञ में विघ्न न हो और समस्त प्रजा का हित हो, इसके लिए आप जो कहेंगे, वही करने को मैं तैयार हूँ।”

युधिष्ठिर को घबराते देखकर भीष्म ने ऊँचे स्वर में कहा—“बेटा युधिष्ठिर ! घबराओ मत। घबराने का कोई कारण नहीं है। जब तक सिंह सोया हुआ होता है तभी तक कुत्ते भौंका करते हैं। इस समय यह शिशुपाल नहीं बोल रहा है। शिशुपाल की और इन राजाओं की बुद्धि भ्रष्ट हो गई है, इसमें कोई सन्देह नहीं। काल जब-जब मनुष्य को दण्ड देता है, तब-तब उसे डंडे से नहीं मारता, परन्तु उसकी बुद्धि को कुमार्ग पर लगाता है। इस शिशुपाल की यही दशा समझो।”

भीष्म पितामह के इन वेधक बचनों से तिलमिलाकर शिशु-

पाल पीछे घूमकर बोला—“ओ भीष्म ! ओ कुरु-वंश के कर्लक, ऐसे वचन बोलते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आती ? जिस प्रकार अन्धा अन्धे को चलाता है उसी प्रकार आज तुम इन पाण्डवों को चला रहे हो । जिस कृष्ण की तुमने पूजा कराई, उसके काले कर्म सारा जगत् जानता है । इस कृष्ण ने अपने मामा का बध किया, यह क्या हम नहीं जानते ? जिनका अन्न खाकर बड़ा हुआ, उन्हें मारने वाला यह कृष्ण प्रथम अर्घ्य का अधिकारी कैसे हो सकता है ? इस कृष्ण की गोपियों के साथ की हुई लीलाएं क्या हम नहीं जानते ? भीष्म ! तुम मुझसे कहला रहे हो, इसलिए कह रहा हूँ । उन गोपियों के स्वामियों से जाकर पूछो तो तुम्हें पता लगेगा कि कृष्ण पूजा का कितना अधिकारी है । इस कृष्ण के पराक्रम को सारी दुनिया जानती है । काल यवन के आने पर यह पराक्रमी कृष्ण तुम दबाकर भाग गया था । यह सभी जानते हैं । इसके कार्यों की कोई गिनती नहीं । पृष्ठो रुक्मी से । रुक्मिणी की सगाई किसके साथ हुई थी ? परन्तु इस लंपट कृष्ण ने ही उसे भगाकर उसके सारे कुटुम्ब में विष का बीज बोया । अभी कल की बात है । जरासंध को इन तनों आदमियों ने किस प्रकार मारा, यह इनसे पूछो । जरासंध को कपट से मरवाने वाले कृष्ण को प्रथम अर्घ्य देने वाला मूर्ख नहीं तो कौन है ? भीष्म ! इसमें तुम्हारा दोष नहीं है । तुम्हारा सारा कुल ही इस प्रकार का है । केवल तुम्हीं ब्रह्मचर्य का आडम्बर किये बैठे हो । तुमने अम्बा का हरण किया और फिर उसे भटकते छोड़ दिया, यह मैं भूला नहीं हूँ । नपुंसकों के ब्रह्मचर्य को साधु पुरुष महत्व नहीं देते । तुम स्वयं पापी हो । अतः कृष्ण जैसे पापी को प्रथम अर्घ्य दिलवाओ, इसमें कोई आश्चर्य नहीं है । परन्तु याद रखना, तुम्हारी मृत्यु निकट है । तुम जैसे मूढ़

की सलाह को पांडव महत्त्व देते हैं, इससे यह समझो कि उनका भी काल निकट है।”

शिशुपाल के ऐसे कठोर वचन सुनकर भीमसेन का खून खौल उठा। “वह दांत पीसता हुआ अपने आसन पर से उछल पड़ा और शिशुपाल को पकड़ने के लिए दौड़ा, परन्तु भीष्म ने उसे बाँच में ही रोक लिया। शिशुपाल भीम को इस प्रकार क्रोध से लाल देखकर बोला—“भीष्म ! भीम को आने दो। भीमसेन को भी पता लगे कि चेदिराज का बाहुपाश कितना कोमल है। आ जा, भामसेन ! जरासंध को तूने दुष्टता से मार लिया, पर यह शिशुपाल है।”

इस प्रकार बोलते हुए शिशुपाल को संबोधित करके भीष्म ने कहा। “शिशुपाल ! चेदिराज ! अब सीमा हो चुकी है। श्रीकृष्ण केवल राजा ही नहीं, राजाओं का भी राजा है; वृद्ध ही नहीं, वृद्धों के भी वृद्ध है। ज्ञानी ही नहीं ज्ञानियों के भी ज्ञानी हैं, कारण श्रीकृष्ण युग-पुरुष हैं। बेटा युधिष्ठिर ! मुझे इस शिशुपाल और इसके मित्रों पर तरस आ रहा है। शिशुपाल श्रीकृष्ण को पहचान नहीं सकता, इसलिए पामर है। यहाँ एकत्र हुए सब राजा-महाराजाओं से मुझे कहना चाहिए कि युग-पुरुष को परखना और परख कर उसका पूजन करना - उसके चरणों में शीश झुकाना, यह बड़ा कठिन काम है। ऐसा युग-पुरुष हमारी तरह दों हाथों और दों पैरों वाला होता है। इसलिए हमें वह सावधान मनोवृत्ति ही प्रतीत होता है और इसी कारण उसे परखना अधिक कठिन हो जाता है। श्रीकृष्ण हमारे युग-पुरुष हैं। उनका अपना जीवन सर्वथा विशुद्ध है। जिन लोगों के अंतःकरण पापों से घिर गए होते हैं, उन्हें ऐसे विशुद्ध जीवन में भी मलिनता दिखाई देती है। वह शिशुपाल नहीं जानता कि गोपियाँ ऐसे युग-पुरुष के परिचय से धन्य होगई थी; इस शिशुपाल को पता

नहीं है कि केशी, कालयमन, जरासंध आदि का नाश करना श्रीकृष्ण के जीवन का ध्येय है; यह शिशुपाल को ज्ञात नहीं है कि हमारी पृथ्वी पर राजाओं का जो भार समस्त प्रजा का पीड़ित कर रहा है उस भार को कम करने के लिए ही श्रीकृष्ण का जन्म हुआ है। ऐसा ऋषियों को दीख पड़ रहा है। महाराज युधिष्ठिर आपके घबराने का कोई कारण नहीं। यह सभी जानते हैं कि हमारे युग की सर्व महच्छाएं श्रीकृष्ण के जीवन में व्यक्त होती हैं। आज भारत को कष्ट-मुक्त करने में श्रीकृष्ण का बहुत बड़ा हाथ है। अब भी हम सब उनकी ओर दृष्टि लगाये बैठे हुए हैं। इन्हीं श्रीकृष्ण के जीवन में छिद्र खोजना, उनके सद्गुणों को अवगुणों के रूप में देखना और उनके जीवन-कार्य को न समझकर उनके विषय में बुरी बातें बोलना, इसी का नाम है काल। काल से घिरे हुए इस शिशुपाल को बचाने में आज कोई समर्थ नहीं।”

भीष्म इस प्रकार बोल ही रहे थे कि बीच में ही शिशुपाल बोल उठा—“देख लिया तुम्हारा युग-पुरुष ! ऐसे दुष्ट को युग-पुरुष कहते हुए तुम्हारी जिह्वा टूट क्यों नहीं पड़ती ? युग-पुरुष दूसरों की स्त्रियों के साथ मनमाना विहार किया करते हैं ? युग-पुरुष दूसरों की व्याही स्त्रियों के साथ विवाह कर लिया करते हैं ? युग-पुरुष जरासन्ध को कपट से मार सकते हैं ? यदि इस प्रकार के मनुष्य युग-पुरुष माने जायेंगे तो पृथ्वी को रसातल जाना पड़ेगा। भीष्म ! युग-पुरुष था जरासन्ध, जिसके कारागार में बड़े बड़े राजागण चुपचाप बैठे थे ! युग-पुरुष था कंस, जिसने गोकुल और मथुरा की माताओं को कंसा दिया। युग-पुरुष था कालयवन, जिसने ठेठ दक्षिण तक इन यादवों को निकाल भगाया। जो लोग इस कृष्ण को युग-पुरुष कहकर इसका गुण-गान करते हैं, वे बड़े मूर्ख हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं।”

इतनी लम्बी गरमागरम बातचीत, महाराज युधिष्ठिर की घबराहट, महदेव और भीमसेन का क्रोध, भीष्म की सिंह-गर्जना और शिशुपाल की प्रतिगर्जना, शिशुपाल के साथ उठ खड़े हुए राजाओं का कोलाहल; इन सबके बीच श्रीकृष्ण जरा भी लुब्ध हुए बिना खड़े थे। जिस प्रकार किसी महासागर की लहरे, बीच में खड़े हुए टीले से टकराकर टूट जाती है उसी प्रकार वे सब हलचलें और कोलाहल उनके साथ टकराये और स्वयं ही टूट गए। अन्त में जैसे विश्व की गहराई में से बोल रहे हों, इस प्रकार श्रीकृष्ण बोले - “यह जो कुछ बोला जा रहा है, वह शिशुपाल नहीं, उसका काल बोल रहा है। यह शिशुपाल मेरी बुआ का पुत्र है। अपने भरसक इसे न मारने का मैंने अपनी बुआ को वचन दिया है; परन्तु यह स्वयं ही अपनी मृत्यु मांग रहा है। यहां एकत्र हुए राजा-महाराजागण ! आप कान लगाकर सुने। आज अनेक वर्षों से हमारी भारत-भूमि के गर्भ में किसी भारी उथल-पुथल के लक्षण प्रकट हो रहे हैं। हम क्षत्रियों को और विशेषकर राजाओं को समस्त प्रजा की रक्षा का काम सौंपा गया है; परन्तु हम रक्षा करने के बदले प्रजा की गर्दन पर सवार हो गए हैं। अतएव प्रजा बेचारी त्राहि-त्राहि कर रही है। याद रखो राजाओं ! समस्त प्रजा की यह पुकार विश्व-नियंता के दरबार में पहुँच गई है और हमारा मद उतारने वाली शक्तियाँ पृथ्वी तल पर एकत्र होने लगी हैं। जो राजा लोग इन शक्तियों को पहचान कर सावधान हो जायेंगे, वे जीवित रहेंगे; बाकी सब, इन शक्तियों का ज्वालामुखी जब फटेगा, तब उसके खौलते रस में भस्म हो जायेंगे। यह शिशुपाल एक ऐसा ही मदमत्त राजा है। इसका एक दल है। जरासन्ध उसका नेता था। अब शिशुपाल ने वह स्थान लिया है। शिशुपाल ! तू नहीं जानता कि आज तक के तेरे सारे अपराध तेरी माता के लिये मैंने सह लिए हैं। मैं अब भी

तेरे अपराध सहन कर सकता हूँ, परन्तु विश्व की नियामक सत्ता मुझसे कुछ और ही कह रही है। मैं चाहूँ या न चाहूँ; परन्तु धड़ से जुड़ा यह मदोन्मत्त सिर, धड़ से अलग होने के लिए उतावला हो रहा है। यदि मैं यह कहूँ तो असत्य नहीं होगा कि हमारे वर्तमान क्षत्रियों का मद उतारने और पीड़ित-भस्म प्रजा को राजाओं के अत्याचार से छुड़ाने का मुझे व्ययमन होगया है। मुझे विश्वास है कि यह भारतवर्ष की पीड़ित प्रजा की बड़ी-से-बड़ी सेवा है। मैंने स्वयं अपनी शक्ति के अनुसार यह सेवा करना स्वीकार किया है। इसलिए तेरे जैसे अनेक अत्याचारियों के सिरों को मेरा सुदर्शन धड़ से अलग करेगा। शिशुपाल, अपने इष्टदेव को स्मरण कर ले !”

श्रीकृष्ण के इतना बोलते-न-बोलते सुदर्शन चक्र ने शिशुपाल का सिर धड़ से अलग कर दिया।

युधिष्ठिर की आज्ञा से शिशुपाल का अग्नि-संस्कार हुआ और राजसूय यज्ञ के लिये आए हुए राजा-महाराजाओं को पांडवों ने विदा किया।

: ४ .

द्वैतवन में

पांडवों को जब तेरह वर्षों का वनवास मिला तब श्रीकृष्ण द्वारका में नहीं थे। बाद में द्रौपदी के वस्त्र-हरण की और पांडवों के वनवास की खबर मिलने पर वे स्वयं पाण्डवों से मिलने वन में पहुँचे।

एक दिन पर्णकुटी के आंगन में पांडवों और द्रौपदी के साथ श्रीकृष्ण बैठे थे। तभी द्रौपदी ने प्रश्न किया—“श्रीकृष्ण ! और तो कुछ नहीं, तुमने मुझे बहन के रूप में स्वीकार किया है। लोग

मुझे पांचाली न कहकर कृष्णा कहते हैं। फिर भी मेरे वीर श्रीकृष्ण के जीवित रहते मेरी चोटी खींची गई! यह जब मैं स्मरण करता हूँ तब मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि तुमने भी मुझे त्याग दिया।”

“बहन! इस प्रकार दुःखी न हो।” श्रीकृष्ण बोले—“जब यह सब हुआ तब मैं द्वाङ्का में नहीं था। परन्तु इससे हुआ क्या? तुम नहीं जानती; परन्तु युधिष्ठिर जानते हैं कि इस प्रकार खींची गई चोटियाँ अगले दिन ही चक्रवर्द्धि व्याज के साथ अपना हिमाव चुका लेती हैं और ईश्वर के न्यायालय में ऐसे हिसाबों की अवगणना नहीं हो सकती।”

“परन्तु महाराज श्रीकृष्ण!” भीमसेन बोल उठा—“भरी मभा में देवी पांचाली के वस्त्र को खींचते उस अन्धे के पुत्र को जरा भी लज्जा नहीं आई!”

“यही उचित हुआ।” श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया—“आज तक वे लोग तुम्हें गुप्त रूप से सता रहे थे और प्रकट में ऐसा व्यवहार करते थे जैसे तुम्हें बड़ा प्रेम करते हैं; परन्तु द्रौपदी का चोर खींचकर कौरवों ने अपनी पशुता को प्रकट कर दिया है। कौरवों की इस पशुता को अपने नग्न स्वरूप में देखकर संसार को अब कौरवों में विश्वास नहीं रहा है।

आज दुर्योधन प्रजा का विश्वास प्राप्त करने के लिए आकाश-पाताल एक कर रहा है, तुम सब के दोषों का ढिंढोरा पीट रहा है, तुम्हारे शत्रुओं को मिलाने का प्रयत्न कर रहा है और तुम्हारे मित्रों में फूट डालने के लिए यत्नशील है; परन्तु उसे ज्ञात नहीं है कि तुम्हें वनवास देकर उसने अपने आदमियों का भी विश्वास खो दिया है।”

“आप चाहे जो कहें।” द्रौपदी बोली—“परन्तु आज जब

मेरे भीम-अर्जुन वन में भटक रहे हैं तब कौरव हस्तिनापुर के महलों में आनन्द मना रहे हैं !”

“देवी ! यह सत्य है ।” श्रीकृष्ण ने कहा—“यों देखने पर तुम दुःख में पड़े हो और कौरव सुख मना रहे हैं; परन्तु जो लोग परिस्थिति के गर्भ में दृष्टि डाल सकते हैं, वे स्पष्ट देख सकते हैं कि जहां हस्तिनापुर के महल कौरवों को सुन्दर बनायेंगे, वहां यह वनवास तुम सबको अधिक तेजस्वी बनायगा । द्रौपदी ! मैं आज तक के समस्त इतिहास और पुराण पढ़ चुका हूँ । जगत् में जिन लोगों के हाथों महान् क्रांतियां होनी होती है उन्हें क्रांति की तपश्चर्या के रूप में ऐसे दुःख अवश्य सहने पड़ते हैं और दुःखों की शाला से गुजरे बिना क्रांति में कभी आवेश नहीं आता ।”

“महाराज ! यह सब तत्त्व-ज्ञान की बातें हैं ।” युधिष्ठिर बोले—“मैं इन सबका दुःख नहीं देख सकता । न जाने किस वड़ी में मुझे द्यूत खेलने की सूर्फ हुई और मैंने स्वीकृति दी ।”

“यह ठीक है ।” श्रीकृष्ण बोले—“तुम्हारा अपने लिए ऐसा सोचना उचित है । तुम द्यूत न खेलते तो अच्छा था ; परन्तु संसार में किस समय कौन-सी शक्ति काम करती है, यह कौन जान सका है ? जानते हुए भी तुम्हें खेलने की इच्छा हुई, इसमें कौन जाने, विश्व-नियंता का ही कोई संकेत हो ? तुमने इन सबको दुखी किया है, यह सोचकर दुखी न हो । तुम सबके दुःख सहने से कौरवों के पुण्यों का हास हो रहा है । सारे कौरव और अंध धृतराष्ट्र भी सब दुष्ट हैं । परन्तु आज अभी उनके पीछे कुरु-कुल का तप जमा है । गांधारी जैसी सती, विदुर जैसा सत्य-वक्ता, भीष्म और द्रोण जैसे धर्मात्मा अभी कौरवों के पक्ष में हैं । इसलिए कौरव उनके बल पर खड़े हैं । ज्यों-ज्यों तुम पर अधिक दुःख पड़ेंगे त्यों-त्यों कौरवों के जीवन की जड़ें कटती जायंगी

और जैसे दीमक से खाया गया वृक्ष सुन्दर दीखने पर भी एका-एक भूमि पर मोजाता है, वैसे ही एक दिन सारा कौरव-कुल सो जायगा।”

“महाराज श्रीकृष्ण !” सहदेव बे ला —“मुझे दृढ़ विश्वास है कि आप जो कुछ देख सकते हैं, उसका जरा-सा भी अंश दुर्योधन को दिखाई नहीं दे सकता। यह आश्चर्य की बात नहीं है ?”

“अवश्य है।” श्रीकृष्ण ने कहा—“सहदेव ! तुम्हें पता नहीं है। द्यूत सभा में जब महाराज और शकुनी पासे फेंक रहे थे, तब विकर्ण ने उन पासों की बोली सुनी थी, यह याद है ? विकर्ण ने वह बोली सुनी और सारी कौरव-सभा को सुनाई; परन्तु दुर्योधन ने उस समय कान बंद कर रखे थे और इस समय भी बंद हैं। संसार के सब मदोन्मत्त राजाओं का यह लक्षण होता है कि वे आंखें रहते भी नहीं देखते और कान रहते भी नहीं सुनते ! सहदेव ! उन मदोन्मत्त राजाओं के आस-पास ऐसा वर्तुल बन जाता है कि उनकी आंखोंको सत्य वस्तु दीखती ही नहीं, उनके कानों के साथ उनकी प्रिय बातें ही टकराती हैं। आगे चलकर ये राजा अपने आंख-कान गंवा बैठते हैं और बड़े वेग से काल के मुख में समाते जाते हैं।”

“तो आपका आशय यही है न”—द्रौपदी से रहा न गया। “कि काल स्वयं ही कौरवों का विनाश करेगा। यह सोचकर मेरे पाण्डव बैठे रहें और वनवास भोगते रहें ?”

“बिलकुल नहीं।” श्रीकृष्ण चौंकर बोले। “वह काल तो तुम्हारे निमन्त्रण से ही आयगा। वह तुम्हारे हाथ-पैरों और तुम्हारी बुद्धि का उपयोग करेगा। तुम्हारी तपश्चर्या उसका आमन्त्रण बनेगी। मुझे तुम्हारे वनवास में ईश्वरीय संकेत दीखता है। अर्जुन ! तैयार हो जाओ। तुम इस वन में पड़े-पड़े दिन बिताने के लिए उत्पन्न नहीं हुए हो। तुमसे और मुझसे भी

जगत् के ऋषि-मुनियों को अनेक आशाएं हैं। यह समय है उन आशाओं को पूर्ण करने की तैयारी करने का। आज सारे भारत-वर्ष में किसी क्रांति के डंके बज रहे हैं। इस क्रांति के लिए तुम्हारे तैयार होने की आवश्यकता है। सुदूर हिमालय के प्रदेश में जाओ और पशुपति से विद्या प्राप्त करो। मैं इसके चिह्न देख रहा हूँ कि उस विद्या के बल से दुष्ट राजाओं को कुचलने का सौभाग्य तुम्हें प्राप्त होगा। द्रौपदी ! तुम्हें किसी को निराश होने की आवश्यकता नहीं। यह निश्चय जानो कि यह वनवास तुम्हारे लिए भविष्य में आशीर्वाद-रूप सिद्ध होगा। महाराज युधिष्ठिर ! अब मैं छुट्टी लूँ ?”

“श्रीकृष्ण !” युधिष्ठिर ने गद्गद् स्वर में कहा। “आपको छुट्टी देने के लिए जिह्वा नहीं उठती। द्रौपदी बड़े दिनों से प्रति-दिन आपको स्मरण करती और कभी-कभी रो लेती थी। आज आपसे मिलकर उसका भार हलका हो गया है। अधिक क्या कहूँ ? मैं इन सबको वन में लाया हूँ, इसका मुझे जो दुःख है, उसे आप समझ सकते हैं। वनवास के अन्त में क्या होगा, यह ईश्वर ही जाने।”

द्रौपदी से न गया। बोली—“वनवास के अन्त में दूसरा वनवास और दूसरे वनवास के अन्त में मृत्यु !”

“द्रौपदी !” श्रीकृष्ण अधीर हो उठे। “इस प्रकार बोलकर महाराजा के व्यथित हृदय को और अधिक वेदना न पहुँचाओ। इस वनवास के अन्त में सब मंगल हो जायगा।”

“भैया श्रीकृष्ण !” द्रौपदी बोली। “तुम जाना चाहते हो तो खुशी से जाओ; परन्तु यदि इस चोटी को तुम भूल गए तो सारे संसार में मेरा कोई अन्य भाई नहीं है।”

“बहन !” श्रीकृष्ण आगे बोले। “तुम भूल रही हो। तुम मेरी बहन हो, यह बात तो है ही; परन्तु आर्यावर्त की किसी भी

स्त्री की चोटी खींची जाय और मैं बैठ रहूँ तो तुम देवकी के पेट से पत्थर जन्मा हुआ समझना । मैं बैठना चाहूँ तब भी विश्व की नियामक सत्ता मुझे बैठने नहीं देगी । इस प्रकार के दुष्ट राजा जब-जब ऐसे कृत्य करते हैं तब-तब मेरा हृदय मथित होता है और उनका कब नाश करूँ, यहो मन में होता रहता है । देवी पांचाली ! यह सच है कि ऐसे दुष्ट राजाओं के अत्याचार दिन-पर-दिन बढ़ते जा रहे हैं; परन्तु साथ ही यह भी सच है कि उनके सिंहासनों के पायों को दीमक लग रही है । उनके सिंहासनों के नीचे मैं आज अनेक प्रवाहों को जाते-आते देख रहा हूँ । जगन्निर्यन्ता को इस बलाबल के कैसे-कैसे प्रयोग करने शेष हैं, यह कौन कह सकता है ? परन्तु बहन ! मुझे इसका विश्वास है कि तुम्हारी एक चोटी खींचने के बदले में अन्य अनेक चोटियाँ खींची जायंगी । अब मुझे विदा दो ।”

“भैया !” द्रौपदी बोली । “प्रसन्नता से जाओ ।”

“श्रीकृष्ण !” युधिष्ठिर बोले । “हमारी सुधि लेने फिर शीघ्र ही आना ।”

“सखे श्रीकृष्ण !” अर्जुन ने कहा । “मैं क्या कहूँ, यह मुझे सूझ नहीं पड़ रहा है । अभिमन्यु का ध्यान रखना ।”

“महाराज श्रीकृष्ण !” भीमसेन बोला । “बड़े भाई कहते हैं, इसलिए मानना पड़ता है; अन्यथा मैं ऐसे वनवास को जरा भी न मानता । मैं तो एक बार में दो टुकड़े करने की बात जानता हूँ ।”

“श्रीकृष्ण !” नकुल ने कहा । “आपके आने से सबको और विशेष कर देवी को शांति मिल गई ।”

“और”—सहदेव बोला । “हम हताश हो गए थे, सो हममें नया बल आगया । श्रीकृष्ण काल के बलाबल को परख सकते हैं,

इसलिए जो बात हम जैसों की समझ में नहीं आती, वह अंत में इन्हें सूझ जाती है।”

“अच्छा, तो अब नमस्कार !” इतना कहकर श्रीकृष्ण रथ में बैठे और द्वारका की ओर चल दिये।

: ५ :

सन्धि की बातें

“महाराज युधिष्ठिर !” श्रीकृष्ण बाले। “मुझे यह उचित जान पड़ रहा है कि मुझे हस्तिनापुर जाकर सन्धि के लिए एक अन्तिम प्रयत्न कर देखना चाहिए।”

भोमसेन तुरन्त बोल उठा — “अभी आपके हस्तिनापुर जाने की बात हो सकती है ?”

“क्यों नहीं ?” श्रीकृष्ण ने कहा।

भीम से न रहा गया—“आज जब युद्ध के नगाड़े बज रहे हैं और तलवारें म्यान से बाहर झाक रही हैं तब हमारी सन्धि की बात कौन सुनेगा ?”

श्रीकृष्ण ने तुरन्त पूछा—“तुम सुनोगे ?”

द्रौपदी बोली—“मेरे तो सुन-सुनकर कान पक गए।”

नकुल ने कहा - “हमारे सुनने पर भी जबतक दुर्योधन न सुने, तबतक क्या हो सकता है ? देखिये न, वह संधि की झूठी-झूठी बातें भी करता है और कुरुक्षेत्र के मैदान में सेना भी एकत्र करता जा रहा है। वह सन्धि की बातें इसीलिए तो सुनता है कि जिससे उसे और अधिक समय मिल जाय।”

“और” सहदेव ने कहा। “हम चाहे कितने ही शुद्ध हृदय से बातें करें, फिर भी दुर्योधन उसका दुरुपयोग ही करेगा।”

“स्नेह से पिलाया हुआ दूध भी सर्प के मुँह में विप हो जाता है।” द्रौपदी बोली।

“देवी!” युधिष्ठिर शान्तिपूर्वक बोले। “फिर भी यदि श्रीकृष्ण कहते हैं तो एक और प्रयत्न करने में कोई हानि नहीं है।”

भीम गरज उठा —“हानि ही है। कौरव अपनी तैयारी किये जा रहे हैं और हम सन्धि की आशा में ही बैठे हुए हैं।”

“भीमसेन!” श्रीकृष्ण ने कहा। कौरवों को दूसरों के बल पर लड़ना है, इसलिए उन्हें तैयारी करनी ही होगी; परन्तु वे चाहे जितनी बड़ी तैयारी करें, फिर भी वह अधूरी ही होगी।”

“हमें भी तो दूसरों से सहायता लेनी है।” नकुल बोला।

“हमें ‘सहायता’ लेनी है!” अर्जुन ने सहायता शब्द पर भार देते हुए कहा।

“कारण,” श्रीकृष्ण ने बात पूरा की। “तुम दूसरों के बल पर निर्भर नहीं हो। अर्जुन को क्या तैयारी करनी है? दुर्योधन इस क्षण कहे तो इमा क्षण अर्जुन गांडव चढ़ा सकते हैं। इसीलिए मैं कहता हूँ कि यदि संधि का प्रयत्न निष्फल गया तो भी तुम्हें कुछ खोना नहीं पड़ेगा। खोने की बात यदि है तो कौरवों के लिए है।”

“परन्तु फिर भी,” भीमसेन कुछ हिचकिचाहट से बोला। “हम बार-बार जो संधि की बात कर रहे हैं, इससे दुर्योधन हमें कायर समझता है।”

“शकुनी भी हमारा उपहास करता है।” द्रौपदी बोली।

“शकुनी का भीमसेन को कायर समझना ही उचित है।” श्रीकृष्ण ने कहा। “शकुनी जैसे पराक्रमी की दृष्टि में भीम को कायर ही सिद्ध होना चाहिए।”

“तो फिर श्रीकृष्ण हो आर्य एक बार हस्तिनापुर !” अर्जुन ने राय दी ।

“मुझे तो यह बिलकुल व्यर्थ मालूम होता है ।” भीम ने कहा ।
“वहाँ कोई श्रीकृष्ण का कथन सुनने वाला नहीं है । उलटे वे लोग श्रीकृष्ण की निन्दा करेंगे ।”

“फिर भी एकवार श्रीकृष्णको भेजना चाहिए ।” अर्जुन बोला !
“अभी तक समस्त कुरुकुल के सम्मुख हमारी वास्तविक स्थिति प्रकट नहीं हो सकी । महाराज श्रीकृष्ण हस्तिनापुर की सभा में जाकर इसकी घोषणा करेंगे और यह निश्चय कर आर्यंगे कि पांडव संधि या मृत्यु दोनों में से क्या चाहते हैं ।”

“इतना हो नहीं,” श्रीकृष्ण ने कहा । “मैं सारे संसार की सभा में पांडवों के अधिकार का घोषणा करूँगा और कौरवों को उनके नग्न स्वरूप में सबके सामने उपस्थित करूँगा । भीमसेन ! तुम यह न समझो कि मैं हस्तिनापुर जाने की बात केवल तुम पांडवों के लिए कर रहा हूँ । तुम कौरव-पांडवों का यह झगड़ा मुझे सारे जगत का झगड़ा मालूम हो रहा है । हस्तिनापुर में जाकर यदि मैं कौरव-पांडवों में सन्धि करा सका तो सारे संसार में जो अशान्ति और वैर-द्वेष फैला हुआ है, उसका भी निवारण हो सकता है । इसलिए मैं हस्तिनापुर जाने का आग्रह कर रहा हूँ । तुम्हारा प्रश्न आज एक प्रकार से विश्व का प्रश्न बन गया है ।”

“तब आप अवश्य जाइये ।” युधिष्ठिर बोले ।

“परन्तु कहीं दुर्योधन की बातों में न आजाइएगा ।” द्रौपदी बोली ।

“दुःशासन को स्पष्ट बता दीजिएगा कि भीम की गदा उसके रुधिर की प्यासी है ।” भीमसेन ने कहा ।

“मैं तो यह खोज करने जा रहा हूँ कि रुधिर के प्यासों की

प्यास रुधिर के बिना कैसे शान्त हो सकती है।” श्रीकृष्ण बोले। “द्रौपदी ! तुम ऐसी शंका क्यों कर रही हो कि कौरव मुझे फुसला लेंगे ? पांडवों का अधिकार दीपक की तरह स्पष्ट है। मैं मंधि चाहता हूँ। मंधि के लिए मैं भरसक प्रयत्न करूँगा; परन्तु तुम यह विश्वास रखना कि वह संधि ऐसी होगी, जो तुम्हें शोभा दे। ऐसा न समझना कि पांडवों के लिए सर्वज्ञ को दासता का लेख लिखाऊंगा। जब ऐसा विकट प्रसंग आयगा तब मैं अपने स्वतः के रुधिर से पांडवों के अधिकार का अमर लेख लिखूँगा, जिसे पांडवों के पाम से ईश्वर तक न छान सकेगा। बस, इतना पर्याप्त है न ?”

“आप पर हमें पूर्ण विश्वास है।” अर्जुन बोला।

“आपके हाथों में हम निर्भय हैं।” नकुल ने कहा।

“मैं त्रस्त होकर बोल रही थी; परन्तु आप पर मेरा विश्वास तिल-मात्र भी कम नहीं है।” द्रौपदी बोली।

“आप हमारे केवट हैं। आप जो कुछ कर आयेंगे वह हमें स्वीकार होगा।” युधिष्ठिर ने कहा।

“तो फिर मैं जा रहा हूँ। अर्जुन ! मैं मोचता हूँ, कौरव मानेंगे नहीं। यह मैं भली-भाँति जानता हूँ कि वे अपने अभिमान में चूर हैं। उन्हें विश्वास है कि युद्ध होगा तो वे पांडवों को पीस डालेंगे। तुम्हारी छिपी शक्ति का उन्हें ज्ञान नहीं है। फिर भी मैं उन्हें चेतावना दूँगा। अत्यन्त विनय से परन्तु दृढ़ता से मैं तुम्हारी मांग उपस्थित करूँगा और प्रयत्न करूँगा कि जिससे पांडव और कौरव मिल-जुलकर एक दूसरे के साथ रह सकें। परन्तु परिणाम ईश्वर के हाथ है। फिर भी एक बात स्पष्ट है। आज जो अनेक राजा यह समझ रहे हैं कि पांडवों के दुराग्रह के कारण संधि नहीं हो रही है, उनकी आंखें खुल जायंगी

और उनके हृदय में कौरवों के लिए जो स्थान बना होगा, वह रिक्त हो जायगा । द्रौपदी ! अच्छा, अब जाता हूँ ।”

“बहुत अच्छा, जाइये ।”

: ६ :

सन्धि या युद्ध

“महाराज धृतराष्ट्र !” कौरव-सभा की असाधारण शान्ति को भंग करते हुए श्रीकृष्ण ने कहा । “मैं पांडवों की ओर से सन्धि के लिए आया हूँ । मेरी साग्रह प्रार्थना है कि आप संधि स्वीकार करके कौरवों और पांडवों का हित-साधन करिये । महाराज ! आप सारे कुरु-कुल के पूज्य हैं । महाराज पांडु के जाने के पश्चात् पांडवों के हित का भार भी आपन सँभाला है । आप यह समझते हैं कि महाराज शान्तनु के इस सिंहासन पर पांडवों का अधिकार है, इसे कोई अस्वीकार नहीं कर सकता । जब तक आपके पार्श्व में पितामह और द्रोण बैठे हैं तब तक हम सब यही मानते हैं कि महाराज शान्तनु का पुण्य समाप्त नहीं हुआ । आप विचार करके पांडवों के अधिकार को स्वीकार करिये, जिससे केवल कुरु-कुल का ही नहीं, समस्त मानव-समाज का कल्याण हो ।”

जब श्रीकृष्ण अपने आसन पर बैठ गये तब पितामह बोलने के लिए खड़े हुए । “धृतराष्ट्र !” भीष्म बोले । “श्रीकृष्ण जो कह रहे हैं, वह यथार्थ है । यदि पांडवों के साथ दुर्योधन सन्धि करेगा तो भीम और अर्जुन दुर्योधन की कीर्ति को सारे जगत् में फैलायेंगे और जगत् तुम्हारे चरणों में झुकेगा । बेटा दुर्योधन, तू समझ । आज तक संधि की बड़ी-बड़ी बातें हुईं और खतम हो गईं । आज स्वयं श्रीकृष्ण आये हैं । वे आज संसार के

अद्वितीय युग-पुरुष हैं ! हम अपनी आंखों से जिन्हें नहीं देख सकते, उन छोटे-बड़े काल के समस्त बलों को ये देख सकते हैं और उनके परिणाम इनके हृदय में चित्रित हो जाते हैं। जो मनुष्य अपनी छोटी-सी बुद्धि की गणना को एक ओर रखकर इस महापुरुष की इच्छा के अधीन होगा, उसका जीवन धन्य हो जायगा। बेटा ! ये श्रीकृष्ण अपने हाथ में जगत् के लिए शान्ति लेकर आए हैं, इसे तू समझ और उस शान्ति का स्वागत कर। यह न समझना कि मेरे जैसे वृद्ध के कथन में कोई सार नहीं है।”

भीष्म के बैठने पर धृतराष्ट्र ने अपना मुख दुर्योधन की ओर घुमाकर कहा, “बेटा दुर्योधन ! श्रीकृष्ण और पितामह को उत्तर दो। ये दोनों हमारे कल्याण की बात करते हैं। मेरे लिए तो तुम और पांडव सब एक समान हो। भाई पांडु चले गए और यह भार मुझ पर डाल गए।”

धृतराष्ट्र के बात समाप्त करते-न-करते दुर्योधन फुफकारता हुआ उठा। “महाराज धृतराष्ट्र ! मैं बहुत पहले ही विचार कर चुका हूँ और उत्तर भी दे चुका हूँ। मेरे जैसा मनुष्य बार-बार विचार करना और बार-बार उत्तर देना नहीं जानता। यदि मैं इस प्रकार करने बैठूँ तो मेरा हस्तिनापुर का राज्य एक दिन भी न चले। श्रीकृष्ण पांडवों के सम्बन्धी और अर्जुन के मित्र हैं, इसीलिए आए हैं। किसी को यह मानने की आवश्यकता नहीं कि श्रीकृष्ण युग-पुरुष हैं और इन्हें जगत् की शान्ति की चिन्ता है। भीष्म पितामह के समान वृद्ध जन भले ही ऐसा समझें। ये यदि ऐसा न समझें तो इनका वृद्धत्व इनके लिए भार-स्वरूप हो जाय। इस सभा में बैठे हुए युवकों से पूछें तो आपको पता लगेगा कि कि भीष्म, द्रोण, विकर्ण आदि पागल हैं और उनके कथनानुसार चलने में बड़ा खतरा है। श्रीकृष्ण ! तुमने धृतराष्ट्र को अच्छा पाठ पढ़ाया; परन्तु इस दुर्योधन ने अभी अपनी बुद्धि बेच नहीं

दी है। इस सिंहासन पर पांडवों का अधिकार सिद्ध करने के लिए कुरुक्षेत्र के मैदान में रक्त के लेख लिखने पड़ेंगे। हाँ, यह दूसरी बात है कि तुम हम से प्रार्थना करो तो हम कुछ दे दें। परन्तु श्रीकृष्ण ! तुमने विदुर चाचा के पास ठहरकर काम उल्टा कर दिया। तुम्हारी ये मीठी-मीठी बातें मुझे बहका नहीं सकतीं, समझे ? अपनी सन्धि और शान्ति को जिस प्रकार लाये हो, उसी प्रकार वापस ले जाओ। युधिष्ठिर से कहना कि शीघ्र-से-शीघ्र युद्ध-भूमि में पहुँच जाय। अब तो कुरुक्षेत्र जो निर्णय करेगा, वही दुर्योधन का निर्णय होगा।”

दुर्योधन के इन वचनों पर कर्ण और शकुनि ने हर्ष-ध्वनि की। श्रीकृष्ण ने सारी सभा की ओर दृष्टि डाली और खड़े होकर बोले, “दुर्योधन ! तुमने अपने हृदय की बात इतने स्पष्ट रूप से मुझे बता दी, इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। परन्तु वैसे मुझे बड़ा खेद हो रहा है। तुम सबको मैं मृत्यु से घिरा हुआ देख रहा हूँ। जैसा कि भीष्म ने कहा, मैं कोई महापुरुष नहीं। तुम सब की तरह मैं भी अपना माँ के उदर से पनपा हुआ एक साधारण मनुष्य हूँ। परन्तु मुझे ऐसा दीख रहा है कि मेरी संधि का तिरस्कार करके और पांडवों को युद्ध का आमंत्रण देकर तुम सब यमराज के मुख में हाथ डाल रहे हो। दुर्योधन ! सच कहता हूँ, यदि तुम पांडवों के साथ सन्धि कर लो तो तुम्हें मीठा फल मिलेगा। पांडव आज तक के सारे दुःख भूल जायेंगे और कौरव-पांडव मिलकर पृथ्वी का कँपा देंगे।

“पांडवों ने अब तक बहुत सहा है। आज वे अपने पिता-स्वरूप धृतराष्ट्र से नम्रता-पूर्वक अपना अधिकार मांग रहे हैं। आज तक तुमने अकेले हाथों राज्य किया है, इसलिए उसे छोड़ते हुए तुम्हारा मन नहीं कर रहा। इसी बात का सारा रोना है। परन्तु दुर्योधन ! दूसरों के उचित अधिकार छीनकर कोई

समृद्ध नहीं हुआ और न हो सकता है। दुर्योधन ! पांडवों ने आजतक तुम्हारा अधर्म सहा, इससे यदि तुम उन्हें अशक्त समझते हो तो यह तुम्हारी भारी भूल है। यदि पांडव अजात-शत्रु युधिष्ठिर की आज्ञा न मानते होते तो तुम अपना यह राज्य कभी के गँवा चुके होते। यह समझ रखना कि यदि तुम समस्त भारत की सेना को अपने पक्ष में कर लो तो भी उसे क्षण-भर में उड़ा देने के लिए भीम और अर्जुन समर्थ हैं। दुर्योधन ! क्षण-भर के लिए यदि यह मान लिया जाय कि पांडव बेचारे निर्बल हैं और तुम्हें हरा नहीं सकते; क्षण-भर के लिए यह भी मान लिया जाय कि कुरुक्षेत्र के युद्ध में पांडव हार गये और दुर्योधन की जीत का डंका बज गया तब भी धृतराष्ट्र-पुत्र ! तुम उस डंके को झूठा समझना। जगत् की अव्यक्त-शक्ति तुम्हारा यह अधर्म सहन नहीं कर सकेगी। स्वयं पांडव न सही, जगत् के किसी भी कोने से अन्य कोई अवश्य जागेगा और तुम्हारे हाथों से यह साम्राज्य छीन लेगा। संसार का यह सनातन नियम है। महाराज धृतराष्ट्र ! आपका पुत्र दुर्योधन, मारे कुरु-वंश को वेग से मृत्यु की ओर घसीटे जा रहा है। उसे रोकिये और वह न माने तो उसे बंधन में रखिये। आज इसकी बुद्धि भ्रष्ट होगई है। इससे सारासार का ज्ञान खो दिया है। समस्त भारत के ब्राह्मण और ऋषि-मुनि आज एक जबर्दस्त संहार के चिह्न देख रहे हैं। इस संहार को रोकना अभीतक आपके हाथ में है। ईश्वर आपको इस संहार को रोकने की शुभ मति दे।”

श्रीकृष्ण जब इस प्रकार बोलकर बैठ गए तब सारी सभा में एक प्रकार की धीमी-धीमी आवाज़ शुरू हो गई। एक ओर दुर्योधन और उसकी चांडाल चौकड़ी आपस में फुसफुसाने लगी, दूसरी ओर हस्तिनापुर का महाजन-मंडल इस विचार में पड़ गया कि दुर्योधन इस संधि को किस तरह स्वीकार करेगा।

एक ओर दुर्योधन के क्षत्रिय मित्र मूँछों पर ताव देते हुए श्रीकृष्ण का उपहास करने लगे, दूसरी ओर भीष्म, द्रोण और विकर्ण दुर्योधन को बन्दी करने की मंत्रणा करने लगे। ब्राह्मण और ऋषि-मुनि इस चिन्ता से दुखी होने लगे कि श्रीकृष्ण का संधि-प्रयत्न निष्फल जायगा।

इसी समय सात्यकि श्रीकृष्ण के सिंहासन के समीप आया और उनके कान में कुछ कहने लगा। सारी सभा का ध्यान सात्यकि और श्रीकृष्ण की ओर आकर्षित हो गया। श्रीकृष्ण सुन्दर हास्य करके बोले, “महाराज धृतराष्ट्र ! सात्यकि मुझे शुभ संवाद दे रहे हैं। आपका पुत्र और आपका साला शकुनी मुझे बन्दी करने का विचार कर रहे हैं, इससे बेचारे सात्यकि चिंतित और अधीर हो रहे हैं। परन्तु सात्यकि को ज्ञात नहीं है कि श्रीकृष्ण को बन्दी करना उतना सरल नहीं है, जितना कि दुर्योधन समझता है। दुर्योधन ! तुम किसे बन्दी करोगे ? तुम श्रीकृष्ण को बन्दी कर सकते हो, भीम को कर सकते हो, अर्जुन को कर सकते हो, कदाचित् पांडवों के लाख-दो लाख मित्रों को भी बन्दी कर सकते हो, परन्तु सारी जनता का जो असंतोष आज तुम्हारे सामने खड़ा हुआ है, उसे तुम बन्दी नहीं कर सकते। तुम मुझे बन्दी क्यों करते हो ? तुम चाहो तो मेरी हत्या कर सकते हो, पांडवों का भी वध करा सकते हो; परन्तु इससे यह न समझना कि हस्तिनापुर का सारा राज्य तुम्हारे हाथ में रह जायगा। कारण कि तुम्हारे राज्य के पाये अन्दर से खोखले हो गये हैं। तुम सोचते हो कि तुम्हारा राज्य इन बैठे हुए क्षत्रियों की तलवारों की नोक पर निर्भर है; परन्तु ऐसा सोचने वाला मूर्ख है। राज्य तो जनता के हृदय पर निर्भर है। तुम्हारा यह जन-समूह जिह्वा से चाहे न बोले, परन्तु उसके हृदय पढ़ते हुए मुझे प्रतीत हो रहा है कि उसके अन्तर से तुम्हारा शासन उठ गया

है और जिस राजा का राज्य जनता के हृदय से उठ गया, वह राज्य शस्त्रास्त्रों का अधिकाधिक सहारा देने पर भी टिक नहीं सकता। अनेक बार ऐसे राज्य को तोड़ने के लिए एक छोटा-सा कंकड़ भी पर्याप्त हो जाता है ! दुर्योधन ! आज मैं तुम्हारे समीप वसुदेव के पुत्र श्रीकृष्ण के रूप में नहीं आया हूँ; बल्कि तुम्हारे अधर्म के विरुद्ध जो मूक विद्रोह सारे भारतवर्ष में सुलग रहा है, उस विद्रोह को व्यक्त करने वाले एक व्यक्ति के रूप में आया हूँ। मुझे बन्दी करोगे तब भी तुम उस विद्रोह के विराट् स्वरूप का क्या बिगाड़ लोगे ? मुझे तो दुर्योधन को मूर्खता पर हँसी आरही है। दुर्योधन बेचार। समझता नहीं कि अपने राज्य को स्थिर रखने के लिए जो-जो उपाय वह काम में लारहा है, वे सारे उपाय उल्टे राज्य के पाये में चाँट मार रहे हैं। और पांडवों के प्रति लोगों का पक्षपात उत्पन्न कर रहे हैं। महाराज धृतराष्ट्र ! अब भी आप इधर ध्यान दीजिए। अभी सँभलने का अवसर है। इन भीष्म से पूछिये। मैंने तो पांडवों को यह भी बता दिया है कि यदि मैं तुम्हें केवल पाँच ग्राम दिलवा दूँगा तो उसमें भी तुम्हें सन्तोष मानना पड़ेगा।”

इतना कहकर श्रीकृष्ण बैठ गए। सारा सभा क्षण-भर के लिए विचार में डूब गई और सब एक दूसरे का मुँह ताकने लगे। इतने में भीष्म उठे और बोले, “बेटा दुर्योधन ! श्रीकृष्ण ठाक रह रहे हैं। श्रीकृष्ण को बन्दी करने का विचार तुम्हें कैसे आया ? जब तक धृतराष्ट्र इस दुष्ट शकुनि को हस्तिनापुर से बाहर नहीं निकालेंगे तब तक हमारा कल्याण नहीं। दुर्योधन ! मान जा। पाँच ग्राम दे देने से तुम्हें क्या कमी हो जायगी ? मान जा और सबका आशीर्वाद प्राप्त कर।”

भीष्म को उत्तर देते हुए दुर्योधन बोला - “पितामह ! अब मैं छोटा नहीं हूँ। मैं सब समझता हूँ। मैं मामा शकुनी की इच्छा

पर चलता हूँ, ऐसा आप न समझें। अन्त में श्रीकृष्ण पाण्डवों को पाँच ही ग्राम देने के लिए कह रहे हैं; परन्तु आधा राज्य या पाँच ग्राम, कुछ भी उन्हें देने को मैं तैयार नहीं हूँ। आप तो पाँच ग्राम को बात कह रहे हैं, परन्तु दुर्योधन तो उन्हें सुई की नोक के बराबर भूमि देने को भी राजी नहीं है। बस न ? मुझे यह बार-बार की भक-भक पसन्द नहीं है। पाँच ग्राम ही क्यों, पाण्डव सारे हस्तिनापुर का और साथ-साथ त्रिलोक का राज्य भी लें—परन्तु वह कुरुक्षेत्र के मैदान में, हस्तिनापुर के सभा-गृह में नहीं। श्रीकृष्ण ! तुम जाओ। तुम्हें अपना उत्तर मिल गया है।”

इतना कहकर दुर्योधन अपनी मूर्खों पर बल देता हुआ बैठ गया। तब श्रीकृष्ण फिर बोलने के लिए खड़े हुए। “महाराज धृतराष्ट्र, पितामह, आचार्य, कुरुवंश के पुत्रों और सभाजनों ! मैं पाण्डवों की ओर से सन्धि-सन्देश लेकर आया था और आपकी ओर से युद्ध-सन्देश लेकर जा रहा हूँ। आपकी इस लड़ाई का कुन्ती के पुत्र स्वागत करेंगे, इसमें मुझे जरा भी सन्देह नहीं। जब मैं आपके पास आ रहा था तभी पाण्डवों ने मुझे कहा था कि आप व्यर्थ पानी को क्यों मथ रहे हैं ? परन्तु मेरे जैसों को इस प्रकार का पानी मथने में भी शान्ति मिलती है। सन्धि का अन्तिम-से-अन्तिम प्रयत्न मैंने कर लिया, इससे मेरा हृदय हल्का हो गया है। इसके पश्चात् अब क्या होगा, यह ईश्वर के हाथ है। मुझे तो ऐसा प्रतीत हो रहा है कि तुम सब वेग-पूर्वक विनाश की ओर दौड़े जा रहे हो, इसी से मेरी बात तुम्हारे गले नहीं उतरती। काल की यही इच्छा है, यह सोचकर मैं विश्राम ले रहा हूँ। दुर्योधन ! अब मैं जा रहा हूँ। तुम्हें यह ज्ञात है कि इस युद्ध में मैं हाथ में शस्त्र तक नहीं लूँगा। परन्तु मेरे वचन तुम्हें युद्ध के समय सत्य मालूम होंगे और आज जो बात समझ

में नहीं आ रही है, वह युद्ध-भूमि में समझ आयगी। ईश्वर जगत का कल्याण करे।”

इतना कहकर श्रीकृष्ण धृतराष्ट्र से विदा लेकर चलने लगे। धृतराष्ट्र ने सिंहासन पर से खड़े होते हुए कहा—“श्रीकृष्ण ! तुम्हारी बात बिलकुल सत्य है; परन्तु दुर्योधन नहीं मानता, इस से विवश हूँ। तुम्हारे आशीर्वाद से सब कुशल-मंगल ही होगा।”

श्रीकृष्ण सभा से निकलकर रथ में बैठे और दारुक ने रथ हाँक दिया।

: ७ :

अर्जुन का समाधान

“पांचाली !” छावनी के एक तम्बू के बाहर चक्कर लगाते हुए अर्जुन बोला—“मुझे आज नया जीवन मिला है। गत रात का अर्जुन और इस समय तुम्हारे साथ बातें करने वाला अर्जुन, दोनों एक दीखते हुए भी भिन्न हैं, यह निश्चय जानना।”

“प्रिय अर्जुन !” द्रौपदी बोली—“ऐसी क्या बात होगई कि शरीर से पसीना बह निकला, आँखों तले अँधेरा छा गया, शरीर जलने लगा और गाँडीव हाथ से छूटने लगा ? जिन लोगों को युद्ध का संचालन करने पर भी ऐसा होजाये, क्या उनकी वीरों में गणना हो सकती है ?”

“पांचाली !” अर्जुन हँसता हुआ बोला—“इस प्रकार तो मैं बिलकुल कापुरुष हूँ ! अवश्य। परन्तु धृष्टद्युम्न की बहन ! यह स्मरण रखना कि युद्ध का संचालन करने वाले सभी शूर-वीर नहीं होते। अनेक शूरवीर कहलाने वालों की टाँगें उनकी पोशाक के अन्दर काँप रही होती हैं। शंख, भेरी आदि के नाद में मस्त होकर बेचारे लड़ते हैं, इससे जगत् की आँखें उन्हें ठीक

रूप में देख नहीं सकती। देवी ! वीर समझो या कापुरुष; परन्तु मैं मूढ़ अवश्य बन गया हूँ।”

“श्रीकृष्ण न होते तो भीष्मपितामह एक क्षण में तुम्हारा सिर उतार लेते और सारे युद्ध का अन्त हो जाता।” द्रौपदी बोली।

“अवश्य !” अर्जुन ने कहा—“परन्तु ईश्वर की इच्छा कुछ और होगी। मुझे स्वयं ज्ञात नहीं कि जब मैं द्वारका गया था तब शस्त्र-हीन अकेले श्रीकृष्ण और उनकी सम्पूर्ण सेना, इन दोनों में से मैंने अकेले श्रीकृष्ण को क्यों पसन्द किया। मैं स्वयं नहीं जानता कि ईश्वर के किस संकेत का अनुसरण करके मैंने श्रीकृष्ण को अपना सारथी बनाया। देवी ! मैं समझा हूँ कि इन सबके पीछे परमेश्वर का कोई दैवी संकेत है। संकेत न हो तब भी इसमें कोई संदेह नहीं कि मुझे आज नया जन्म मिला है।”

“इस प्रकार तो तुम अनेक नये जन्म ले चुके हो।” द्रौपदी बोली—“तुम्हारे एक जीवन में पापी दुर्योधन ने तुम्हें अनेक जीवन जिलाये हैं।”

“यह दूसरी बात है।” अर्जुन ने कहा—“यों तो मनुष्य के जीवन में धूप-छाँह आती ही रहती है। परन्तु आज के प्रसंग ने मेरे जीवन में बड़ा परिवर्तन ला दिया है। बारह घंटे बीत चुके हैं, परन्तु मेरे हृदय में अब गूँज हो रही है, जैसे हिमालय के ऊँचे-से-ऊँचे शिखर पर से परमात्मा की भेदक ध्वनि सुनाई दे रही हो और कुरुक्षेत्र के मैदान से मुझे कहीं-का-कहीं ले जा रही हो।”

“परन्तु प्रिय अर्जुन !” द्रौपदी ने पूछा—“यह मेरी समझ में नहीं आता। श्रीकृष्ण सब बातों में तो निपुण हैं ही, धर्म में

भी निपुण हैं। मुझे यह ज्ञात नहीं हुआ कि धर्म-शास्त्र का अध्ययन उन्होंने कहाँ किया है।”

“यहो विशेष बात है।” अर्जुन बोला—“धर्म-शास्त्र की पोथियाँ पढ़ने वाले उन पोथियों के अक्षरों में ही फँस जाते हैं। इन शास्त्रों के जंगल इतने सघन होते हैं कि एक बार भूलने पर रास्ते का पता लगना हो कठिन है। श्रीकृष्ण जैसे पुरुष शास्त्रों को नहीं पढ़ते, परन्तु स्वयं शास्त्र ही उनके जीवन से उद्भव होते हैं।”

“श्रीकृष्ण ने तुम्हें यह समझाया कि यह युद्ध अवश्य करना चाहिए।” द्रौपदी ने पूछा।

“यों नहीं।” अर्जुन बोला—“उन्होंने मुझसे कहा कि तू इस समय युद्ध का ही अधिकारी है, इसलिए यह जो युद्ध से भाग जाने की और भोख मांगकर रोटी खाने की बातें कर रहा है, वे सब मिथ्या हैं।”

“ऐसा कहा?” द्रौपदी प्रसन्न होते हुए बोली—“ठीक कहा मेरे भैया श्रीकृष्ण ने। महाराज को भी वह बात सुनाओ, जिससे वे जो बार-बार संन्यास लेने की बातें करते हैं, वे बन्द हों।”

“द्रौपदी!” अर्जुन बोला—“श्रीकृष्ण ने युद्ध करने के लिए कहा, परन्तु जिस प्रकार तुम कहती हो, उस प्रकार नहीं। तुम तो कौरवों से बदला लेने के लिए युद्ध का आग्रह करती हो; परन्तु श्रीकृष्ण ने निष्काम कर्म की दृष्टि से युद्ध करने को मुझे कहा है।”

“यह निष्काम-विष्काम मेरी समझ में नहीं आता।” द्रौपदी बोली—“मैं तो यह जानती हूँ कि कौरवों को तुम्हें मारना चाहिए।”

“फिर यही तो बड़ा भेद है न?” अर्जुन ने कहा—“एक क्रिया को यदि एक मनुष्य राग से करता है तो वह उस के लिए

बन्धन होता है, परन्तु उसी क्रिया को दूसरा मनुष्य राग-द्वेष के बिना धर्म के रूप में करता है तो वह उसके कल्याण में सहायक होता है।”

“तब श्रीकृष्ण बड़े धर्माचारी हैं, यही न ?” द्रौपदी बोली।

“द्रौपदी ! तुम भूलती हो !” अर्जुन ने कहा—“यों कहो कि श्रीकृष्ण को हमने पहचाना नहीं है। देवी ! ब्रज की गोपियों से जाकर पूछो तो वे कहेंगी कि हमारा यह बालकृष्ण बालकों के समान निर्दोष और प्रेम की मूर्ति है। आज भी गोपियां जमुना के तट पर उनकी मुरली की ध्वनि सुनती हैं और क्षणभर अन्तर में गहरे उतरकर जीवन का आनन्द लेती हैं। चाणूर जैसे मल्ल से जाकर पूछो तो वह कहेगा कि श्रीकृष्ण बड़ा मल्ल है। मुझ जैसे से पूछो तो मैं कहूँगा कि खाण्डववन दहन करके वहां नई बस्ती बसाने में श्रीकृष्ण मेरे अद्वितीय साथी थे। दुर्योधन और शकुनी से पूछो तो वे कहेंगे कि श्रीकृष्ण बड़े राजनीतिज्ञ हैं और किसी के हाथ में आने वाले नहीं। विदुर से पूछो तो वे कहेंगे कि श्रीकृष्ण साक्षात् ईश्वर के अवतार हैं। व्यास भगवान् से पूछो, तो वे कहेंगे कि श्रीकृष्ण हमारे युग पुरुष हैं। पांचाली ! श्रीकृष्ण इनमें सब कुछ हैं और इससे बहुत अधिक हैं। आज मैंने यह देख लिया है।”

“ऐसा आज तुमने क्या देखा ?” द्रौपदी ने पूछा।

“द्रौपदी ! क्या बताऊँ ?” अर्जुन बोला—“मेरे जीवन की वे अनेक उलझनें, जो किसी से नहीं सुलझ सकती थीं, श्रीकृष्ण ने आज एकदम सुलझा दीं। जब हिमालय पर तपस्या करने गया था तब मैं अनेक ऋषि-मुनियों के आश्रमों में रहा हूँ। मैंने योग, कर्म, अकर्म, ज्ञान और भक्ति की अनेक बातें सुनी हैं। परन्तु आज यह स्पष्ट होगया कि वे सब बातें मेरे लिए शून्य के समान थीं। कैसी उनकी विशेषता है ! पर्वत पर से गिरते हुए

गंगा के प्रवाह की तरह स्वच्छ और स्पष्ट उनका उपदेश है ! जितनी स्पष्टता से मैं पांचाली को देख रहा हूं, उतनी ही स्पष्टता से श्रीकृष्ण ने आज मुझे धर्म का दर्शन कराया । हमारे देश में भिन्न-भिन्न धर्मावलम्बी अपनी-अपनी सीमा बनाकर जो दुराग्रह खड़े करते हैं, उनका हल श्रीकृष्ण के पास ही है ।”

“श्रीकृष्ण स्वयं सांख्य में विश्वास रखते हैं या योग में ? उनके कथनानुसार ज्ञान सत्य है या भक्ति ?” द्रौपदी ने पूछा ।

“द्रौपदी !” अर्जुन बोला—“क्षमा करना, मुझे तुम्हारे प्रश्न पर हँसी आ रही है । श्रीकृष्ण न सांख्य मानते हैं, न योग, न ज्ञान, न भक्ति । वे विश्वास करते हैं केवल परमात्मा में । यदि सांख्य परमात्मा की ओर ले जाता हो तो उसे मानते हैं, नहीं ले जाता हो तो नहीं मानते । योग परमात्मा की ओर ले जाता हो तो उसे मानते हैं, नहीं ले जाता हो तो नहीं मानते । यही बात ज्ञान और भक्ति के लिए है । उन्हें हमारे सांख्य योग के झगड़े से कोई मतलब नहीं, उन्हें परमात्मा से मतलब है । मैं यह सांख्य है, यह योग, यह कर्म और यह ज्ञान, इस प्रकार बहुत बका करता था, परन्तु श्रीकृष्ण ने मेरा सारा भ्रम दूर कर दिया है ।”

“तो तुम्हें श्रीकृष्ण ने अपना नया धर्म सिखाया है ?” द्रौपदी ने पूछा ।

“उनका कोई नया धर्म नहीं है । वे जो करते हैं, वही बोलते हैं और जब बोलते हैं तब आत्मा की गहराई से बोलते हैं । द्रौपदी ! सच कहूँ ? उन्होंने मुझे सांख्ययोग आदि के द्वारा मानव-धर्म की भांकी कराई है । और मेरी आंख से परदा दूर कर दिया है । अतएव मैं श्रीकृष्ण को योगेश्वर कहता हूँ ।”

“उनके इस मानव-धर्म की विशेषता बताओगे ?” द्रौपदी ने पूछा ।

“उसकी विशेषता एक ही है।”

“वह क्या ?”

“जहां धर्म का पालन करने से परमात्मा की हत्या होती हो, वहां धर्म को भी त्याग देना चाहिए।” अर्जुन ने संक्षेप में कहा—“मुझे आज प्रातःकाल ही श्रीकृष्ण ने कहा था कि अर्जुन ! तू सब धर्मों का त्याग करके केवल परमात्मा को ग्रहण कर। इसी का नाम मानव-धर्म है। जो धर्म, प्रत्येक मनुष्य को भाई समझना सिखाने के बदले शत्रु बनाता है, वह धर्म नहीं है। हमारे सांख्य योग वाले, कर्म ज्ञान वाले, ईश्वर निरीश्वरवादी भले ही आपस में लड़ लें; परन्तु धर्म के नाम पर लड़ने वालों की इस प्रकार कभी विजय नहीं हो सकती। दुनिया में अनेक धर्म बने और अनेक बनेंगे। इन भिन्न-भिन्न धर्मों के जाल से छूटकर जो अपने अन्तर की आवाज के प्रति संच्छा रहेगा, वह परमात्मा के मार्ग पर होगा। अन्य सब मकड़ी की तरह अपने बनाए हुए जाल में ही फंसकर रह जायेंगे। देवी ! मैं आज धन्य हो गया।”

“फिर अब तो तुम अवश्य लड़ोगे। कहीं फिर तो गांडीव छोड़कर नहीं बैठ जाओगे ?” द्रौपदी बोली।

“मैं सोचता हूँ कि अब फिर मैं ऐसी दीनता नहीं दिखाऊँगा।” अर्जुन ने कहा—“देवी ! क्षमा करना। इस दीनता ने इस समय मुझे बड़ा लाभ पहुँचाया है। ऐसी दीनता दिखलाने से ही आज मुझे यह सब अनुभव प्राप्त हुआ है। इस दीनता को छिपाए रखा होता तो श्रीकृष्ण के अमर वचन कैसे सुन सकता ? देवी ! मुझे तो ऐसा लगता है कि श्रीकृष्ण ने केवल मुझ पर ही यह उपकार नहीं किया है; परन्तु जितने भी अर्जुन इस ससार में हैं और जिन्होंने अपने रथ की बागडोर परमात्मा के हाथ में सौंप दी है, उन सबको उद्देश्य करके कह रहे हों, इस

प्रकार श्रीकृष्ण ने मुझे यह सब सुनाया है। पांचाली ! यदि शब्द शरीर धारण कर सकते हों और वे शरीर अमर रह सकते हों तो मेरी शुभेच्छा है कि श्रीकृष्ण का यह उपदेश सारे आर्या-वर्त्त में अमर रहे और मेरे जैसे अनेक मूढ़ जनों के लिए मार्ग दर्शक बने। देवी ! मैं कैसा मूर्ख हूँ कि श्रीकृष्ण को आज तक पहचान न सका। और इसका भी क्या विश्वास है कि फिर उन्हें न भूल जाऊँगा। श्रीकृष्ण ! तुममें इतना अधिक मनुष्यत्व है कि तुम्हारा देवत्व मन में ठहर ही नहीं सकता।”

“अर्जुन !” द्रौपदी बोली—“मेरे लिए तो सबसे अधिक आनन्द की बात यह है कि मेरे अर्जुन का हाथ गांडोव पकड़ने के लिए अधिक बलवान होगया। अब श्रीकृष्ण हमें इस युद्ध में विजय दिलवा दें, तो हम निश्चिन्त होकर बैठें। प्रिय अर्जुन ! रात बहुत बीत गई है, अब विश्राम करो।”

“बहुत अच्छा।” अर्जुन ने कहा—“अभी इस बारे में बहुत-सी बातें मन में उठ रही हैं और इच्छा हो रही है कि उन सबको कहता जाऊँ; परन्तु अब कल कहूँगा। आज अब तुम भी विश्राम करो।”

अर्जुन अपने तम्बू में गया और द्रौपदी छावनी के दूसरी ओर चल पड़ी।

: ८ :

भीष्म की दृष्टि से

कुरुक्षेत्र का युद्ध समाप्त हुआ और युधिष्ठिर हस्तिनापुर के महाराजा बने। हस्तिनापुर का मुकुट मस्तक पर धारण करने के पश्चात् एक बार युधिष्ठिर भीष्म पितामह के पास गये। पितामह शर-शैया पर पड़े हुए थे। युधिष्ठिर ने निकट जाकर शीश झुकाया और शैया के एक ओर बैठ गए।

“युधिष्ठिर !” भीष्म ने पूछा—“अन्त में तुमने हस्तिनापुर का राज-मुकुट प्राप्त कर लिया न ?”

“पितामह !” युधिष्ठिर खिन्न होकर बोले—“रक्त'की इतनी नदियाँ बहानेके पश्चात् मिला हुआ यह मुकुट मुझे कितना प्रिय लग रहा है, यह मेरा हृदय ही जानता है। आप जैसों को इस मुकुट के कारण जब वाणों की शैया पर पड़े हुए देखता हूँ तब मुझे अपने प्रति तिरस्कार उत्पन्न होता है और अपनी पामरता का भान होता है।”

“बेटा युधिष्ठिर !” युधिष्ठिर को सान्त्वना दे रहे हों, इस प्रकार भीष्म बोले—“इस प्रकार खेद करने की आवश्यकता नहीं। मेरे जैसे वृद्ध को इतनी आयु में भी कौरवों के साथ रह कर यदि तुम्हारे विरुद्ध लड़ना पड़े तो मैं वाण-शैया के ही योग्य हूँ। युधिष्ठिर ! वैसे जीवन में किस मनुष्य को वाण-शैया पर नहीं सोना पड़ता ? मनुष्य मात्र के हृदय में ईश्वर ने इस प्रकार की कीलें ठोकी हुई हैं। ‘क्या करूँ, क्या न करूँ’ की उलझन में पड़कर मनुष्य को जो अन्तर्वेदना होती है, वह वाण-शैया नहीं तो और क्या है ? यदि वाण-शैया किसी के लिए नहीं है तो एक मूर्ख के लिए और एक ज्ञानी के लिए नहीं है। युधिष्ठिर ! मैं सामने एक नये सूर्य को उदय होते देख रहा हूँ। पुरानी रात को मैं अपने साथ लेकर सोया हूँ। जब इस अंधकार में से उस सूर्य का प्रसव होता है तब उसकी प्रसव-पीड़ा तो मुझे सहनी ही चाहिए न ? परन्तु आने वाले कल की आशा इस पीड़ा को मुला देती है और अभिनव आनन्द की कल्पना कराती है। बेटा ! तुम मेरी पीड़ा का विचार न करो। श्रीकृष्ण गये कि हैं ?”

“हैं ! माता कुन्ती ने उन्हें कुछ दिनों के लिए रोक लिया है।” युधिष्ठिर ने बताया।

“फिर तुम उन्हें अपने साथ क्यों नहीं लाये ?” भीष्म ने दृष्टि

धुमाकर कहा—उनका दर्शन करके मैं अपने जीवन को अधिक धन्य बनाता ।”

“पितामह !” युधिष्ठिर बोले—“श्रीकृष्ण के प्रति आपके सद्भाव को मैं जानता हूँ ।”

भीष्म तुरन्त बोल उठे—“सद्भाव नहीं, पूज्यभाव—भक्तिभाव कहो। तुम लोग उन्हें पहचानते नहीं। वे युग-पुरुष हैं। किसी और युग में उत्पन्न हुए होते तो लोग उन्हें ईश्वर के अवतार के रूप में पूजते। उनका दर्शन और उनका सत्संग जीवन की अमूल्य वस्तु हैं ।”

“पितामह !” युधिष्ठिर ने कहा—“आप उन्हें वर्षों से युग-पुरुष के रूप में जानते हैं। मेरे वे निकट संबंधी हैं और उनके कारण ही हम इस युद्ध में विजयी हुए हैं। फिर भी युद्ध में उन्होंने जो कुछ किया, उसकी बड़ी टीका हो रही है और मेरा उन पर पूज्यभाव होने पर भी उन टीकाओं का मेरे पास कोई उत्तर नहीं है ।”

“युधिष्ठिर !” भीष्म ने आश्चर्य से कहा—“लोग भूलते हैं। श्रीकृष्ण जैसे महापुरुष को टीका करने वाले लोगों के पास उन्हें मापने का यन्त्र कहां है ? हमारे तुम्हारे जैसे वामन-पुरुष उनके विराट् स्वरूप को पहचान ही कहां सकते हैं ! ऐसे महा-पुरुष को पहचानने के लिए स्वयं तपश्चर्या करके पवित्र होना चाहिए और फिर उनके जीवन-कार्यों पर दृष्टि डालनी चाहिए। मेरे कानों में भी यह बात पड़ी है। अनेक लोग उन्हें नीतिज्ञ कहते हैं। मुझसे पूछो तो मैंने इस युद्ध में उनके सारे कार्यों का अध्ययन किया है और इससे मेरा यह विश्वास अधिक दृढ़ हुआ है कि वे युग-पुरुष हैं। तुम धर्मात्मा हो, इससे यह बात तुम्हारी भी समझ में आती होगी। अन्य लोगों को तो उन्हें समझने के लिए अभी अनेक जन्म लेने पड़ेंगे ।”

“पितामह ! आप ठीक कहते हैं ।” युधिष्ठिर ने कहा—
“देखिये, जब अर्जुन ने आपको गिराया तब सारी कौरव-सेना
को उसमें श्रीकृष्ण का छल दिखाई दे रहा था ।”

“बेटा !” भीष्म ने शान्ति-पूर्वक कहा—“जब मैंने अर्जुन
पर गहरा बार किया तब अर्जुन भी घबरा गया । श्रीकृष्ण ने
युद्ध में शस्त्र हाथ में न लेने की प्रतिज्ञा की थी; परन्तु जब
अर्जुन रथ में गिर पड़ा तब वे स्वयं रथ का पहिया लेकर
मेरी ओर दौड़े ।”

“हां, इसी घटना को लेकर लोग उन्हें प्रतिज्ञा तोड़ने वाला
अधर्मी कहते हैं ।” युधिष्ठिर ने कहा ।

“उन लोगों को धर्म-अधर्म की सूक्ष्म तराजू को स्पर्श करने
का भी अधिकार नहीं है । युधिष्ठिर ! आज भी जब मैं श्रीकृष्ण
के रथ का पहिया लेकर दौड़ने की घटना याद करता हूं तो
मुझे हर्ष से रोमांच हो आता है और मेरे जीवन की थकान उतर
जाती है । बेटा ! जिन लोगों में ईश्वर-भाव नहीं है, जिन लोगों
ने कभी दूसरों को हृदय से अपना नहीं समझा, जिन लोगों ने
किसी एक ध्येय के लिए अपने जीवन का उपयोग नहीं किया
और जिन लोगों को मानव-हृदय के कोमल भावों का पता नहीं
है, उन लोगों को मनमानी कहने दो । परन्तु जिस समय मेरे
समान भीष्म सारी पांडव-सेना का कचूमर निकाल रहा हो,
जिस समय पांडवों की एक-मात्र आशा अर्जुन अचेत होकर रथ
में पड़ा हो, जिस समय क्षण दो क्षण में ही सारे युद्ध का निर्णय
होने की स्थिति उत्पन्न हो गई हो, उस समय अपने आप्तजनों
की ओर से निश्चिन्त रहकर प्रतिज्ञा के अक्षरों को तौलते रहना
उचित है, या प्रतिज्ञा-भंग का प्रायश्चित्त सहकर आप्तजन की
सहायता के लिए दौड़ना उचित है ? श्रीकृष्ण के चक्र लेकर
मेरी ओर दौड़ने में मुझे केवल उनका अर्जुन के लिए शुद्ध

प्रेम दिखलाई दिया और जब उनके जैसे महापुरुष प्रेम के वश होकर दौड़ पड़े तब मैं शस्त्र त्यागकर हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। युधिष्ठिर ! ऐसे महापुरुषों का ऐसे प्रसंगों पर हम अपनी मति के अनुसार माप करते हैं, यह हमारी भूल है। भक्त-वत्सलता ईश्वरीय गुण है। मुझे तो चक्र लेकर दौड़ने में श्रीकृष्ण की महत्ता प्रतीत हुई थी और तुम जानते हो कि उनकी प्रतिज्ञा भी टूट नहीं सकी थी। तुरन्त ही अर्जुन ने पीछे से आकर उन्हें रोक लिया और उन्होंने फिर से अर्जुन के रथ की बागडोर हाथ में ले ली।”

“पितामह !” युधिष्ठिर बोले—“आप जो कह रहे हैं, वह उचित है। मेरे अपने विषय में आपको पता होगा कि श्रीकृष्ण ने मुझमें असत्य बोलने को नहीं कहा था। जब द्रोणाचार्य को मारना था तब श्रीकृष्ण ने मेरे सामने दो बातें रखीं। या तो मुझे असत्य बोलकर द्रोण से शस्त्र त्याग करवाना और इस प्रकार विजय का मार्ग खोलकर अपने आप्तजनों के प्राण बचाना अथवा अपने सत्य पर दृढ़ रहकर इस मुकुट और आप्तजनों के जीवन की आशा छोड़ देना। मैंने स्वयं अपनी खुशी से असत्य को और इस मुकुट को पसन्द किया। मुझे वही पसन्द हो गये। इसमें श्रीकृष्ण का जरा भी दोष नहीं था। हां, मैं अन्दर से निर्बल था। मेरी निर्बलता छिपी हुई थी, जो इस प्रकार बाहर आगई। इससे मुझे रोष हो और मैं श्रीकृष्ण को दोष दूँ, तो यह और बात है। परन्तु पितामह ! आपने सुना तो होगा ही। मेरे अर्जुन ने कर्ण को मारा, यह असंभव-सा लगता है। श्रीकृष्ण ने उस अधर्म को क्यों नहीं रोका, यह मैं नहीं समझ सकता।”

“बेटा युधिष्ठिर !” पितामह बोले—“धर्म-अधर्म का निर्णय इस प्रकार नहीं हुआ करता। धर्म-अधर्म समाज में

सापेक्ष वस्तु है। जिस कर्ण ने जीवन-भर तुम्हें सताया, तुम्हें वनों में भी कष्ट पहुंचाये और सुख न मिलने दिया, उसी कर्ण ने जब केवल रण-भूमि में आकर अर्जुन को धर्म-युद्ध के लिए चुनौती दी तो बड़ा अच्छा किया ? जिसने सारा जीवन तुम्हारे साथ छल-प्रपंच करने में बिताया, वही जीवन-मरण के प्रसंग पर तुम्हें धर्म का उपदेश दे, यह तो निरी धर्म की विडंबना है। उस जिह्वा पर 'धर्म' शब्द आते ही उसे टूट पड़ना चाहिए। कर्ण को धर्म की बात करने का अधिकार ही नहीं था। हां, यह और बात है कि अर्जुन के लिए वह कार्य उचित था या नहीं। भीम ने जब दुर्योधन को गदा मारी तब वहां भी यही प्रश्न था। आजन्म अधर्म से तुम्हें सताने वाले कर्ण और दुर्योधन, अपनी मृत्यु के समय तुम्हें धर्म का स्मरण करायें, यह कितनी विचित्र बात है ? तुमने, भीम ने तथा अर्जुन ने जिस प्रकार तुमसे हो सका, उस प्रकार उन्हें मारा—उनके अनेक अधर्मों के सामने तुमने कदाचित् एकाध अधर्म कर लिया तो इसमें लोगों के भड़कने की क्या बात है ?”

“लोग तो श्रीकृष्ण को दोष देते हैं।” युधिष्ठिर बोले।

“बेटा युधिष्ठिर !” भीष्म ने कहा—“श्रीकृष्ण जैसे पुरुष स्वयं ज्योति होते हैं। शास्त्र, उनके धर्म-अधर्म के प्रमाण नहीं होते; परन्तु उनके जैसे पुरुष का व्यवहार ही धर्म-शास्त्र बन जाता है। अपनी धर्म-अधर्म की तुला से उन्हें तोलने की अपेक्षा उनके जीवन से अपने धर्म-अधर्म संबंधी विचारों की फिर से जांच करना अधिक उचित है। उनके समान साधु-चरित्र पुरुष किस ईश्वरीय संकेत का अनुसरण करके कौन-सा काम करते हैं, यह समझना भी हमारे लिए कठिन है। देखो, गांधारी जैसी सती श्रीकृष्ण को शाप दे बैठी ! गांधारी के समान सती आर्या-वर्त्त ने नहीं देखी। हम तुम जैसों को ऐसी स्त्रियों के उदर से

जन्म लेने की इच्छा होती है; परन्तु जब उसने दुर्योधन के शव को देखा और उसकी मृत्यु की बात सुनी, तब उससे भी श्रीकृष्ण को शाप दिये बिना नहीं रहा गया। उस समय श्रीकृष्ण ने कितने आनन्द से उस शाप का स्वागत किया। अपनी मृत्यु के शाप को हंसते हुए सह लेना और शाप देने वाले से यह कहना कि “तुमने उचित ही किया,” यह क्या साधारण मनुष्य का काम है? युधिष्ठिर! ऐसे समय तो बड़े-बड़े योगी-मुनि भी अपनी संज्ञा खो बैठते हैं और कुछ-का-कुछ कर बैठते हैं। श्रीकृष्ण के समान स्थित-प्रज्ञ लोग ही स्थिर रह सकते हैं।”

“पितामह!” युधिष्ठिर ने कहा—“आप जो कह रहे हैं, वह सब मैं मानता हूँ। परन्तु साधारण मनुष्य तो अपनी बुद्धि के अनुकूल ही इसका उत्तर मांगेंगे। आपके दिये हुए उत्तर मेरे समान श्रद्धापूर्ण अन्तःकरण वाले को ही सन्तुष्ट कर सकते हैं।

“सच बात है।” भीष्म बोले—“जिनके अन्तःकरण टेढ़े हो गए हैं, उनकी समझ में ये बातें आनी मुश्किल हैं। वे लोग तो ऐसे प्रसंगों को श्रीकृष्ण के दूषण रूप में ही मानेंगे।”

भीष्म ने जरा विचार करके फिर कहा—“परन्तु बेटा! ऐसा हो तो भी क्या बात है? सोचो कि श्रीकृष्ण ने इस प्रकार की कुछ भूलों की हैं, तो भी क्या हुआ? इससे महापुरुष के रूप में उनका स्थान और भी अधिक दीप्त हो उठता है। श्रीकृष्ण चाहे जैसे हैं, फिर भी मनुष्य हैं। उनके हाड़-मांस में मनुष्य का रुधिर बह रहा है। हमारी तरह ही उन्होंने एक स्त्री के उदर से जन्म लिया है। वे चाहे कितने ही उच्च हों, फिर भी जीवन में कभी-कभी मनुष्योचित साधारण-सी भूल उनसे हो सकती है। ऐसी भूल वे करते हैं, क्योंकि वे मनुष्य हैं; और फिर भी वे महापुरुष तो हैं ही। मेरे जैसे भक्त को तो उनकी ऐसी-ऐसी भूलें ही अधिक आकर्षित करती हैं। इस प्रकार के मानवीय स्वलन से उनकी

दिव्यता अधिक सुशोभित होती है और हम मनुष्यों को आधिक आशा प्रदान करती है।”

“पितामह ! आप सत्य कह रहे हैं।” युधिष्ठिर बोले—
“जिस प्रकार अन्धकार में लोग अनेक प्रकार की भूठी-सच्ची भूतों की कल्पनाएं कर लेते हैं, उसी प्रकार जिसके विषय में लोग कुछ जानते नहीं अथवा जान नहीं सकते, उसके संबंध में वे अनेक कुनर्क किया करते हैं। श्रीकृष्ण के साथ यही बात हुई है। हमारे इतने निकट होने पर भी हम अनेक बार उन्हें माधारण मनुष्य समझ बैठते हैं, तो फिर अन्य लोगों की तो बात ही क्या है ?”

“बेटा !” भोष्म ने कहा—“संसार के सभी महापुरुषों के भाग्य में यही बात लिखी होती है। वे जबतक जीवित रहते हैं तबतक जगत् उन्हें पहचान नहीं सकता और उनके चले जाने के पश्चात् हाथ मलता है। श्रीकृष्ण के साथ भी ऐसा ही होगा। ऐसे पुरुषों से कुछ दूर रहा जाय तो कदाचित् उन्हें पहचानना सहज हो। उनके आस-पास चिपटे हुए लोगों को तो मरा हुआ ही समझो। हमारे समान माधारण मनुष्यों को ऐसे विचार आने लगते हैं कि ‘हमारे पैरों की तरह ही उनके पैर हैं, हमारे समान ही वे खाते-पीते और घूमते-फिरते हैं, फिर वे महापुरुष कैसे ?’ और परिणाम-स्वरूप हम उन्हें पहचान नहीं सकते; परन्तु यह तो बड़ी लम्बी बातें हो गईं।”

“पितामह ! बड़ा अच्छा हुआ। आज आपने मेरा थोड़ा-बहुत अज्ञान दूर कर दिया। आप पर मैंने बड़ा श्रम डाला है, इसके लिए क्षमा करेंगे। अब मुझे आज्ञा दीजिये।”

“बेटा युधिष्ठिर !” भोष्म ने युधिष्ठिर की ओर देखकर कहा—“मेरा श्रम तो उलटे दूर हो गया है। श्रीकृष्ण जैसे पुण्य-पुरुष को स्मरण करके तो जीवन-भर का श्रम दूर हो जाता है। फिर

आज जब मैं जीवन के किनारे बैठा हुआ हूँ तब तो उन्हें स्मरण करके धन्य ही हो गया हूँ। बेटा ! अभी मेरे शरीर को गिरने में थोड़ा समय लगेगा। इस बीच यदि तुम फिर आओ तो श्रीकृष्ण को साथ लेते आना। मेरी ओर से उनसे यह विनती कर देना।”

“जो आज्ञा। आप अब अपने ऊपर अधिक श्रम न डालें।”

इतना कहकर युधिष्ठिर रथ में बैठे और हस्तिनापुर की ओर चल दिये।

: ६ :

अवतार-कृत्य

“पितामह !” शर-शैया के पास बैठे हुए श्रीकृष्ण बोले। “अब यह देखना रहा है कि महााज युधिष्ठिर अपने धर्म-राज्य का स्थापन किस प्रकार करते हैं।”

“महाराज !” भीष्म ने कहा। “केवल आपको यह देखने की आवश्यकता नहीं। कुरुक्षेत्र के मैदान में अर्जुन के रथ की बाग-डोर थामकर बैठे हुए आपको जगत् ने देखा है। इसके बाद के नये युग-निर्माण में भी आप ही पांडवों के पथ-प्रदर्शक होंगे। जगत् के ब्राह्मणों को ऐसी ही आशा है।”

“भीष्म !” श्रीकृष्ण बोले। “बड़े भव्य महल को तोड़ डालना सहज है; परन्तु उसकी जगह छोटी-सी भोंपड़ी खड़ी करना सहज नहीं है। हिमालय के सघन बनों को एक अंगारे से भस्म कर डालना सहज है; परन्तु एक छोटे-से वृक्ष को पानी सींचकर पनपाना सहज नहीं है। देश के बड़े-बड़े प्रदेशों को एक बार में उजाड़ देना सहज है; परन्तु एक छोटा-सा टीला नया बसाना सहज नहीं है। पितामह ! सारे मानव-समाज का कुचल-

कर बैठे हुए साम्राज्यों को उखाड़ डालना सहज है; परन्तु उसके स्थान पर छोटा-सा धर्मराज्य स्थापित करना सहज नहीं है।”

“आज पांडवों को यह कठिनाई दिखलाई दे रही होगी।” भीष्म ने कहा।

“अवश्य।” श्रीकृष्ण बोले। “उस दिन अभिमानी राजाओं का गर्व चूर्ण करने में गांडीव की टंकार और भीम की गदा दोनों समान थे; आज हजारों सनाथ क्षत्रियों को पालकर बड़ा करने में वह गांडीव और गदा निरर्थक हैं। कौरवों को उनके अन्याय का भान कराने के लिए पांडवों की रक्तवर्ण आँखों की आवश्यकता थी। आज हजारों अनाथ स्त्रियों के आँसू पोंछने के लिए किसी कोमल हाथ की आवश्यकता है। पांचाली को अपने रोष की तृप्ति के लिए उस दिन अपनी चोटी दुःशासन के रुधिर में भिगोने की आवश्यकता हुई होगी, परन्तु आज ऐसी समाज-व्यवस्था खड़ी करनी होगी कि प्रतिदिन सारे आर्यावर्त की स्त्रियाँ अपनी चोटियाँ फूलों से गूँथ सकें। उस दिन आर्यावर्त के अनेक राजा-महाराजाओं ने अपनी-अपनी क्षत्रिय-जनता पांडवों के चरणों में सौंप दी थी। आज नये राष्ट्र-निर्माण में अनेक राजा-महाराजाओं को अपनी ब्राह्मण-जनता का साथ देना पड़ेगा। पितामह ! धर्म-राज्य की स्थापना के ऐसे अनेक प्रश्न महाराज युधिष्ठिर के सामने प्रतिदिन उपस्थित होने लगे हैं और अजात-शत्रु युधिष्ठिर उन्हें किस प्रकार सुलझाते हैं, यह सारा जगत् निर्निमेष दृष्टि से देख रहा है।”

“तब तो युधिष्ठिर को महान् परीक्षा में से निकलना पड़ेगा।” भीष्म युधिष्ठिर की ओर घूमकर बोले।

“निःसन्देह।” श्रीकृष्ण ने कहा। “कौरवों के सामने धर्म-युद्ध की पताका फहराने वाले युधिष्ठिर को, सारे लोक-समूह को दिलाई हुई आशाएँ पूर्ण करनी होंगी। कौरवों को दुष्ट

कहने वाले पांडवों को अपनी साधुता सिद्ध करनी पड़ेगी। दुर्योधन को गर्विष्ठ कहने वाले युधिष्ठिर को विजय के क्षणों में अधिक नम्र बनना होगा। धृतराष्ट्र को प्रजा का अभिभावक हित-रक्षक कहने वाले पांडवों को प्रजा-हित का सच्चा रक्षक बनाना पड़ेगा। अपनी एक चोटी के लिए सारा महाभारत मचवानेवाली द्रौपदी को समस्त स्त्री-समाज की चोटियों को सुरक्षित करने वाली राज्य-व्यवस्था उत्पन्न करवानी होगी।”

“युधिष्ठिर का मुकुट इनके लिए बड़ा भारी सिद्ध होगा।” भीष्म बोले।

“प्रत्येक राजा को मुकुट भारी पड़ता है; परन्तु युधिष्ठिर को विशेष पड़ेगा, कारण कि इन सारी आशाओं को इन्होंने ही पनपाया है। परन्तु पितामह ! फूल के समान हलका मुकुट पहनने में क्या आनन्द है ? वैसे हलके मुकुट हवा का एक हल्का-सा झोंका आते ही उड़ जाते हैं और भूमि पर गिरकर टूट जाते हैं।” श्रीकृष्ण ने कहा।

“महाराज श्रीकृष्ण !” भीष्म धीरे-से बोले। “आप ठीक कह रहे हैं। युधिष्ठिर धर्मात्मा है। अतः अपने भार को वहन करने में जरा भी नहीं घबरायेंगे। परन्तु महाराज ! आपने नवयुग के निर्माण की बात छेड़ी है। इसलिए मेरा भी कुछ कहने को मन कर रहा है। आज आर्यावर्त्त कुरुक्षेत्र के घोर संग्राम के परिणाम भोग रहा है। अठारह अक्षौहिणी सेना कुरुक्षेत्र में सदा के लिए सो गई। उसके पीछे कितनी स्त्रियाँ विधवा हुईं, कितने बालक अनाथ बने, महाजनों के व्यापार को कितना धक्का पहुँचा, यह सब जब महाराज युधिष्ठिर अपनी दृष्टि से देखेंगे तब उन्हें ध्यान आयगा कि छोटे-से मुकुट के लिए कितना मूल्य देना पड़ा है। परन्तु मैं इन सबके अतिरिक्त एक और गहरी बात आपसे कहूँगा। इस युद्ध ने जो वातावरण पैदा किया, वाता-

वरण में 'मारो-काटो' की ध्वनियोंको जो गति दी, वर और 'बदले' की जो हृदय ध्वराने वाली भावना फैलाई, उमका क्या बनेगा ? युद्ध के मध्य निर्मित हुआ युद्ध का मानस क्या युद्ध के समाप्त होने से नष्ट हो जायगा ? महाराज ! आप महापुरुष हैं, इसलिए आप अधिक समझ सकते हैं; परन्तु मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि अन्य सब विघ्नों की अपेक्षा, युद्ध का यह मानस ही धर्म-राज को अधिक कष्ट देगा और नवयुग के निर्माण में बाधक बनेगा ।"

श्रीकृष्ण ने भीष्म की बात सुनते ही आंखें बन्द कर ली थीं। उन्हें धीरे-से खोलते हुए वे बोले—“पितामह ! आपने जगत् के रोग को भली-भांति परख लिया है। धर्म-युद्ध को पताका के नीचे लड़ने वाले सब धर्म-बुद्धि से ही लड़ते हों, ऐसा नहीं होता। समाज के जीवन में जब युद्ध-जैसे भयंकर भ्रंशावात आते हैं तब महा संहार हो जाता है और सृष्टि फिर नया क्रम आरम्भ करती है। इस युद्ध के लिए भी ऐसा ही समझो। नवयुग किस प्रकार निर्मित होता है, यह तो ईश्वर के अधान है; परन्तु जिसे ऋषि-मुनि कलियुग का नाम देते हैं, उसे समाप्त हुआ समझें। आज नहीं तो कल यह युग अपना प्रभाव अवश्य दिखलायगा। आपके कल्पित युद्ध के मानस का विचार करने पर ज्ञात होता है कि वह युद्ध का मानस आज अभी हवा में घूम रहा है। बाह्य युद्ध आज समाप्त हो गया है, इसलिए वह नया क्षेत्र खोज रहा है। आजतक वह शस्त्रास्त्रों की लड़ाई में रुका हुआ था; परन्तु अब यदि उम युद्ध के मानस का उपयोग, समाज के भीतरी कलह शान्त करने में, लोगों की आर्थिक दशा सुधारने में, राज्य के शासन कार्यों में और इसी प्रकार की अनेक प्रवृत्तियों में कर लिया जाय तो नये युग के निर्माण में युधिष्ठिर को बड़ी अनुकूलता प्राप्त हो जाय। परन्तु मुझे भय है कि ऐसा नहीं

होगा। संसार के आजतक के इतिहास-पुराण पढ़कर देखे जायं, तो मालूम होगा कि जिन्होंने शत्रुओं को नष्ट करके विजय प्राप्त की है, वे पाँछे से आपस में लड़े हैं और कभी-कभी समाप्त भी हो गए हैं।”

“महाराज श्रीकृष्ण !” भीष्म शान्ति-पूर्वक बोलने लगे—
“युद्ध समाप्त होने पर युद्ध के मानस को हटा देना और जब फिर युद्ध आरम्भ हो तब धर्म-बुद्धि से युद्ध के मानस को धारण करना, यह आप-जैसे महापुरुष के लिए ही संभव है। साधारण लोग तो ‘धर्मयुद्ध’ की घोषणा होते ही उसमें मिल जाते हैं और युद्ध की समाप्ति पर भी वेग कम नहीं कर सकते, ऐसा इतिहास का अनुभव है। इन्हीं कारण अनेक बार ऐसे युद्धों में रुधिर की जितनी नदियां बहती है, उनकी अपेक्षा युद्ध के अंत में कहीं अधिक बहती दृष्टि-गोचर होती हैं। महाराज ! इसके विषय में कुछ मोचा है ?”

“इसके विषय में मुझे थोड़े ही मोचना है।” श्रीकृष्ण ने हंसते हुए कहा।

“यह कैसे हो सकता है ?” भीष्म ने आश्चर्य से कहा—
“आपको नहीं तो क्या इस शैया पर पड़े-पड़े मुझे सोचना है ? आप ही को यह विचार करना है। धर्म-राज्य स्थापित करने का मनोरथ और कर्त्तव्य युधिष्ठिर का है; परन्तु यदि यह धर्म-राज्य स्थापित न हुआ तो इसका मारा दाप लोग आपके सिर मढ़ेंगे। मैं आपके जीवन के रहस्य से अच्छी तरह परिचित हूँ। आपने जन्म से लेकर आजतक अनेक अत्याचारियों को समाप्त कर दिया है। अधिक सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो ऐसा प्रतीत होगा कि आपने इसी के लिए जन्म धारण किया है। परन्तु उन अत्याचारियों को हराकर उनकी जगह कौन लेगा, यह निश्चित करने की आवश्यकता नहीं है ? अत्याचारियों का हटना तो

आधा कार्य हुआ, शेष आधा और न हुआ तो प्रथम आध का क्या अर्थ ? दुर्योधन के अत्याचार का स्थान यदि किसी और का अत्याचार लेने वाला हो तो इससे दुर्योधन का अत्याचार कहीं अधिक अच्छा नहीं था ? यदि अत्याचार स्वयं नष्ट न हो तो अत्याचारियों के बदलते रहने से समाज का कोई लाभ नहीं । बल्कि पुराने अत्याचारी से लोग अभ्यस्त हो चुके होते हैं, इसलिए कुछ कम ही कष्ट प्रतीत होता है ।”

“पितामह !” श्रीकृष्ण बोले—“आप तो मुझे बड़े गहरे पानी में ले गए हैं; परन्तु आज मैं इतना ही कह सकता हूँ कि राज-मद से छके हुए कौरव मिट गये और पांडव हस्तिनापुर के स्वामी बन गये । इस युद्ध में विजयी होने से पहले पांडव जिस तपश्चर्या में से गुजरे हैं, उससे मैं कह सकता हूँ कि उन्हें राज-मद नहीं चढ़ेगा । वैसे तो आज अपने कुल में भी मैं इस युद्ध मानस को देख रहा हूँ । द्वारका छोड़े मुझे बड़ा समय हुआ; परन्तु युद्ध से लौटे हुए सात्यकि, कृतवर्मा आदि युद्ध का मानस अपने साथ ही लेते गये हैं । इसके अतिरिक्त जिन लोगों के बलराम जैसे अग्रसर मदिरा पीते हों, उन लोगों में इस युद्ध के मानस को फूट निकलते कितनी देर लगती है ? ऐसे हिंसात्मक युद्धों में ये दोष अनिवार्य हैं और जबतक ईश्वर हमें दूसरे प्रकार के युद्ध के मार्ग पर लगावे, तबतक इन दोषों को भी हमें आवश्यक रूप में स्वीकार करना ही पड़ेगा ।”

“महाराज श्रीकृष्ण !” भीष्म बोले—“जब आपने सती गांधारी का शाप सहर्ष स्वीकार किया तब मुझे ऐसा जान पड़ा था कि आपने यह सब देख लिया है ।”

“पितामह !” श्रीकृष्ण ने कहा—“यह सब मेरे ध्यान से बाहर नहीं है । जिस प्रकार कुरुकुल का विनाश आज हम सबने देखा है, उसी प्रकार अपने यादव-कुल का संहार भी मैं देख

रहा हूं। मेरे सात्यकि, कृतवर्मा आदि जब इस युद्ध से द्वाका गये हैं तब वे युद्ध का मानस लेकर गए हैं। ऐसे मानस के सुलग उठने के लिए जिस तैयारी की आवश्यकता है, वह सारी आज यादवों में विद्यमान है। यादवों में अन्दर-ही-अन्दर फूट है। यादव-युवक जगत् के ब्राह्मणों का अपमान करने में अपने यौवन को धन्य मानते हैं। यादवों में मदिरा के व्यसन ने घर कर लिया है। यादवों ने पश्चिमी समुद्र-तट पर विदेशी आक्रमणों को रोकने के लिए जो शिविर बनाया है, उसका उन्हें बड़ा गर्व है। यह सारी मामग्री तैयार है। केवल उसमें जलती हुई दियामलाई डालकर भड़काने की देर है। और पितामह ! मुझे भास हो रहा है कि हमारा विनाश भी आ पहुँचा है।”

“महाराज श्रीकृष्ण !” खिन्न स्वर में भीष्म बोले—“यदि भविष्य में ऐसा ही होना है तो यह सब किस लिए ? आपने जन्म से लेकर आज तक अनेक अत्याचारियों के गर्व गलित किये और जरामन्ध तथा शिशुपाल के समान मदान्ध राजाओं के धड़ मस्तक से अलग कर दिये। भीष्म और द्रोण जैसे महारथी युद्ध में कुचले गये। दुर्योधन और कर्ण जैसे कुरुक्षेत्र में सो गए। यह सब आपके कारण हुआ। पृथ्वी का भार उतारने के लिए आपने यह सब किया। फिर भी यदि अभी आपके लिए यादवों का विनाश देखना शेष है तो यह सब किसलिए ?”

“भीष्म !” श्रीकृष्ण ने शान्ति-पूर्वक कहा—“आप भूल रहे हैं। जन्म लेकर मैंने स्वयं ऐसे अभिमानियों का गर्व चूर्ण करने में जीवन बिताया है, यह सच है। इसका मुझे जन्म से ही व्यसन होगया है। दलित लोगों को जब ऐसे अत्याचारियों के हाथ से छुड़ाता हूं तब मेरे हृदय में दीपक जल उठते हैं। अब यदि काल की इच्छानुसार मेरे यादव भी ऐसे गर्विष्ठ हो जायं और उनका गर्व उतरने में उनका विनाश हो जाय तो भी मैं क्या कर

सकता हूँ ? मैं समझता हूँ कि हमारे आर्यावर्त्त की प्रजा ने बहुत समय तक यह अभिमान सहन कर लिया है। आज अब काल अपना विराट् स्वरूप लेकर उठा है और वह किसी भी व्यक्ति या समूह के इस अभिमान को टिकने नहीं देगा। यादव यदि इस बात को न समझे और अन्दर-ही-अन्दर लड़ मरे तो मैं क्या कर सकता हूँ ? यादवों में जब आपस में यह गृह-कलह छिड़ेगा तब मैं तो काल भगवान् को स्मरण करूँगा और अपने जीवन को समेटकर चलता बनूँगा। स्वयं मेरे यादव हो जब इस प्रकार करेंगे तब मेरे जीने का प्रयोजन भी नहीं रहेगा।

“महाराज श्रीकृष्ण !” भीष्म धीरे से बोले—“मैं तो वैसे ही कह रहा हूँ।”

“आप वैसे ही कह रहे होंगे; परन्तु मैं ठाक कह रहा हूँ।” श्रीकृष्ण ने कहा—“उस काल के पूर्व-चिन्ह मैं देख रहा हूँ।”

“तो फिर महाराज !” भीष्म बोले—“आपने जो औरवों का संहार कराया और धर्मराज का राज्य दिलाने का कष्ट उठाया, वह व्यर्थ हुआ ?”

“व्यर्थ क्यों हुआ ?” श्रीकृष्ण ने कहा—“मैंने जो कुछ किया है, वह मेरे लिए तो व्यर्थ हो हा नहीं सकता। भारतवर्ष के दलित-जनों की सेवा करने के लिए मैंने यह मार्ग ग्रहण किया, इससे मुझे संतोष है। अब मैं जब तक जिऊँगा तब तक अभिमानियों का अभिमान दूर करने का प्रयत्न करता ही रहूँगा। वैसे मैंने यह कब समझा है कि दुनिया से अत्याचार और गर्व एकदम अदृश्य हो जायेंगे ? आज क्षत्रिय गर्वोन्मत्त हो कर लोगों को पीड़ित कर रहे थे तो उनका गर्व गलित करने का काम मैंने हाथ में लिया; कल समाज का कोई दूसरा वर्ग गर्वोन्मत्त हो उठेगा तो कोई अन्य पुरुष मैदान में आयगा। मैं अपने जीवन को अच्छी तरह बिता दूँ, इतना ही क्या मेरे लिए पर्याप्त नहीं है ?

वैसे तो बेचारा मनुष्य यह समझ ही कैसे सकता है कि ईश्वर कब संसार को हरी-भरी वाटिका और कब ऊजड़ अरण्य बना-यगा, कब पहाड़ी प्रदेश के समान और कब लहराते हुए सागर के समान बनायगा ।”

“महाराज !” भीष्म ने हाथ जोड़कर कहा । “आप मुझे पागल समझें तो भी कोई हानि नहीं; परन्तु मैं तो आपको ईश्वर का अवतार ही मानता हूँ । भारत के ऋषि-मुनियों ने तो आपको कभी से पहचान लिया है । आपने और अर्जुन ने भारतवर्ष के गर्विष्ठ क्षत्रियों को साफ करके नवयुग के लिए भूमि तैयार की है । अब उस भूमि में क्या उगेगा और क्या नहीं उगेगा, यह देखना आपका काम नहीं है । श्रीकृष्ण ! जिस युग को आपने साफ किया है, उसका एक साधारण मनुष्य मैं, आपके चरणों में मस्तक रखता हूँ । जीवन के किनारे बैठा हुआ मैं आज आपको अंतिम प्रणाम करता हूँ । आप जाइये और आपका जो अवतार कृत्य बाकी रह गया हो, उसे पूरा करिये । काल को तो अपना काम पूरा करते ही रहना है । प्रभो ! भीष्म का आपको अंतिम प्रणाम ।”

“पितामह !” श्रीकृष्ण खड़े होते हुए बोले । “आपने मुझे बहुत बड़ा वना दिया । मुझे जो सूझ पड़ा, वही मैंने आज तक किया । करने की योग्यता ईश्वर ने मुझे अधिक दी, इसके लिए उसका कृतज्ञ हूँ; अन्यथा कृष्ण का यह शरीर और किस काम आने वाला था ? लोक-सेवा का ऐसा अवसर मुझे मिला, इसके लिए मैं अवश्य गर्वित हूँ । पितामह ! आपको आज बड़ा कष्ट हुआ । आपके शरीर में जबतक प्राण हैं तबतक मेरे जैसे लोग किसी-न-किसी आशा से आपको कष्ट देते ही रहेंगे । पुराण-युग के जितने कल्याणकारी तत्त्व आपसे प्राप्त हो सकते हैं, उतने अन्य किससे हो सकते हैं ? इसीलिए नवयुग के विधाता अर्जुन

ने आपको शर-शैया पर सुला दिया है। उत्तरायण सूर्य के न-
चगने तक आप शर-शैया पर पड़े रहें, इसी में नवयुग का कल्याण
है। अब मैं आज्ञा लेता हूँ।” यों कहकर श्रीकृष्ण रथ में बैठ
गए।

“प्रभो ! भीष्म का अन्तिम प्रणाम।” भीष्म शर-शैया पर
से ज़रा ऊँचे उठकर रथ को देखते रहे। रथ धीरे-धीरे अदृश्य
होगया और पृथ्वी पर अन्धकार की छाया फैल गई।

: १० :

परीक्षित-जन्म

“भाई विदुर !” एक विशाल सिंहासन पर पड़े हुए धृतराष्ट्र
बोले। “आज अब मेरी बांहें टूट गई हैं। इसलिए तुम जो
कहो, उसे करने के लिए यह धृतराष्ट्र तैयार हैं; परन्तु तुम मेरे
हृदय की बात सुनना चाहो तो मैं कहूँगा कि श्रीकृष्ण के जैसा
ठग और कोई नहीं है।”

“भैया ! आप भूलते हैं।” विदुर ने कहा।

“मैं धृतराष्ट्र भूल सकता हूँ ! दुर्योधन का पिता भूल सकता
है ! तुम लोगों ने कृष्ण को अभी पहचाना नहीं है। विदुर ! मैं
सच कहता हूँ। मेरे पुत्रों को मरवाने वाला और उससे प्रसन्न
होने वाला यदि कोई व्यक्ति है तो वह कृष्ण है। तुम विचार
तो करो। यदि ऐसा न होता तो सती गांधारी उसे शाप देती !
जिसने जीवन-भर असत्य का उच्चारण नहीं किया उसी गांधारी
ने जब शाप दिया तभी मैं समझ गया था कि वह बड़ा धूर्त
है। आज उसके अच्छे दिन आये हुए हैं, इसलिए मुझे कुछ भी
नहीं कहना है।”

“भैया !” विदुर ने कहा। “श्रीकृष्ण जैसे परम पुरुष के

साथ आप अन्याय कर रहे हैं। उनका नाम लेते ही भव-भव के पाप नाश होते हैं, ऐसा उनका निर्मल जीवन है !...”

“निर्मल जीवन !” धृतराष्ट्र बीच में ही बोल उठे। “ऐसी निर्मलता उसे ही मिली रहे !”

“उनकी त्याग-वृत्ति”, विदुर ने आगे कहा, “उनकी सत्य-प्रियता, उनकी निर्भयता, ये सब असाधारण हैं। इसीलिए व्यास भगवान् जैसे जगत् के ब्राह्मण भी उनका महापुरुष के रूप में सम्मान करते हैं।”

“विदुर !” धृतराष्ट्र ने हाथ लम्बा करते हुए कहा। “तुम जैसे भक्तों के महापुरुष कह देने से ही वह महापुरुष होगया ? अपनी दृष्टि से हम जिसे अनेक प्रपंच करते हुए देखें, हजारों मनुष्यों के बीच जिसे असत्य और अधर्म का आचरण करते देखें, उसे महापुरुष कैसे मान लें ? उसके काम तो देखो। मामा को मारने वाला कौन था, कृष्ण; मथुरा छोड़कर भागनेवाला कौन था, कृष्ण; रुक्मिणी को उठाकर भाग जाने वाला कौन था, कृष्ण; गोप-जनों के घर बिगाड़ने वाला कौन था, कृष्ण; युधिष्ठिर से झूठ बुलवाने वाला कौन था, कृष्ण; मेरे पुत्र का अधर्म से मरवाने वाला कौन था, कृष्ण। यह तुम्हारा कृष्ण है ! कृष्ण यदि महापुरुष हो तो फिर दुनिया में धूर्त-लफंगा किसे कहा जाय, यही एक प्रश्न है ?”

“भैया !” विदुर ने निःश्वास छोड़कर कहा। “आपकी आँखों से श्रीकृष्ण ऐसे ही दिखाई पड़ेंगे। उन्हें देखने के लिए आपने ऐसी ही ऐनक लगाई हुई है। जब तक यह ऐनक नहीं उतरेगी तब तक वे आपको ऐसे ही दिखाई देंगे।”

“जैसा है, वैसा ही तो दीखेगा न ?” धृतराष्ट्र बोले। “हाँ, पर उसकी बुद्धि तीव्र है। सबको उलटा-सीधा समझाकर और अनेक चालें चलकर अपनी सोची हुई बात पूरी कर लेता है। मेरा दुर्योधन उसके जाल में नहीं फँसा, इसलिए उसे मरवाकर

उसने चैन ली। कृष्ण बड़ा ही दुष्ट है। एक बार कोई उसकी दाढ़ में फँसा कि फिर निकलना कठिन है। यदि ये सब बातें किसी मनुष्य को महापुरुष बना सकती हैं तो ऐसे महापुरुष को दूर से ही नमस्कार है ! ऐसे लोगों ने ही दुनिया को ठग-ठगकर चौपट कर दिया और लोग इतने मूर्ख हैं कि ऐसे ढोंगी को हो पूजते हैं। विदुर ! मैं तुम्हारी बात नहीं मानूँगा।”

“जैसी आपकी इच्छा !” विदुर ने कहा।

“हाँ, मैं भी माना करता था कि कदाचित् कृष्ण जो कहता है, वह धर्म होगा। मुझे उससे भय भी लगता था; परन्तु वह धूर्त मेरे भय से लाभ उठाकर मेरे दुर्योधन को ही धमकाकर काम निकालने चला ! तुम मर्बा ने कृष्ण के हाथ का अस्त्र बनकर मेरे कुल का नाश कर डाला। ईश्वर तुम्हें उसका बदला दिये बिना नहीं रहेगा और मैं यह भा देखूँगा कि मुझे और गांधारी को ऐसी दशा में लाने वाला कृष्ण कितने सुख से भरता है।”

“भैया !” विदुर ने शान्त-पूर्वक कहा। “इन सब पुरानी बातों को छोड़िये। अब हम आज की नई बात को लें !”

“कौन-सी ?” धृतराष्ट्र ने पूछा।

“उत्तरा के गर्भ की।” विदुर बोले। यह तो आप जानते हैं कि पांडव दिग्विजय के लिए हिमालय की ओर गये हैं। आज उत्तरा को प्रसव हुआ; परन्तु मरा हुआ पुत्र जन्मा।”

“मरा हुआ तो होना ही था ! अश्वत्थामा ब्राह्मण-पुत्र था। उसने जब उत्तरा के गर्भ पर ब्रह्मास्त्र छोड़ दिया तो और हो भी क्या सकता था ? कहो न अपने कृष्ण से कि उस पुत्र को जीवित करे ? धृतराष्ट्र और गांधारी की संतति का उच्छेद कर दिया तो क्या कुन्ती और पांडु की संतति बच रहेगी ?”

“परन्तु भैया !” विदुर ने कहा—“उस मरे हुए पुत्र को श्रीकृष्ण ने जीवित कर दिया।”

“हैं ?” धृतराष्ट्र आंखें फाड़कर बोले—“वह जीवित नहीं हो सकता । किसी ने तुम्हें भूठे समाचार दिये हैं ।”

“किसी ने नहीं दिये, मेरी अपनी आंखों देखी बात है ।” विदुर ने कहा ।

“क्या सचमुच वह जीवित हो गया ? कदाचित् क्षण-दो-क्षण के लिए भूठी सांम चलतो दिखा दी होगी !” धृतराष्ट्र ने शंका की ।

“नहीं भैया ! ऐसी बात नहीं है । मैं उसे श्वास लेते और रुदन करते देखकर आया हूँ ।” विदुर ने कहा ।

“तो यह होगी उस कृष्ण की ही कोई करतूत !” धृतरा ने अपनी राय दी ।

“यही बात है ।” विदुर ने कहा । “परन्तु जिसे आप करतूत कहते हैं, उसे ही मैं उनकी ईश्वरीय शक्ति कहता हूँ ।”

“ठीक, ठीक । और कहो, फिर आगे क्या हुआ ?” धृतराष्ट्र ने पूछा ।

“मरा हुआ पुत्र उत्पन्न हुआ, इससे सुभद्रा, द्रौपदी, कुन्ती और उत्तरा ने रोना-धोना आरम्भ कर दिया । उनका विलाप सुनकर श्रीकृष्ण अन्दर गये और मरे हुए बालक को अपनी गोद में सुलाया ।”

“फिर ?”

“फिर पानी से आचमन करके श्रीकृष्ण बोले—”

“क्या बोले ? बच्चे, जीवित हो जा । यही न ?” धृतराष्ट्र ने आतुरता से कहा ।

“वे जो कुछ बोले—वह जगत् के इतिहास में स्वर्णक्षरों में लिखा जायगा । महाराज धृतराष्ट्र ! आप अपनी इच्छा के अनुसार मानने का अधिकार रखते हैं । आप पुत्र-शोक से विह्वल हैं, इसलिए ऐसे महापुरुष को यथार्थ रूप में पहचानना

नहीं चाहते; परन्तु यदि तटस्थ होकर सुनें तो आपको पता चले।”

“परन्तु वे क्या बोले—यह तो पहले कहो ?” धृतराष्ट्र ने धैर्य खोकर पूछा।

“पुत्र को गोद में लेकर उन्होंने कहा—‘मैंने आज तक हंसी में भी असत्य-भाषण नहीं किया और युद्ध से विमुख नहीं हुआ। मेरे इस पुण्य से यह बालक जीवित हो जाय। मेरी धर्म-प्रियता और धर्म के अधिष्ठाता ब्राह्मणों के प्रति रखे हुए पूज्य भाव के कारण अभिमन्यु का पुत्र जीवित हो जाय। मैंने विजय में भी दूसरों का विरोध नहीं किया, इस बात को लेकर इस बालक के प्राण लौट आयें। कंस और केशी का मैंने धर्म से नाश किया हो तो यह बालक फिर से सचेतन हो।’ श्रीकृष्ण इतना बोल भी न पाये थे कि पुत्र के शरीर में चेतना आई और वह रोने लगा।”

“तब तो श्रीकृष्ण ने बड़ा ही जादू किया !” धृतराष्ट्र ने कहा।

“भैया ! आप इसे जादू कहेंगे ? श्रीकृष्ण ने इन वचनों से सारे संसार के न्यायालय में अपनी साधुता सिद्ध की है और ईश्वर ने उस पुत्र को जीवित करके उस साधुता पर मुहर लगा दी है।” विदुर कहते गये। “उन्होंने यदि यंत्र-मंत्र से पुत्र को जीवित करने का प्रयत्न किया होता तो मैं भी विचार करता; परन्तु यह तो सत्य की, निर्वैर की, निर्भयता की और भूत-दया की जीवन-भर उपासना करने वाले एक समर्थ प्रतिभाशाली पुरुष की प्रार्थना थी। ईश्वर ने उस प्रार्थना को स्वीकार करके श्रीकृष्ण को महापुरुष के रूप में स्वीकार किया है।”

“विदुर ! सत्य कहूं ?” धृतराष्ट्र बोले। “वह पुत्र मरा हुआ नहीं होगा; परन्तु ब्रह्मरन्ध्र में उसका प्राण रुक गये होंगे। इसी से सबको मरा हुआ प्रतीत हुआ होगा। श्रीकृष्ण ने उसे गोद में सुलाकर माथे में कुछ किया होगा, इससे वह जीवित होगया।

इसके लिए इतना बड़ा आडम्बर न किया होता तो भी काम चल सकता था; परन्तु आडम्बर न करे तो तुम जैसे लोग उसके पैरों में किस प्रकार लोटें ?

“भैया !” विदुर ऊबकर बोल रहे हों, इस प्रकार कहने लगे । ‘मैं आपसे हार गया । जिस-जिस बात को मैं श्रीकृष्ण के जीवन का रहस्य मानता हूँ, उसे ही आप उनकी धूर्तता का चिन्ह रूप समझते हैं ।”

“है भी यही बात ।” धृतराष्ट्र बोले—“जब तुम विशेष रूप से उसकी बात करने आये हो तब मुझे अपने विचार तुम्हें स्पष्ट ही बताने चाहिए । परन्तु यह बात किसी से न कहना । अभी मुझे युधिष्ठिर के साथ दिन बिताने हैं । वैसे कृष्ण हैं जबर्दस्त, इसमें कोई मन्देह नहीं । उसके जैसा अन्य कोई नहीं ।”

“भैया !” विदुर ने कहा—“अब मैं आज्ञा लेता हूँ ।”

“देखना विदुर ! बुरा न मानना ।” धृतराष्ट्र बोले—“वह विशेष मनुष्य है, यह तो मुझे भी जान पड़ता है । सच पूछो तो मैं उसे समझ नहीं सकता । उसका सारा जीवन इतना विचित्र है । तुम्हारी बात मेरे गले नहीं उतरती । महापुरुषों के ऐसे काम होते हैं ? न उसमें दया है, न सत्य है, न शास्त्रों के प्रति पूज्य भाव है, न किसी से लज्जा है, न कोई दिव्य शक्ति है । जिधर देखो उधर काले कर्म ही दृष्टि पड़ते हैं । ऐसे पुरुष को कौन महापुरुष कहे ?”

“भैया ! मैं जा रहा हूँ ।” विदुर ने कहा ।

“अच्छा भाई, जाओ ।” धृतराष्ट्र ने विदा देते हुए कहा । “बुरा न मानना । यह तो हम दोनों की निजी बातें हैं । मेरे लिए बात करने को एक तुम्हीं तो हो । इसलिए जो मन में आया, कह दिया है । मुझे एक यही दुःख है कि तुम सबों को उसने भ्रम में डाल दिया है ।”

विदुरबड़े भाई से विदा होकर चल दिये और धृतराष्ट्र फिर लेट गये ।

: ११ :

यादवस्थली

महाराज युधिष्ठिर का अश्वमेध-यज्ञ पूरा हुआ और श्रीकृष्ण द्वारिका लौट आए । आज तक जिस राज-मद को उतारने के लिए श्रीकृष्ण ने जीवन बिताया था और जिस राज-मद को भारतवर्ष से उखाड़ डालने के लिए कुरुक्षेत्र में महायुद्ध आरम्भ हुआ था, वही राज-मद आज स्वयं यादवों के अन्दर आ घुसा । द्यूत और मदिरा का यादवों को व्यसन हो गया । महाराज वसुदेव ने मदिरा का निषेध किया; परन्तु यादव उस निषेध को पार कर गये । युवक यादव धर्म और समाज के अनेक बंधनों को तोड़ने लगे । तपश्चर्या या संयम उनकी समझ में वैदिकों का ब्यसन था ।

एक बार अनेक यादव-कुमार मौज में आ गए । द्वारिका की सीमा पर एक तपस्वी आये थे । कुमार उस तपस्वी के पास पहुँचे और उसके साथ अनुचित विनोद करने लगे । तपस्वी ने सब सह लिया ।

थोड़ी देर के बाद कुमारों ने श्रीकृष्ण के पुत्र सांव को स्त्री का वेश धारण कराया और उसका बड़ा-सा पेट बनाकर उसे तपस्वी के पास लाये ।

“महाराज !” एक युवक बोला—“यह स्त्री आपसे आशीर्वाद लेने आई है ।”

तीसरे युवक ने कहा, “यदि आप सत्त्व योगी हैं तो बताइये कि इस स्त्री के क्या उत्पन्न होगा ?”

सांब भली-भांति वेश सजाकर खड़ा था। तपस्वी ने जरा ऊपर देखा और सांब को नख से शिख तक निहारकर वह फिर अपनी दृष्टि नीचे करके भूमि खोदने लगा।

तुरन्त ही एक युवक धौल उठा—“महाराज ! कुंडली में क्या आता है ?”

महाराज चुप न रह सके। बोले, “कुंडली के हिसाब से तुम सबकी मृत्यु आती है।”

युवक ने धृष्टता से पूछा—“मृत्यु हमारी या तुम्हारी, यह बात तो पीछे होगी; परन्तु इस स्त्री के पेट से क्या जन्मेगा, यह तो पहले बताओ। कुछ ज्योतिष लगाना भी आता है या यों ही भगवे कपड़े पहन लिये हैं ?”

तपस्वी कुछ क्रोध से बोला—“सचमुच जानना चाहते हो ? तो लो सुनो। इस स्त्री के पेट से जो जन्मेगा, उससे तुम सबका विनाश होगा। गर्भ में वह कभी से परिपक्व हो चुका है। जाओ, अपने सब वृद्धों से कह दो कि तैयार रहे।”

ऋषि के शब्द सुनकर सांब स्तब्ध रह गया। बाकी सब युवक खिलखिलाकर हँस पड़े और कहने लगे, “महाराज ! यह स्त्री नहीं, सांब है। आप ऐसी ही गप्पें हाँका करते हैं न ?”

तपस्वी ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। और सांब आदि यादव घर की ओर चल दिये।



एक बार यादव ग्रहण के कारण समुद्र-स्तन के लिए प्रभास गए। द्वारका में राजा वसुदेव ने प्रकट रूप में मदिरा-निषेध कर दिया था। प्रभास में यादवों ने उस निषेध को कुचल डाला।

एक यादव बोला—“मदिरा के लिए निषेध हुआ है, यह भूल गया ?”

“निषेध द्वारका के लिए है, प्रभाम में पी जा सकती है।” दूसरे ने उत्तर दिया।

“ऐसे उत्सव के दिन मदिरा न पी तो फिर पीनी कब ?” तीसरा बोला—

“सच बात तो यह है कि ऐसे सरस पेय के लिए निषेध करने का वसुदेव को कोई अधिकार नहीं।” एक ने कहा।

“भाइयो !” बीच में ही दूसरा बोला—“तुम्हें ऐसी उल्टी-सीधी बातें क्यों सूझती हैं ? चढ़ाते जाओ न भले-मानस ! ऐसी चर्चाएं तो छोटे बच्चे किया करते हैं।”

“परन्तु भाई !” फिर एक ने कहा। “हम इन श्रीकृष्ण और बलराम के देखते पियें, यह ठीक नहीं। चलो, जरा दूर जाकर पिये।”

“चल हट !” तुरन्त ही युवक बोल उठा—“हमें इस प्रकार का ढोंग नहीं आता। पियें भी, तो चोरी से क्यों पियें ? ऐसा ढोंग तुम्हीं करो। अन्दर कुछ और बाहर कुछ और, यह तुम्हें ही करना आता है। हम तो है सीधे आदमी।”

“परन्तु,” पहले ने उत्तर दिया—“जो शोभा दे, वही करना चाहिए। रह नहीं सकतें, इसलिए गुप्त रूप से पी लेते हैं, परन्तु इस प्रकार सबके देखते पीने में लज्जा नहीं आयगी ? ऐसा हम कौन-सा पुण्य-कार्य कर रहे हैं कि अन्दर और बाहर और की बात कह रहे हो ? इतनी मर्यादा भी छोड़ दोगे तो फिर एकदम हाथ से निकल जाओगे। अब भी मान जाओ।”

“जाओ, जाओ !” उत्तर मिला—“अपने राम तो पियेंगे और अवश्य पियेंगे ! बलराम और श्रीकृष्ण के देखते पियेंगे। उन्हें पता लगेगा तो वे महाराज वसुदेव से कहकर निषेध हटवा देंगे।”

“परन्तु जानता है ?” एक ने धीरे-से कहा—“बलराम स्वयं

क्या करते हैं ? जरा-सी उन्हें भी दे दो तो भगड़ा ही मिट जाय । इतनी लम्बी चर्चा करने की जरूरत ही क्या है ?”

“फिर थोड़ी-सी श्रीकृष्ण को भी ।” दूसरा बोला ।

“वे कभी नहीं पीते ।” पहले ने कहा ।

“पीते नहीं, यह तो सभी जानते हैं । परन्तु देने में क्या हानि है ? पीलेंगे तो ठीक है, अन्यथा हम तो पीने के लिए है ही ।” किसी ने समर्थन किया ।

x

x

x

सात्यकि और कृतवर्मा, दोनों यादव थे । कुरुक्षेत्र के युद्ध में सात्यकि पांडवों की ओर से लड़ा था और कृतवर्मा कौरवों की ओर से । जब अश्वत्थामा ने काल-रात्रि को पांचालों का शैया में बध किया तब कृतवर्मा उसके साथ सम्मिलित था ।

एक बार प्रभास में यादव-वीर कुरुक्षेत्र की कड़वी-मीठी बातें स्मरण कर रहे थे । सांब, चारुदेष्ण, प्रद्युम्न आदि श्रीकृष्ण के पुत्र भी उपस्थित थे । सात्यकि ने कहा—“कृतवर्मा ! और तो सब ठीक है; परन्तु तेरे जैसे मनुष्य ने रात्रि को पांचालों के बध में भाग लिया, यह मुझसे सहन नहीं होता ।”

कृतवर्मा गरम होगया, “तो इसमें कौन-सा बड़ा पाप हो गया ? कहता तो हूँ कि जो होगया, सो होगया ।”

“फिर भी तुझे उसका प्रायश्चित्त करना चाहिए ।” सात्यकि बोला ।

“प्रायश्चित्त तुझे करना चाहिए—भूमिश्रवा को मारा था, इसलिए ।” कृतवर्मा ने कहा ।

“कृतवर्मा, कृतवर्मा !” सात्यकि चिढ़ उठा । “तू अपनी मर्यादा की सीमा न लाँघ । तेरे जैसे अघोर कर्म आज तक किसी यादव ने नहीं किये और फिर भी मुझे कहने चला है ! तुझे मेरी प्रतिष्ठा से ईर्ष्या होती है ?”

“ईर्ष्या होने की क्या बात है ?” कृतवर्मा फिर झल्ला पड़ा । तुम्हें अभिमान हो गया है, इसीलिए ऐसी उखड़ी बातें कर रहा है । श्रीकृष्ण ने तुम्हें बहुत सिर पर चढ़ा लिया लगता है ।”

सांब ने शान्ति के साथ कहा—“दोनों शान्त हो जाओ । इन बातों में कोई सार नहीं है । क्यों व्यर्थ झगड़ रहे हो ?”

“कृतवर्मा !” सात्यकि ने ललकारा—“मेरा पराक्रम और प्रतिष्ठा सहन न होती हो तो आ जा मैदान में !”

प्रद्युम्न ने बीच में पड़कर कहा—“पर तुम दोनों व्यर्थ लड़ रहे हो ।”

“यह सात्यकि लड़ना चाहता है, इसलिए कोई-न-कोई बहाना खोज रहा है ।” कृतवर्मा बोला ।

“भाई, मैं लड़ना तो नहीं चाहता ।” सात्यकि बोला । “परन्तु तू सारे यादव-कुल को कलंक लगा रहा है, इसलिए बोल रहा हूँ ।”

चारुदेष्ण अपनी जगह से उठकर सात्यकि के निकट आया और बोला—“अब छोड़ो भी इस बात को !”

“छोड़े कैसे ? सात्यकि को अपना पराक्रम जो दिखाना है !” कृतवर्मा ने सार निकाला । “सात्यकि ! यदि यह कुरुक्षेत्र होता तब तो तुम्हें अभी बता देता ।”

सात्यकि एकदम खड़ा होगया । उसका हाथ तलवार पर पड़ा और वह कृतवर्मा की ओर दौड़ा । कृतवर्मा तो सुलग ही रहा था । देखते-देखते कोलाहल बढ़ गया और सूखे घास के ढेर में चिनगारी पड़ने पर जिस तरह आग भड़क उठती है, उसी तरह सारे यादव भड़क उठे । आपस में युद्ध आरम्भ होगया । सारे यादव एक या दूसरे पक्ष में सम्मिलित हो गये । मार-काट मच गई । पहले यादव मूसल हाथ में लेकर लड़े और बाद में जो कुछ भी हाथ में आया वही शस्त्र बन गया । प्रभास के

किनारे पड़ी हुई रेत का यादवों ने शस्त्र रूपमें खुलकर उपयोग किया। यादवों के इस कलह की श्रीकृष्ण को भी खबर मिली। अनेक यादव उनको भी मारने दौड़े। श्रीकृष्ण के पुत्रों ने यथारीति इस युद्ध में भाग लिया और लड़ते हुए मर गए।

इस महाकलह के परिणाम-स्वरूप सारे यादव मर गये; केवल श्रीकृष्ण और बलराम बाकी बचे। सागर के तट पर खड़े-खड़े श्रीकृष्ण ने यह यादवस्थली देख ली—उसी तरह, जैसे कोई महासागर में तैरते हुए जहाज को एकाएक डूबते हुए देखता है, जैसे पर्वत के शिखर पर खड़ा हुआ आदमी नीचे के किसी जंगल में दावानल लगते देखता है। सागर के तट पर सोये हुए समस्त यादवों के शवों पर एक दृष्टि डालकर श्रीकृष्ण द्वारका आये और सीधे वसुदेव के महल में गये। देवकी माता भी वहां उपस्थित थीं। दोनों के चरणों में श्रीकृष्ण ने मस्तक टेका, दोनों को महा-संहार के समाचार सुनाए और आज्ञा मांगी।

यादवों के समाचार सुनकर वसुदेव को बड़ा ही खेद हुआ और देवकी तो स्तब्ध ही हो गई।

“माताजी !” श्रीकृष्ण ने कहा। “मुझे आज्ञा दीजिये। अब मेरा समय भी आ पहुँचा है। बलराम से अपनी प्रतीक्षा करने के लिए कह आया हूँ।”

देवकी की आँखों से आँसू बह चले बोली, “बेटा ! हमें इसी तरह छोड़ जाओगे ?”

“माताजी !” श्रीकृष्ण बोले। “यह जीवन ही ऐसा है।”

“परन्तु कृष्ण !” वसुदेव ने कहा। “यादवों को यह क्या सूझा ?”

श्रीकृष्ण ने शांति से उत्तर दिया, “पिताजी ! यह काल का बल है, अन्यथा सात्यकि और कृतवर्मा दोनों समझदार और शक्तिशाली थे। यादव उन पर अभिमान कर सकते थे। वे दोनों लड़ पड़े और सारे कुल का संहार होगया !”

“तुमने या बलराम ने उन्हें रोका भी नहीं ?” देवकी बोली ।

“माताजी !” श्रीकृष्ण ने कहा । “काल किसी को तलवार से नहीं मारता वरन् मनुष्य की बुद्धि को ही पलट देता है । ऐसे समय पर समझदार लोगों की समझ भी छिप जाती है । संसार में किस समय कौन-से बल काम कर रहे होते हैं, यह जानना बड़ा कठिन है । पिताजी ! जीवन-भर मदनोन्मत्त राजा-महाराजाओं का विनाश करने पर भी आज जब वह मद यादवों में ही प्रविष्ट होगया तब मेरे हाथ नीचे गिर गये । जिस प्रकार कौरवों की हरी-भरी वाटिका कुरुक्षेत्र में छिन्न-भिन्न होगई, उसी प्रकार आज हमारी यादवों की वाटिका भी वीरान होगई । उसे देखकर ही मैं आरहा हूँ । पिताजी ! अब तो समझदारी से प्रभु को गोद में सिर रखना और उसकी इच्छा के अधीन होकर रहना, यही एक मार्ग है । मेरे यादवों के इस नाश का साक्षी बनाने में भी कोई ईश्वरीय संकेत होगा, ऐसा मुझे प्रतीत होता है । आप मुझे आज्ञा दीजिये ।”

“परन्तु,” देवकी बोली । “इन सब स्त्रियों और बच्चों का क्या होगा ?”

“माताजी !” श्रीकृष्ण ने कहा । “मैं दारुक को अर्जुन के पास हस्तिनापुर भेज रहा हूँ । अर्जुन आकर इन स्त्रियों और बच्चों को ले जायगा ।”

“और यह द्वारका ?” वसुदेव ने पूछा ।

“द्वारका पर तो आप काल को मँडराया हुआ समझें ।” श्रीकृष्ण बोले । “द्वारका जैसी अनेक राजधानियाँ सागर की गोदी में समा गई हैं । जगत् के किसी गूढ़ संकेत का अनुसरण करके काल-महासागर की लहरें कभी-कभी सारे मानव-सागर को निगल जाती हैं । कुछ वर्ष पहले ये लहरें कुरुक्षेत्र के मैदान पर फिर आई थीं और आज द्वारका पर फिर हुई समझें ।

पिताजी ! माताजी ! कृष्ण का अंतिम प्रणाम ! अब मैं और विलम्ब नहीं कर सकता ।”

इतना कहकर फिर से एक बार माता-पिता के चरणों में सिर रखा और दोनों को रोते छोड़कर श्रीकृष्ण चल पड़े । द्वारका से कुछ दूर एक वृक्ष के नीचे पैर टिकाकर खड़े होगये । जरा नाम के किसी भील ने वाण मारा और वे मृत्यु को प्राप्त हुए ।

अभी, आज भी श्रीकृष्ण की समाधिवाला वह वृक्ष ‘मोक्ष-पीपल’ के नाम से पहचाना जाता है ।

श्रीकृष्ण का जन्म कंस के कारावास में हुआ, बाल्यावस्था में उन्होंने अपने निर्दोष खेलों और मधुर बाँसुरी से गोपियों को पागल बना दिया; युवावस्था में पृथ्वी को पीड़ित कर रहे कंस और केशी जैसे अनेकों का वध किया; मथुरा छोड़ने के बाद द्वारका और खांडवप्रस्थ जैसी कई जगहों पर नई बस्तियाँ बसाई; शिशुपाल, जरासन्ध, रुक्मी जैसे अनेक अत्याचारियों से राजा-प्रजा दोनों को मुक्ति दिलाई; जरा बड़ी आयु में घोर आंगिरस नामक गुरु के पास रहकर योग और तत्त्व-ज्ञान का अभ्यास किया; आगे चलकर अर्जुन के रथ की बागडोर थामकर पांडवों को संकट से पार उतारा; मुदामा जैसे बाल-मित्र की दरिद्रता दूर की और अंत में, कोई जिसे समझ नहीं सकता, ऐसे किसी संकेत का अनुसरण करके, जिस प्रकार कुशल बाजीगर अपनी बाजी समेट लेता है, उस प्रकार फैली हुई बाजी समेटकर इस संसार से कूच कर गये ।

आज पाँच हजार वर्षों को पार करके श्रीकृष्ण का जीवन हमें प्रेरणा दे रहा है और हमारे सम्मुख ईश्वरावतार की अनेकानेक कल्पनाएँ खड़ी कर रहा है ।

